पुस्तकालय

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

विषय संख्या ______ आगत नं० 24249

लेखक श्री प्राणनाथ विद्यालंकार

शीर्षक राजनीति शास्त्र

दिनांक	सदस्य संख्या	दिनांक	सदस्य संख्या

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
कृपया पुस्तक के ऊपर कोई निशान आदि
न लगाएं।

ज्ञानमण्डल ग्रन्थमालाका सत्रहवाँ ग्रन्थ ।

राजनीतिशास्त्र

लेखक—श्रीप्राणनाथ विद्यालंकार ।

ज्ञानमण्डल कार्यालय काशी ।

प्रथम संस्करण दो हजार } संवत् १९७९ { मूल्य सजिल्दका २।=)

प्रकाशक-
ज्ञानमण्डल कार्यालय
काशी ।

लागत व्ययका लेखा ।

छपाई	...	४५०)
कागज	...	७३०)
सम्पादन, संशोधन	...	२२५)
विज्ञापन, इत्यादि	...	९५)
पुरस्कार	...	५००)
		२०००)
कमीशन		१०००)
हानि, भेंट, इत्यादि		१०००)
योग		४०००)

∴ मूल्य एक प्रतिका २) + ।=) जिल्दके लिये

मुद्रक—
महताब राय,
ज्ञानमण्डल यन्त्रालय,
काशी ।

समर्पण

यह ग्रन्थ

उदार-प्रकृति, सत्य-प्रेमी, देशभक्त-स्वार्थ, त्यागी मित्रवर श्रीमान् शिवनारायण मिश्र तथा गणेशशंकर विद्यार्थी जीको अगणित कृपाओं तथा सौहार्द भावोंके उपलक्ष्यमें समर्पित करता हूं।

प्राणनाथ

इस पुस्तकमें उल्लिखित ग्रन्थोंकी नामावली ।

1. Bluntschli : The Theory of the State
2. W. Wilson : The State
3. T. Woolsey : Political Science
4. J. E. Halland : Elements of Jurisprudence
5. Gettel : Introduction to Political Science
6. Leacock Elements of Political Science.
7. Willoughby The Nature of the State.
8. Austin : Lecturess on Jurisprudence,
9. A. V. Dicey : Law of the Consitution
10. Sidgwick : Elements of Politics
11. Ritchie : Principles of State Interference
12. M. Kechnie : The State and the Individual
13. Ritchie : Natural Rights
14. Russeau : Social Contract
15. S. Amos : The Science of Politics
16. J.W. Burgess: Political Science and Constitutional Law
17. Mars Stephen: The French Revolution
18. Dealey : The Development of the State.

१९. श्रीप्राणनाथ विद्यालंकार—राष्ट्रीय सिद्धान्त ।

विषय-सूची

(प्रथम भाग)

पहिला परिच्छेद

राष्ट्रीय स्वरूपका विचार— 1—12

1. राष्ट्रका स्वरूप तथा लक्षण—2. सार्वभौम राष्ट्र.

दूसरा परिच्छेद

राष्ट्रका समुत्थान— 13—26

3. विचार प्रणाली—4. आरम्भिक राष्ट्र.—5 नवीन राष्ट्र—6. उत्पन्न राष्ट्र.—7. राष्ट्रका ह्रास.

तीसरा परिच्छेद

राष्ट्रके समुत्थानमें सामाजिक परिस्थितिका भाग 27-76

8. मनुष्य समाज.—9. जनता तथा जाति.—10. ज़ातियोंके अधिकार.—11 समाज.—12 संघ तथा श्रेणी.–13 जाति–14 जन संख्या.—15 जन संख्याका विभाग.—16 जाति–17 जातीयता.—18 राष्ट्र निर्माणमें जातीयताका भाग.–19 राष्ट्र तथा परिवार.—20 स्त्रियोंकी स्थिति—21 कुलीन

चौथा परिच्छेद

राष्ट्रके समुत्थानमें प्राकृतिक परिस्थितिका भाग ७७-९०

२२-जलवायु.—२३-प्राकृतिक परिस्थिति.-२४-उत्पादकशक्ति.—२५-भूमि

पांचवाँ परिच्छेद

राष्ट्र विषयक सिद्धान्त— ९१—१२८

२६.राष्ट्रीय सिद्धान्तोंका महत्त्व.२७-. प्राचीन राष्ट्रीय सिद्धान्त.—२८. मध्यकालिक राष्ट्रीय सिद्धान्त.—२९. अर्वाचीन राष्ट्रीय सिद्धान्त.—३०. सामाजिक प्रण सिद्धान्त—३१.सात्मिक या ऐन्द्रिय सिद्धान्त.-३२. दैवी सिद्धान्त.-३३. शक्तिसिद्धान्त.-३४. सामयिक विचार.-३५. राष्ट्रका विकास-सिद्धान्त.-३६. राष्ट्रका पारिवारिक सिद्धान्त.-३७. अरस्तूका विचार.-३८. राष्ट्रविकासमें सैनिक तथा आर्थिक तत्व.-३९. राजनीतिक विकासके साधारण चिन्ह.

छठां परिच्छेद

राष्ट्र विषयक सिद्धान्तोंका इतिहास— १२९-१५५

४०. भारतमें राष्ट्रीय विचार.-४१. यूनान में राष्ट्रीय विचार.-४२. रोममें राष्ट्रीय विचार.—४३. ईसाई मतका राष्ट्रीय विचारोंपर प्रभाव.-४४. टयूटन लोगोंका राष्ट्रीय विचारोंपर प्रभाव.-४५.विद्यावृद्धिका राष्ट्रीय विचारोंपर प्रभाव.-४६. वर्त्तमान कालका प्रारम्भ.-३७.वर्त्तमान तथा प्राचीन

राजनीतिक विचारोंमें भेद.-४८ वर्त्तमान तथा मध्यकालीन राष्ट्रीय विचारोंमें भेद -४६. राष्ट्र विषयक सिद्धान्तोंका उदय.

सातवाँ परिच्छेद

प्रभुत्वशक्ति— १५६--१८०

५०.प्रभुत्वशक्तिका स्वरूप.-५१. प्रभुत्वशक्ति तथा राज्य-नियम.-५२. प्रभुत्वशक्तिके चिन्ह तथा गुण.-५३. प्रभुत्वशक्ति-सिद्धान्तका उदय.—५४. प्रभुत्वशक्ति-सिद्धान्तकी आलोचना.—५५. सामयिक राष्ट्रोंमें राष्ट्रकी प्रभुत्वशक्तिका स्थान.-५६.राजनीतिक प्रभुत्वका सिद्धान्त.

आठवाँ परिच्छेद

वैयाक्तिक स्वतंत्रता— १८१-१९५

५७. राष्ट्रका व्यक्तिके साथ सम्बन्ध.-५८. नागरिक स्वतंत्रताका स्वरूप-५९. स्वतंत्रता शब्दका तात्पर्य्य-६०. स्वतंत्रता शब्दका विशेष अर्थ.-६१. वैयक्तिक स्वतंत्रताका संरक्षण.-६२. वैयक्तिक स्वतंत्रताका क्षेत्र.-६३. राजनीतिक स्वतंत्रता.

नवाँ परिच्छेद

नियम— १९६-२१२

६४ नियम शब्दका अर्थ-६५ नियमका स्रोत—६६ आधुनिक नियमोंका आधार.—६७. अधिकार.—६८. राज्य-नियमका विभाग.-६९. धर्म तथा नियम.

दसवाँ परिच्छेद

अन्तर्जातीय राज्य-नियम— २१३-२३६

७०. अन्तर्जातीय राज्य-नियमोंका विभाग.-७१.(१) समानताके सम्बन्धमें.—७२. (२) समानताके सम्बन्धमें.-७३. (३) सम्पत्तिके सम्बन्धमें.—७४. (४) अपराध निर्णयके सम्बन्धमें.-७५. (५) राजनीतिके सम्बन्धमें -७६. (६) युद्धके विषयमें अन्तर्जातीय राज्य-नियम.-७७. (७) उदासीनताके सम्बन्धमें अन्तर्जातीय राज्य-नियम.-७८.व्यापार सम्बन्धी उदासीनताके विषयमें.

ग्यारहवां परिच्छेद

राष्ट्र तथा राज्यका स्वरूप २३७-२५२

-७९. राष्ट्रका स्वरूप.-८०. राज्यका स्वरूप.-८१. अर्वाचीन राष्ट्रोंका वर्गीकरण.

(द्वितीय भाग)

पहिला परिच्छेद

शक्ति-संविभाग— २५७-२८०

८२. शासक, नियामक तथा निर्णायक शक्तिका स्वरूप -८३. शक्ति-संविभागका सिद्धान्त.—८४.अमरीका तथा फ्रां-

समें शक्ति-संविभाग-सिद्धान्तका प्रभाव.—८५. अर्वाचीन राष्ट्रोंमें शक्ति-संविभाग.-८६. शक्ति-संविभाग-सिद्धांतकी आलोचना.—८७. शक्ति संविभाग.

दूसरा परिच्छेद

नियामक विभाग-- २८१-३२३

८८. नियामक विभागका कार्य तथा स्वरूप.-८९. प्रथम सभाका निर्माण.—९०, द्वितीय सभाका निर्माण.-९१. दोन सभाओंकी आपेक्षिक शक्ति.-९२. अन्तरीय संगठन.-९३ कार्यक्रम.-९४. नियामक विभागको स्थिति.

तीसरा परिच्छेद

शासक विभाग-- ३२४-३५१

९५. शासक विभागका स्वरूप तथा विकास.-९६. मुख्य शासक.-९७. शासक सभा.-९८. सचिवमंडल-९९. राज्य-सेवकोंकी नियुक्ति.-१००. शासक विभागका काम.

चौथा परिच्छेद

निर्णायक विभाग- ३५२-३७७

१०१. निर्णायक विभागका विकास.-१०२. निर्णायक विभागका कार्य तथा स्वरूप.-१०३. निर्णायक विभागका शासक विभागके साथ सम्बन्ध.-१०४. निर्णायक विभागका नियामक विभागके साथ सम्बन्ध.—१०५.निर्णायक विभागका संगठन.

पाँचवाँ परिच्छेद

निर्वाचन— ३७८-३९३

१०६. लोकतंत्र राज्य.—१०७. निर्वाचनके अधिकारका विकास.—१०८. निर्वाचकोंका राज्यपर नियंत्रण.—१०९. जन सम्मति विधि.

छठवाँ परिच्छेद

स्थानीय राज्य— ३९४-४२३

११०. स्थानीय राज्यका मुख्य राज्यके साथ सम्बन्ध.—१११. राष्ट्रीय राज्य.—११२. मांडलिक स्थानीय राज्य.—११३. नगरोंका विकास.—११४. नागरिक राज्य.

शब्दानुक्रमणिका— ४२५

परिशिष्ट

प्रथम भाग ।

राजनीति शास्त्र ।

पहिला परिच्छेद ।

राष्ट्रीय स्वरूपका विचार ।

§१. राष्ट्रका स्वरूप तथा लक्षण

राष्ट्रका स्वरूप तथा गुण ।

समाज, जाति तथा राज्यके लिये प्रायः राष्ट्र (State) शब्द लोकमें प्रचलित है। परन्तु राजनीति शास्त्रमें राष्ट्रसे विशेष तात्पर्य लिया जाता है। राष्ट्रके तात्पर्यका उसके स्वरूप तथा गुणोंके साथ अति घनिष्ट सम्बन्ध है। राजनीतिके आचार्य ब्लुन्टश्ली (Bluntchli) ने इस पर अच्छी तरहसे प्रकाश डाला है। उनका कथन है कि राष्ट्रके साथ इन सात बातोंका गाढ़ सम्बन्ध इतिहाससे प्रतीत होता है:—

(क) जनसंख्या ।

(ख) स्थान ।

(ग) संगठन ।

(घ) शासक शासितोंमें भेद ।

(ङ) जीवन ।

(च) सदाचारके सिद्धान्त ।

(छ) नर-गुण-प्रधानता ।

(क) जनसंख्या—वर्तमान कालके राष्ट्रोंकी आबादी बहुत ज्यादा है । राष्ट्रका यह गुण अति प्राचीन है । इतिहास कसी ऐसे राष्ट्रका उल्लेख नहीं करता है जिसकी आबादी दो या तीन मनुष्यों तक पहुंचती हो । महाशय रूसोने राष्ट्रकी अल्पसे अल्प आबादी दश हजार प्रगट की है । प्राचीन तथा मध्यकालमें ऐसे बहुत राष्ट्र थे । परन्तु आजकल पारस्परिक युद्ध तथा पारतन्त्र्यके भयसे राष्ट्रोंने वृहद्रूप ग्रहण कर लिया है। कुछ एक विचारक राष्ट्रके साथ आबादीके सम्बन्धको ऐतिहासिक विकासका परिणाम मानते हुए उसे गौण मानते हैं । उनके मतमें एक परिवार भी राष्ट्र हो सकता है । प्रसिद्ध व्यष्टि-वादी वर्डज़वर्थ डानिस्थ्रोप (Wordsworth Donisthrope) का कथन है कि "मैं साहसके साथ कह सकता हूं कि प्राथमिक राष्ट्रमें एक मात्र माता तथा उसके बालक ही सम्मिलित थे" । जो कुछ भी हो वर्त्तमान कालमें राष्ट्रोंका आबादीके साथ गभीर सम्बन्ध है, अतः 'प्राचीन कालमें क्या था और क्या हुआ' इस विचारका इस स्थानपर कोई लाभ नहीं प्रतीत होता है । इसका महत्व 'राष्ट्रकी उत्पति' प्रकरणमें ही है ।

(ख) स्थान—राष्ट्रकी स्थिरता तथा उन्नति स्थानके साथ सम्बद्ध है । भ्रमणशील जातियोंने राष्ट्रका रूप तब तक ग्रहण नहीं किया जब तक वे किसी न किसी स्थान पर बस न गयीं । मूज़िज़के नियमों पर चलते हुए भी यहूदी राष्ट्रके रूपमें तभी परिवर्त्तित हुए जब कि जोशूने उनको

फिलिस्तीनमें बसाया। किस्मी तथा ट्यूटन्ज स्थान न प्राप्त करनेके कारण ही नष्ट हो गये। प्राचीन कालमें राष्ट्रकी प्रभुत्व-शक्तिका प्रायः समुद्र तथा भूमिके साथ हीं विशेष सम्बन्ध था। परन्तु आज कल वायुयानोंके आविष्कारसे वायु तथा आकाश भी राष्ट्रीय प्रभुत्व शक्तिकी सीमामें आ गये हैं। यही कारण है कि राष्ट्रका विशेष सम्बन्ध भूमि या समुद्रके साथ न प्रगट करते हुए स्थानके साथ ही प्रगट किया गया है। स्थानमें भूमि, समुद्र आकाश आदि सभीका समावेश हो जाता है।

(ग) संगठन—समाजान्तर्गत मनुष्योंके राजनीतिक संगठन-का राष्ट्रीय स्वरूपके निर्माणमें बहुत बड़ा भाग है। राष्ट्रके अंगभूत मनुष्य बहुत सी बातोंमें सर्वथा पृथक् रह सकते हैं, उनमें पारस्परिक कलह भी हो सकता है परन्तु राष्ट्रके मामले-में उनका संगठन अति आवश्यक है। अमेरिकामें भिन्न २ रियासतें अपने अन्तरीय प्रबन्धमें स्वतन्त्र हैं, परन्तु वे अमेरिकन राष्ट्रमें संगठित हैं। राजनीतिक संगठन बिना कोई राष्ट्र, राष्ट्र नहीं हो सकता है।

(घ) शासक शासितोंमें भेद—संगठनके साथ साथ संपूर्ण राष्ट्रों-के अंदर शासक शासितोंमें भेद दिखायी देता है। अत्यन्त प्रजा सत्ताक राज्यमें भी यह भेद-भाव विद्यमान है। एथन्जमें एथीनियन सभा शासक थी और एथीनियन नागरिक उसके द्वारा शासित होते थे। जिस राष्ट्रमें यह भेदभाव किसी कारणसे लुप्त हो जावे और जिसका प्रत्येक मनुष्य उच्छृंखल विचरने लगे, वहां अराजकता फैल जाती है और राष्ट्रीय प्रतिभा छिन्न भिन्न हो जाती है। समष्टिवादियोंमें कम्यूनिष्ट

लोग राष्ट्रके इस स्वरूपके विरुद्ध हैं। सामाजिक बन्धनोंके द्वारा ही वे संपूर्ण काम चलाना चाहते हैं। उनके विचारोंकी असत्यता इसीसे स्पष्ट है कि वे अपने विचारोंके अनुसार अभी तक किसी समाजके निर्माणमें समर्थ नहीं हो सके हैं। कोई भी समाज शासक-शासितोंके भेदके विना न तो राष्ट्र बन सकता है और न अपना काम सफलतापूर्वक निष्पादन कर सकता है।

(ङ) जीवन—राष्ट्रका विकास-ह्रास चेतनोंसे मिलता है। चेतनोंके समूहसे ही वह बना है। इसीलिये 'राष्ट्र' सजीव माना जाता है। राज्य-संघटन, नियम, न्यायालय, सेना उपसेना तथा अन्य संपूर्ण संस्थायें आदि संमिलित रूपसे राष्ट्रके शरीरको बनाते हैं। इसीमें राष्ट्रका आत्मा तथा मन रहता है। राष्ट्रकी उन्नति अवनति सदा होती रहती है। शैशवकालसे वृद्धत्वकाल तककी संपूर्ण अवस्थाओंमेंसे राष्ट्र गुजरता है। उसके जीवनकी दीर्घता तथा न्यूनता उसके शरीरकी स्वस्थता तथा विराष्ट्रीय सम्बन्धों पर आश्रित है। उसके जीवनका महत्व इसीसे जानना चाहिये कि उसकी रक्षामें उसका प्रत्येक अंग अपने आपको बलि कर देता है। अन्यथा राष्ट्रके परतन्त्र होने पर अन्य अंगोंका ह्रास होना स्वाभाविक ही है। यही कारण है कि समय समय पर महापुरुष राष्ट्रके जीवनकी रक्षाके लिये अपने आप तथा अपनी सम्पत्तिको स्वाहा करते रहे हैं। कुछ एक राजनीतिज्ञ राष्ट्रको इच्छाशक्ति-रहित अनात्मिक वस्तु मानते हैं। वे उसकी उपमा वृक्षसे देते हैं और उसकी उन्नति तथा अवनति क्रमबद्ध प्रगट करते हैं। उनका सिद्धान्त है कि प्राकृतिक पदार्थोंके विकासके सदृश ही

उसका भी विकास है। जिस स्थान पर जैसा बीज पड़ गया, वहां उसी प्रकार राष्ट्र उत्पन्न हो गया। वृक्षोंके ही सदृश पारस्परिक संघर्षसे राष्ट्रोंकी उन्नति-अवनति होती है। जिस राष्ट्रका तना वट या पीपलकी तरह होगा वही राष्ट्र बढ़ेगा तथा अन्योंके आधार पर अपने आपको प्रति दिन बढ़ाता जायगा। कुछ समयके बाद उस वृहत् राष्ट्रमें, आयुके पूर्ण होनेसे या अन्य प्रतिद्वन्द्वि-तत्वों द्वारा आक्रान्त होनेसे क्षीणता प्रारम्भ होगी। साथ ही साथ उसमें अन्य समीप-वर्ती राष्ट्रोंसे निर्वाह करनेकी शक्ति भी लुप्त होती जायगी। इस प्रकार चक्र पलटेगा और दुर्बल राष्ट्र प्रबल राष्ट्रके क्षीण होनेसे शक्ति प्राप्त कर प्रबल राष्ट्रका रूप धारण करलेंगे। सारांश यह है कि प्राकृतिक परिवर्त्तन अदम्य हैं। राष्ट्रिक परिवर्त्तन भी उन्हींका एक भाग है। राष्ट्र स्वयं स्वतन्त्र शक्ति नहीं है। प्रकृति जिधर राष्ट्रको चलाती है, राष्ट्र उधर ही चलता है।

राष्ट्रके अनात्मवादी तथा आत्मवादी दोनों ही संप्रदायों-के विचारोंमें पर्याप्त प्रबलता है। वास्तविक बात तो यह है कि समाज तथा राष्ट्रके ह्रास-विकासमें चेतन तथा अचेतन सम्बन्धी दोनों ही नियम काम करते हैं। यही कारण है कि बहुत से विचारक राष्ट्रके उपरिलिखित चारों गुणोंको ही प्रगट करते हैं और अन्तिम तीनोंको सर्वथा ही छोड़ देते हैं। जिन राजनीतिज्ञोंका राष्ट्रके शरीरयुक्त होनेमें प्रबल विश्वास है वे राष्ट्रके कृत्रिम तीन स्वरूपोंपर भी काफी ज़ोर देते हैं।

(च) सदाचार सिद्धान्त—ऊपर राष्ट्रके जीवनका रहस्य

बतलाया है। पशु पक्षियोंके सद्दश राष्ट्रका जीवन नहीं है। राष्ट्रके जीवनमें सदाचारके सिद्धान्त काम करते हैं। समाजके अनुभवों तथा विचारोंको नियम द्वारा वह कार्यमें लाता है। शासन पद्धतिका एकमात्र उद्देश्य यह है कि राष्ट्र अपनी इच्छाओंको सफलता पूर्वक काममें लासके। वैयक्तिक इच्छाओंकी अपेक्षा राष्ट्रकी इच्छाएं उच्च गिनी जाती हैं। सारांश यह कि राष्ट्र एक उत्कृष्ट शरीरीके सदृश है, उसको पशुपक्षियोंकी श्रेणीमें नहीं रखा जा सकता।

(छ) नर-गुण-प्रधानता—मनुष्यमें नर नारी दो भेद हैं। राष्ट्रका स्वरूप नर-गुण-प्रधान है। धार्मिक संस्थाओंके हाथमें राष्ट्रीय प्रभुत्वशक्तिके जानेपर राष्ट्रमें नारियोंके गुण झलकने लगते हैं। स्त्रियोंको वोट देनेका अधिकार मिलने पर भी यही बात होती है। क्योंकि इससे उसमें कोमलता, असहिष्णुता तथा नाजुकपना आ जाता है। परन्तु राष्ट्रका नर-गुण-प्रधान होना आवश्यक है। उसमें कठोरता, सहिष्णुता धैर्य आदि गुण होने चाहियें।

राष्ट्रका लक्षण

इतिहाससे राष्ट्रमें जिन २ गुणोंकी विद्यमानता प्रगट होती है, उनका उल्लेख किया जा चुका है। उपरिलिखित गुणोंका ध्यान रखते हुए महाशय ब्लुण्टश्ली राष्ट्रका लक्षण इस प्रकार करतेहैं। स्थान विशेष पर शासक शासितोंके रूपमें संगठित आत्म संयुत नरगुण प्रधान मनुष्य समाका नाम राष्ट्र है[१] अथवा इसको संक्षेपतः इस प्रकार भी

[१] Bluntschli; The Theory of the State, Book I. chapter. I.

प्रगट कर सकते हैं स्थान विशेषके राजनीतिक तौर पर संगठित जातीय पुरुषका नाम राष्ट्र है इसी लक्षणको प्रसिद्ध राज नीतिज्ञ वुडरो-विलसनने इन शब्दोंमें रखा है 'स्थान विशेषमें राज्य नियमके लिये संघटित समाजका नाम राष्ट्र है[२]। यही नहीं बूल्जे भी स्थान विशेषमें राज्य नियमके सहारे अपने अंगोंके द्वारा न्याय वितीर्ण करने वाले समाजका नाम राष्ट्र है, यह कहते हुए उपरिलिखित तीनों राजनीतिज्ञोंके साथ राष्ट्रके लक्षणमें अपनी सहमति प्रगट करता है[३]। राष्ट्रीय प्रभुत्व पर विचार करते हुए महाशय हालेंडसे हमको काम पड़ेगा, अतः इनका 'राष्ट्रका लक्षण' देदेना आवश्यक प्रतीत होता है। वे कहते हैं कि बहु सम्मति रूपी शक्तिसे संचालित स्थान विशेषके संगठित समाजका नाम राष्ट्र है[४]।

राष्ट्रके वर्त्तमान स्वरूप तथा लक्षणको प्रगट कर देनेके अनन्तर इस पर विचार करना अत्यन्त आवश्यक प्रतीत होता है कि राष्ट्रका वास्तविक अन्तिम स्वरूप क्या होना चाहिये और वर्त्तमान रूप कहां तक अपरिपूर्ण है। इसी उद्देश्यसे अब द्वितीय प्रकरण प्रारम्भ किया जाता है।

§२. *सार्वभौम राष्ट्र*

राष्ट्रोंका वर्त्तमानकालिक स्वरूप सर्वथा अपरिपूर्ण है। राष्ट्रोंने अभीतक अपने अन्तिम विकासको नहीं प्राप्त किया

---

२ W. Wilson; The State

३ T. Woolsey; Political Science.

४ J. E. Holland; Elements of Jurisprudence

है। अरस्तूका कथन कि "मनुष्य राजनीतिक जीव है" सार्वभौम सत्य है। राजनीतिक स्थितिके विना मनुष्यका निर्वाह नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति राष्ट्रमें ही उत्पन्न होता है और उसीमें परमावस्थाको प्राप्त करता है। व्यक्तियोंके सदृश ही संसारके सभी राष्ट्रोंमें पारस्परिक समानता है। इसीलिए राष्ट्रोंमें मात्स्य-न्यायका संचलन अनुचित है। अभी संसारके संपूर्ण राष्ट्रोंमें एकत्व स्थापित होनेकी नितान्त आवश्यकता है। सार्वभौम राष्ट्रके विना राष्ट्रोंकी पूर्णता कहां। यदि मनुष्योंमें सार्वभौम भ्रातृभाव तथा सार्वभौम धर्मकी आवश्यकता है तो सार्वभौम राष्ट्रकी सत्ताका कौन अपलाप कर सकता है?।

राष्ट्रोंकी परिपूर्णताके विना राष्ट्रीय पुरुषोंकी परिपूर्णता असम्भव है। यदि राष्ट्र मनुष्य है तो मनुष्यके तुल्य ही उसका आत्मा तथा शरीर होना चाहिये। मनुष्यके समानुपातमें ही उसकी उन्नति आवश्यक है। यदि मनुष्य एक राष्ट्रमें संगठित हो करके पूर्णता प्राप्त करते हैं तो भिन्न २ राष्ट्रोंको सार्वभौम राष्ट्रमें संगठित हो करके क्यों न पूर्णता प्राप्त करनी चाहिये? मनुष्य ही व्यष्टि तथा समष्टि रूपेण वैयक्तिक तथा राष्ट्रीय नियमोंका स्रोत है। शोक है कि मनुष्योंने अभीतक अपने आपको सार्वभौम समाजका अंग नहीं बनाया है। वे स्वप्नमें ही पड़े हैं। इसीलिये सार्वभौम-राष्ट्र-संगठन तथा सार्वभौम-राष्ट्र-नियम शताब्दियोंकी बात है।

संसारकी भिन्न २ जातियोंने सार्वभौम राष्ट्र निर्माणमें प्रयत्न किया परन्तु सफलता किसीको भी न मिली। इससे यह कभी भी नहीं कहा जा सकता कि सार्वभौम राष्ट्रका निर्माण असम्भव है। प्राचीन नेताओंने सार्वभौम राष्ट्र-

निर्माणमें बहुतसी त्रुटियां की जिनका ज्ञान इतिहाससे सहज ही प्राप्त किया जा सकता है। यदि उन त्रुटियोंको बुद्धिमत्तापूर्वक दूर करनेका यत्न किया जाय तो सफलताका प्राप्त होना असम्भव नहीं है।

सार्वभौम-राष्ट्र-निर्माणका सबसे पहिला प्रयत्न यूरोपमें सिकन्दरने किया। इसी उद्देश्यसे प्रेरित हो करके उसने सूसा पर विवाहके द्वारा यूरोप तथा एशियाको संगठित करनेका यत्न किया। प्राक्‌कालीन राष्ट्रीय शासन-पद्धति प्रजा-सत्तात्मक थी, परन्तु नागरिक अल्प राष्ट्रोंको 'राष्ट्र-संगठन' का ज्ञान न था। राष्ट्र-संगठनके सिवाय अन्य कोई विधि सार्वभौम राष्ट्र-निर्माणमें समर्थ नहीं है। राष्ट्र-संगठन विधिकी अज्ञानतासे ही यूनानियोंको सिकन्दरके एक-सत्ताक राज्यमें संगठित होना पड़ा। भारतवर्षमें भी यूनान-के ही सदृश आर्योंको समुद्रगुप्त तथा चन्द्रगुप्तके एकमात्र आधिपत्यमें संगठित होना पड़ा। एक सत्ताक राज्य दूरस्थ राष्ट्रोंको अपनेमें संगठित कर सकता है परन्तु उस संगठनको चिरकाल तक स्थिर नहीं रख सकता। रोमन लोगोंने अन्य सब प्राचीन जातियोंकी अपेक्षा राष्ट्र संगठनमें सफलता प्राप्त की। परन्तु वे साम्राज्यकी सभी जातियोंको 'रोमन' बनाना चाहते थे, जो कि बहुतोंको स्वीकृत न था। इसीलिये वे सार्वभौम राष्ट्र निर्माणमें समर्थ न हो सके। अमेरिकाने राष्ट्र-संगठनकी नवीन विधिके द्वारा संसारका बहुत ही अधिक उपकार किया है। इसी विधिके द्वारा जर्मनी, फ्रांस तथा स्विट्‌जलैंडने संगठन किया है और भारतको अपनी स्वतंत्रताके दिनोंमें इसी विधिका अवलम्बन करना पड़ेगा।

राष्ट्र संगठनकी नवीन विधिसे इंग्लैण्ड चाहता तो बहुत कुछ उन्नति कर सकता। समुद्र द्वारा विभक्त राष्ट्रोंके राष्ट्र-संगठन (Federation) का अभी तक किसी भी देशने वृहद्रूपमें परीक्षण नहीं किया है। इंग्लैण्ड चाहता तो भारतादि देशोंको स्वातंत्र्य दे करके नौ-शक्तिके बल पर एक नवीन राष्ट्र-संघका निर्माण करता। इससे उसकी शक्ति वर्त्तमान कालकी अपेक्षा कई गुनी अधिक हो जाती। उसके नवीन राष्ट्र-संगठनके अंगभूत भारतादि वृहद्राष्ट्र, स्वतन्त्रताके कारण, शक्ति तथा समृद्धिको प्राप्त करते और उसकी शक्ति कई गुनी अधिक बढ़ा देते। किन्तु इंग्लैण्डने इस ओर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। इसीका परिणाम यह है कि प्राचीनकालमें एथेन्सको परतन्त्र राष्ट्रोंके संभालनेमें जो कठिनाइयां उठानी पड़ी थीं, वही आज इंग्लैण्डको उठानी पड़ रही हैं। बहुतसे राजनीतिज्ञ सार्वभौम राष्ट्रके विचारको ही अस्वाभाविक समझते हैं। इसका कारण निम्नलिखित है—

(क) सार्वभौम-राष्ट्र-संगठनकी शासनपद्धति राजात्मक होगी, जो राष्ट्रोंकी प्रभुत्वशक्तिके सर्वथा विपरीत है।

(ख) व्यक्ति व्यक्तिमें तथा राष्ट्र राष्ट्रमें पारस्परिक भेद विद्यमान है। मनुष्य, दुर्बल, असदाचारी तथा निःशक्त होनेसे राजनीतिक जीव है। राष्ट्रके साथ यह बात नहीं है। राष्ट्रीय पुरुष स्वतः पूर्ण, सदाचारी तथा सशक्त होनेसे राजनीतिक जीव नहीं है। इस दशामें पुरुषोंको संगठनकी आवश्यकता होते हुए भी राष्ट्रीय पुरुष संगठनसे पृथक् रह सकते हैं।

(ग) सामाजिक पुरुष दुर्बल होनेसे राष्ट्रीय प्रभुत्व शक्ति-

के अंगीकृत करनेमें वाधित हैं। परन्तु राष्ट्रीय पुरुष तो सबल हैं, उनको सार्वभौम राष्ट्रीय प्रभुत्वशक्तिके अंगीकृत करनेमें कौन वाधित कर सकेगा।

(घ) यदि सार्वभौम राष्ट्र किसी विधिसे राष्ट्रोंको अपनी प्रभुत्वशक्तिके अंगीकरणमें वाधित कर दें, तो इससे न्याय तथा स्वातन्त्र्यका घात होगा। क्योंकि वाधित किये जानेमें स्वतन्त्रता कहां ?

(ङ) व्यक्तियोंकी उन्नतिके लिये जातीय राष्ट्र आवश्यक है और वह स्वतः इस कार्यमें पर्य्याप्त शक्तियुक्त है। ऐसी अवस्थामें सार्वभौम राष्ट्रकी आवश्यकता ही क्या है ?

उपरि लिखित युक्तियां त्रुटिपूर्ण होनेसे सर्वथा हेय हैं। सार्वभौम राष्ट्र निर्माणको हम निम्नलिखित विचारसे पुष्ट कर सकते हैं।

(क) सार्वभौम राष्ट्रकी शासन-पद्धति राजात्मक होनेके स्थान पर राष्ट्र-संगठनात्मक या प्रधान-सत्तात्मक हो सकती है। इससे राष्ट्रीय प्रभुत्वशक्तिका संरक्षण स्वाभाविक ही है। वर्त्तमान कालीन अन्तर्जातीय नियम सार्वभौम राष्ट्र संगठन के नियमोंके पूर्व-रूप कहे जा सकते हैं। समयान्तरमें अन्तर्जातीय संगठन पूर्णता प्राप्त करते ही सार्वभौम राष्ट्र संगठनको जन्म दे सकता है। यह राष्ट्रीय प्रभुत्व-शक्तिके कभी भी विपरीत नहीं हो सकता है।

(ख) व्यक्तियोंके सदृश ही जातियां भी दोष तथा दुर्बलताओंसे परिपूर्ण हैं। गत यूरोपीय युद्ध इसीका साक्षी है। जिस प्रकार व्यक्तियोंकी राष्ट्रको आवश्यकता है, उसी प्रकार जातियोंको सार्वभौम-राष्ट्र-संगठनकी आवश्यकता है।

(ग) व्यक्तियों पर जिस प्रकार राष्ट्रकी प्रबलता है, उसी प्रकार एक २ राष्ट्र पर सार्वभौम राष्ट्रकी प्रबलता होगी। यदि भिन्न २ व्यक्ति राष्ट्रकी प्रभुत्वशक्तिको अंगीकृत करनेमें बाधित हैं तो राष्ट्र भी सार्वभौम राष्ट्रकी प्रभुत्वशक्तिका अपलाप न कर सकेंगे।

(घ) सार्वभौम राष्ट्रसे संगठनमें संसारके संपूर्ण राष्ट्रोंके संगठित होने पर भी अन्तरीय मामलोंमें उनकी स्वतन्त्रता पूर्ववत् ही बनी रहेगी। राष्ट्रोंके पारस्परिक कलहको संघकी शक्तिके बल पर सार्वभौम राष्ट्र संगठन शान्त कर दिया करेगा। ऐसे प्रबन्धमें पूर्ण न्यायके न होते हुए भी सभी राष्ट्रोंको उसीके अवलम्बनमें दत्तचित्त होना चाहिये। क्योंकि पूर्ण न्याय तो इस संसारमे कहीं पर भी दृष्टिगोचर नहीं होता। पूर्ण न्यायके अधिकतर निकट जो कुछ भी प्रबन्ध वर्त्तमान कालमें कहा जा सकता है वह सार्वभौम-राष्ट्र-संगठनका प्रबन्ध ही है। इसीके द्वारा भयंकर राष्ट्रीय युद्ध शान्त हो सकते हैं।

[ङ] कोई भी ऐसा राज्य नहीं है जो संपूर्ण व्यक्तियोंके अभिमतको पूर्ण करे। बहुत सी ऐसी बातें हैं जिनको वर्त्तमान कालीन राष्ट्र पूर्ण करनेमें सर्वथा ही असमर्थ है। जातीय राष्ट्रोंकी पृथक् २ परस्पर निरपेक्ष सत्ता सार्वभौम भ्रातृभावकी विरोधिनी है। पारस्परिक भयंकर युद्ध तथा जाति जातिका द्वेष संसारस्थ राष्ट्रोंके पार्थक्यका ही परिणाम है। शान्ति तथा सदाचारकी स्थापनाके लिये सार्वभौम-राष्ट्र-संगठन, सार्वभौम भ्रातृभावके सदृश ही आवश्यक है।

दूसरा परिच्छेद ।

राष्ट्रका समुत्थान ।

§३. *विचार प्रणाली ।*

राष्ट्रीय विचारके दो ढंग तथा दो प्रश्न ।

राष्ट्रके समुत्थान तथा ह्रासका पता लगानेके दो ढंग हैं। राष्ट्रके समुत्थानके क्या कारण हैं और राष्ट्र किन २ परिस्थितियोंमें उत्पन्न हुआ? ये दो प्रश्न हैं जिन पर भिन्न २ ढंगसे ही विचार किया जा सकता है। कारणोंको पता लगानेमें कल्पनाका और परिस्थितियोंका पता लगानेमें इतिहासका ही मुख्य तौर पर सहारा लेना पड़ता है। किन किन परिस्थितियोंमें राष्ट्रने किन किन रूपोंको धारण किया, इस प्रकारका वर्णन इतिहास द्वारा ही संभव है। परन्तु इन परिवर्त्तनोंका कारण जानना कल्पनाका सहारा लिये विना असम्भव है।

राष्ट्रके उदयमें इतिहासका भाग

इतिहास जहां तक पहुंचता है, राष्ट्रका उदय उससे बहुत पूर्व हो हो चुका था। प्राचीन भारतमें वैदिक कालके अन्दर राष्ट्रोंकी सभा पूर्ण रूपसे विद्यमान थी। यहूदियों तथा मिश्रवासियोंके राष्ट्र भारतीय राष्ट्रोंके आधार पर हो बनाये गये थे, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। शोक है कि भारतके प्राचीन पवित्र ग्रन्थ इस समस्याको और इसके रहस्यको पूरे तौर पर नहीं खोलते हैं।

नये राष्ट्रोंकी उत्पत्ति

'सैकड़ों राष्ट्र बने और बिगड़े' इसका ज्ञान इतिहाससे पूरे तौर पर हो जाता है। कुछ ही शताब्द हुए कि सारेके सारे यूरोपीय राष्ट्र नष्ट होकर नये रूपमें प्रगट हुए। गत महायुद्धके कारण भी राष्ट्रोंमें भयंकर परिवर्त्तन उपस्थित हुए और अभी होते चले जा रहे हैं। राष्ट्रोंकी उत्पत्ति तथा ह्रासका राष्ट्रके अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धोंपर विशेष प्रभाव पड़ता है। यही कारण है कि राष्ट्रीयनियमों [पब्लिक ला] के अध्ययन॰ में इससे विशेष तौर पर सहायता मिलती है। 'समुत्थान' के विचारसे राष्ट्र तीन प्रकारके हैं।

(१) आरम्भिक राष्ट्र—आरम्भिक राष्ट्र वे हैं जो जंगली असभ्य जातियोंमें पहिले पहिल प्रगट होते हैं।

(२) नवीन राष्ट्र—भिन्न २ राष्ट्रवाली जातियां जब परस्पर मिलकर एक नया राष्ट्र बनाती हैं या किसी एक ही राष्ट्रको तोड़कर जब कई एक राष्ट्र बनाये जाते हैं तो ऐसे बने राष्ट्रोंको नवीन राष्ट्र का नाम दिया जाता है।

(३) उत्पन्न राष्ट्र—उत्पन्न राष्ट्र वे हैं जिनकी संचालक शक्ति तथा गतिका आधार कहीं बाहर हो।

शासन पद्धति सम्बन्धी संशोधन राष्ट्रको नष्ट नहीं करते।

यहां इस बातका ख्याल रखना चाहिये कि शासन पद्धति सम्बन्धी परिवर्त्तनोंसे पुराने राष्ट्र बदल कर नवीन राष्ट्रका रूप नहीं धारण करते। प्राचीन रोम एक-तंत्र राज्यसे कुलीन-तंत्र राज्यमें प्रविष्ट हुआ परन्तु इससे यह परिणाम नहीं निकाला जा सकता कि रोमका पुराना राष्ट्र नष्ट होकर नवीन राष्ट्र बन गया। राज्य

या शासन पद्धति सम्बन्धी परिवर्त्तन राष्ट्रीय जीवनकी गति या परिवर्त्तनको प्रगट करते हैं। इनसे राष्ट्रका परिवर्त्तन नहीं होता ।—

§४ आरम्भिक राष्ट्र

रोमका समुत्थान

रोमका समुत्थान बहुत ही विचित्र है। भिन्न २ जातियों तथा श्रेणियोंके लोग एकत्र हुए। रोम्युलस तथा रेमसने नेता पदको प्राप्त किया। देखते देखते रोमने एक राष्ट्रका रूप धारण कर लिया। इसमें सबसे अधिक विचित्रताकी बात यह है कि रोम राष्ट्रके समुत्थानसे पूर्व लोग आस पास पहिलेसे ही रहते थे और एक ही देवताकी उपासना करते थे। सहसा उनमें परस्पर मिलकर रहनेकी इच्छा हुई और रोमने राष्ट्रका रूप धारण कर लिया।

एथन्सका समुत्थान

एथेन्सका समुत्थान भी रोमसे बहुत कुछ मिलता है। एथिनियन लोग पहिले पहिल अटीकामें रहते थे। वहां वे लोग भिन्न २ परिवारमें विभक्त होकर कृषि तथा उद्यानका काम करते थे। समय समय पर वे एक ही देवताकी उपासना करते थे। थेस्यू नामक राजाने उनको एकत्र कर एथेन्समें बसाया। इसी समयसे एथेन्सने एक राष्ट्रका रूप धारण किया।

आइसलैण्ड

आइसलैण्डका लोकतन्त्रराज्य भी ध्यान देनेके योग्य है। शुरू शुरूमें वहां भिन्न २ जातियोंके लोग अपने अपने नायकोंके नीचे पृथक् पृथक् तौरपर रहते थे। उल्फिलजादके प्रस्तावको गोडस ने मन्जूर किया और शीघ्र ही आइसलैण्डको सब जातियोंने

२

एकत्र होकर एक राष्ट्रकी नींव डाली। उसी समयसे आइसलैण्ड भी एक राष्ट्र बन गया है।

कैलिफोर्निया

कैलिफोर्नियाका उदय भी बहुत ही विचित्र है। सोने की खानोंके लोभमें संसारके भिन्न २ देशों के लोग वहां एकत्र हुए। संवत् १९०६ (१८४९) में प्रस्ताव पेश किया गया और वहां लोकतन्त्रकी स्थापना हो गयी। यहां राष्ट्रके उदयमें संपूर्ण जनताकी प्रबल इच्छाको ही कारण समझना चाहिये।

भूमिपर बसना

कभी कभी यह भी देखा गया है कि बहुतसे लोग इधर उधर फिरते हुए तथा एक दूसरेके साथ खान पान करते हुए एक जातिके रूपमें संगठित हो जाते हैं और इसके बाद किसी भूमि पर जा बसते हैं। दूसरे देशोंके जीतनेपर भी बहुत बार यही घटना उपस्थित हो जाती है। मुसलमानोंका भारतमें प्रवेश इसीका उदाहरण है। देखनेमें तो युद्ध एक नाशक शक्ति है परन्तु वास्तवमें इसीके द्वारा नये राष्ट्र उत्पन्न होते हैं।

राष्ट्र निर्माणमें युद्धका भाग

युद्ध द्वारा उत्पन्न राष्ट्रोंका अन्तरीय तथा वाह्य विक्षोभों-को दूर करनेमें ही बहुत सा समय खर्च हो जाता है। विजयी तथा पराधीन लोगोंका सम्बन्ध तबतक खिंचा रहता है जबतक वे एक दूसरेसे नहीं मिल जाते। आश्चर्यकी घटना है कि हिन्दुओंतथा मुसलमानोंका पारस्परिक सम्बन्ध कई सदियोंतक साथ साथ रहनेपर भी सन्तोष-

अनक न हुआ। किन्तु लखनऊकी कांग्रेसके पश्चात् इन दो जातियोंमें एकताके जो चिह्न देख पड़े एवं आज उसमें जो वृद्धि हो गयी है, वह देशके लिये कल्याणकी बात है।

युद्ध झगड़े निपटानेका पाशविक साधन है

युद्ध एक प्रकारका पाशविक साधन है। इससे न्याय की आशा करना दुराशामात्र है। यह होते हुए भी प्राचीन कालसे अबतक लोग इसीको निर्णय तथा झगड़ोंके निपटानेका एक मात्र साधन बनाते रहे हैं। ट्यूटन लोगोंका तो यहांतक विश्वास था कि जो सैन्यपर आश्रित हो उसीको ईश्वर विजय देता है। हार जीत तो शारीरिक बल चातुर्य, या वैज्ञानिक कौशल तथा शस्त्रास्त्रकी उन्नतिके सूचक हैं। जो जीतता है वह हारने वालोंसे ऊपर लिखी बातोंमें किसीमें अधिक होता है। यह होते हुए भी संसारकी सभ्य जातियां 'युद्ध' जैसे घृणित क्रूर साधनको छोड़नेके लिये अभी तक तैयार नहीं हैं।

इंग्लैण्डपर साम्राज्यवाद तथा सैनिकवादका भूत

जर्मनीको पराजित कर इंग्लैण्डकी भूख और भी अधिक बढ़ गयी। उसने सैनिक शक्तिके महत्वको पूरी तौरपर समझ लिया। भारतसे मिश्र तथा कुस्तुन्तुनिया पर्यन्त सभी प्रदेशोंको शस्त्र तथा सैनिक बलसे काबूमें रखनेका यत्न कभी भी न्याय संगत नहीं कहा जा सकता।

वास्तविक बात तो यह है कि पुराना शक्ति-सिद्धान्त (Might is right) अभी तक ज्योंका त्यों प्रचलित है।

शक्तिशाली राष्ट्र दुर्बल राष्ट्रोंके हितका कुछ भी ख्याल नहीं करते।

उपनिवेशोंके बसानेमें अत्याचार

उपनिवेशोंके बसानेमें तो यूरोपीय राष्ट्रोंने और भी अधिक अत्याचार किये हैं। अफ्रीका अमरीका तथा आष्ट्रेलियाँके पुराने निवासियोंकी भूमिको जबरन छीनना और उनके साथ क्रूरता करना अत्यन्त शोकजनक है। अस्तु। इन सब उचित तथा अनुचित तरीकोंसे नये राष्ट्रोंका विकास होता है। अतः यहांपर इन सब तरीकोंका उल्लेख कर दिया गया है।

§५. नवीन राष्ट्र

नवीन राष्ट्रकी उत्पत्ति

छोटी २ रियासतें किसी भी कारणसे जब आपसमें मिलजाती हैं और राष्ट्रात्मकराष्ट्र (Federal State) के रूपमें प्रगट होती हैं तब हम उनको नवीनराष्ट्र कहते हैं। यह तबतक नहीं होता जब तक एक ऐसी राष्ट्रात्मक शासन-पद्धति न बना ली जावे जिसको सभी राष्ट्र स्वीकृत करते हों।

विषमराष्ट्र

हंसनगरोंका संगठन, हालैण्डके राष्ट्रोंका परस्पर मिलना और स्विस राष्ट्रोंका एकत्र होना इसीके उदाहरण हैं। राष्ट्रात्मकराष्ट्र विषमराष्ट्र (Complex State) समझा जाता है, क्योंकि इसमें राष्ट्रोंका अपना अपना अस्तित्व पूर्ववत् बना रहता है।

राष्ट्रात्मक राष्ट्रके अन्तर्गत राष्ट्र यदि दृढ़तासे आपसमें मिल जावें और उनका संगठन भी पूर्णताको प्राप्त करे तो वहां शासनपद्धतीय नियमों (Constitutional law) की नींव पड़ने लगती है। इसी स्थानपर राष्ट्रात्मकराष्ट्र दो रूपोंमें प्रगट होते हैं।

शासन पद्धतीत नियम

(१) पूर्णराष्ट्रात्मकराष्ट्र (Federation of State)

(२) अपूर्णराष्ट्रात्मकराष्ट्र (Confederation of State)

पूर्णराष्ट्रात्मक राष्ट्र

पूर्णराष्ट्रात्मकराष्ट्र वही है जिसमें मुख्यराज्यकी शक्ति पूर्ण हो और उसकी स्थिति भी अपरिवर्त्तन शील हो। मुख्य राज्य छोटे छोटे राज्योंका पूरीतौर पर अंग बन गया हो। संवत् १८४४ (सन् १७८७) के राज्य-नियमके बाद संयुक्त प्रान्त अमरीका पूर्णराष्ट्रात्मक राष्ट्र हो गया। संवत् १९०५ (सन् १८४८) में अमरीकाका अनुकरण करते हुए स्विट्जलैंड भी पूर्णराष्ट्रात्मकराष्ट्र बन गया।

अपूर्णराष्ट्रात्मक राष्ट्र

दोनों ही देशोंमें राष्ट्रोंका संगठन, उनका परिणाम होनेके स्थानपर स्वाभाविक बन गया है। परन्तु अपूर्ण राष्ट्रोंमें यह बात नहीं होती। वहां एक राष्ट्र मुख्य बनकर संपूर्ण राष्ट्रोंके शासनका काम करता है। संवत् १९०५ (सन् १८४८) तक स्विट्जलैंडकी और संवत् १८७२ (सन् १८१५) तक जर्मनीकी यही दशा थी। वे अपूर्णराष्ट्रात्मक राष्ट्रही थे।

राष्ट्रात्मक राष्ट्रोंके लिये सबसे अधिक अनुकूल प्रतिनिधि-तन्त्र शासन-पद्धति है। भारतवर्ष बहुत बड़ा देश है। उसमें अनेक राष्ट्र हैं। स्वराज्यके दिनोंमें भारतवर्षको राष्ट्रात्मक राष्ट्रके रूपमें संगठित होकर प्रतिनिधितन्त्र शासन पद्धतिका ही अवलम्बन करना पड़ेगा। उसको अन्य यूरोपीय राष्ट्रात्मक राष्ट्रोंके सदृश अमरीकाका अनुकरण करना पड़ेगा।

राष्ट्रात्मकराष्ट्रोंकी शासन-पद्धति अमरीकाके सदृश होनी चाहिये।

संसारमें ऐसे भी राष्ट्रात्मकराष्ट्र विद्यमान हैं जो एक राजाके द्वारा शासित हैं। अति प्राचीन कालसे मध्यकालतक भारतीय राष्ट्रोंका संगठन किसी न किसी राजापर ही निर्भर रहता था। इस प्रकारका संगठन स्थिर नहीं होता। जबतक कोई शक्तिशाली योग्य राजा सिंहासनपर होता है, राष्ट्रोंका संगठन नष्ट नहीं होता। अयोग्य तथा निःशक्त व्यक्तिके राजा होते ही संगठन चूर चूर हो जाता है। चन्द्रगुप्त मौर्यसे अशोक पर्यन्त भारतवर्ष संगठित रहा। उसके बाद उसका संगठन छिन्न भिन्न हो गया।

एकतन्त्र-राज्य-पद्धतिके दोष

सैनिकबलके सहारे कबतक राष्ट्र आपसमें सम्मिलित रह सकते हैं? समान अधिकार तथा समान व्यवहारही एक ऐसी वस्तु है जो राष्ट्रोंको आपसमें जोड़ सकती है। प्रतिनिधि तन्त्र शासनपद्धतिके सिवाय और कोई तरीका इस बातको प्राप्त करनेमें समर्थ नहीं है।

प्रतिनिधि तन्त्र शासन पद्धतिके गुण

राष्ट्रोंके संगठनके सदृश ही राष्ट्रोंका विभाग भी ध्यान देनेके योग्य है ।

(१) जातीय विभाग—एक राष्ट्रमें जब भिन्न भिन्न जातिके लोग बस जाते हैं तब उसमें जातीय विभागकी समस्या उत्पन्न हो जाती है। यदि उनमें एकताका सूत्र सर्वथा नष्ट हो गया हो तो भिन्न २ जातियां भिन्न भिन्न राष्ट्र बनाने पर तत्पर हो जाती हैं। सिकन्दर तथा नैपोलियनका जातीय संगठन उनकी मृत्युके बाद ही लुप्त हो गया। हालैण्ड से बेलजियमका सन् १८३० में पृथक् हो जाना भी इसी रहस्यसे परिपूर्ण है।

(२) वंशानुक्रमिक विभाग—मध्यकालमें संसारके सभी देशोंमें राष्ट्र राजाके भिन्न २ पुत्रोंमें विभक्त हो जाता था। यह तरीका कभी भी राष्ट्रका हित-वर्धक नहीं कहा जा सकता, क्योंकि इससे छोटे छोटे राष्ट्रोंकी संख्या बढ़ जाती है और किसी एक प्रबल शक्तिवाले विदेशीय राष्ट्रके द्वारा उनका विजय होना सुगम हो जाता है।

(३) राष्ट्रकी स्वतन्त्रता—यह भी सधारणतः देखा गया है कि भिन्न २ राष्ट्रसे पृथक हो कर स्वतन्त्र हो जाना इसी विभागका उदाहरण है। इस प्रकारका विभाग सुगम काम नहीं है, क्योंकि इस काममें प्रायः भयंकर लड़ा-

इयां लड़नी पड़ती हैं । आयर्लैण्डकी खून खराबियां किसीसे भी छिपी नहीं हैं

§६ उत्पन्नराष्ट्र ।

उत्पन्न राष्ट्रके दृष्टान्त

"इटली, लघु एशिया, सिसली आदि प्रदेशोंमें यूनानने अपने बहुतसे उपनिवेश बसाये थे। ये उपनिवेश पूरी तौरपर स्वतन्त्र नहीं थे । इनकी प्रभुत्व-शक्ति मातृभूमिके पास ही अधिकारमें थी । यही कारण है कि इनको नवीन राष्ट्रका नाम न देकर उत्पन्न राष्ट्रका ही नाम दिया जाता है।

रोम उत्पन्नराष्ट्रका एक नया नमूना है ।

रोम भी यूनानियोंका ही एक उपनिवेश था । परन्तु वह सर्वथा स्वतन्त्र होकर साम्राज्य-वृद्धि में प्रवृत्त हुआ । इस लिये उसको उत्पन्न राष्ट्रका एक नया नमूना समझना चाहिये ।

प्राचीन तथा नवीन उपनिवेशोंमें भेद ।

प्राचीन उपनिवेशोंसे आधुनिक उपनिवेश सर्वथा भिन्न हैं। अमरीका इंग्लेण्डसे जुदा हो गया । कनाड़ा आदि भी बहुत कुछ स्वतन्त्र हैं । इनकी उपमा उन बालकोंसे दी जा सकती है जो युवावस्थामें अपने माता पितासे जुदा होकर अलग रहना शुरू करते हैं। जावा भारतका ही उत्पन्न राष्ट्र है ।

सम्राट्के अधिकारका राष्ट्रकी उत्पति में भाग ।

यूरोपमें मध्यकालके अन्दर साम्राज्यके भिन्न २ प्रदेश साम्राज्यसे अधिकार प्राप्तकर पृथक् राष्ट्रका रूप धारण करलेते थे । एक सदीके पूर्व जो साम्राज्यके अंग थे, देखते देखते ही वे एक पृथक् राष्ट्र बन गये । इंग्लैण्डने आजकल कनाडा आदिको बहुत कुछ स्वतन्त्रता दे दी । ये सब उत्पन्न राष्ट्रके भिन्न २ उदाहरण ही हैं ।

विजय

विजयके द्वारा भी प्रायः ऐसे ही राष्ट्र बनते हैं और बिगड़ते भी हैं । नैपोलियनने पुराने राष्ट्रोंको चूर चूर कर नये नये राष्ट्रोंको उत्पन्न किया था ।

§७. राष्ट्रका ह्रास ।

व्यक्तियोंके सदृश राष्ट्रका ह्रास भी होता है ।

संसारका इतिहास साक्षी है कि राष्ट्रका जीवन अमर नहीं है । भिन्न २ राष्ट्रोंके खण्डहरोंसे भूमि भरी पड़ी है । व्यक्तियोंके सदृश ही राष्ट्रकी मृत्युके भिन्न २ कारण हैं । लोगोंका ख्याल है कि राष्ट्र अमर हो सकते हैं । यदि अभीतक उनकी मृत्यु होती रही है तो इसका मुख्य कारण यह है कि जातियोंने सदाचार तथा धर्मका मार्ग छोड़ दिया । परन्तु यह विचार सत्य नहीं है, क्योंकि जातियां सदाचार तथा धर्मके मार्गपर चलती हुई भी नष्ट हो चुकी हैं । यह भी देखनेमें आया है कि विपरीत मार्ग पर चलते हुए भी राष्ट्र शीघ्र मृत्युको प्राप्त नहीं हुए । अधिक क्या मनुष्योंमें भी तो यह नियम त्रैकालिक सत्य नहीं है ।

वर्णसंकरता राष्ट्रकी मृत्युका कारण नहीं है ।

दुष्टसे दुष्ट तथा सदाचार हीन पुरुषोंकी आयु अकसर बहुत ज्यादा देखा गया है और धर्म्मात्मा सदाचारी पुरुषोंको शीघ्र ही मरते हुए देखा है । दुःशासन तथा कुप्रबन्ध भी राष्ट्रकी मृत्युके कारण नहीं । ऐसी हालतोंमें भी प्रायः राष्ट्र चिरकालतक जीवित रहते हैं । प्राचीन शास्त्रकारोंका विश्वास था कि वर्णसंकरतासे राष्ट्र नष्ट हो जाते हैं । आश्चर्य्यकी बात है कि अमरीकाके शक्ति

शाली बननेमें वर्ण-संकरता एक मुख्य कारण है। असली बात तो यह है कि राष्ट्र भी मनुष्यके सदृशही जरा-मरण-ग्रस्त है।

राष्ट्रोंमें मात्स्य न्याय

उन्नतिशील राष्ट्र छोटे छोटे राष्ट्रोंको निगल कर शक्तिशाली बन जाते हैं। जबतक यह बात मौजूद है तब तक राष्ट्र अमर हो हो कैसे सकते हैं? बहुतोंका ख्याल है कि यदि सारा संसार एक ही राष्ट्र बन जावे और एक ही राज्यके द्वारा शासित होने लगे तो राष्ट्रका जीवन मृत्युसे बच सकता है। परन्तु यह हो ही कैसे सकता है? मत-भेद तथा उमंग जबतक राष्ट्रोंमें विद्यमान है, तबतक सार्वभौम संगठनकी आशा करना दुराशा मात्र है।

राष्ट्रोंमें स्वार्थ तथा लोभ।

इस महायुद्धने ही यह स्पष्ट तौर पर दिखा दिया है कि स्वार्थ तथा लोभके वश राष्ट्र कैसे कैसे भयंकर अन्याय पूर्ण काम कर सकता है। रूमका अंग भंग, जर्मनीकी आर्थिक लूट और आस्ट्रिया हंगरीको भिन्न २ राष्ट्रोंमें विभक्त करना इत्यादि इस बातके साक्षी हैं कि राष्ट्रोंका पारस्परिक सम्बन्ध कहां तक खिन्ना हुआ है।

राष्ट्रकी मृत्युके कारण

राजनीतिज्ञ राष्ट्रोंकी मृत्युके निम्नलिखित कारण बतलाते हैं।

(१) अराजकता—

राष्ट्रके संगठनको बदलते और राज्यका परिवर्तन करते वक्त कुछ समयके लिये अराजकता उत्पन्न हो जाती है। यदि राज्यके बदलते ही और राष्ट्रके पुराने संगठनके विनष्ट होते ही नया राज्य स्थापित न हो और न राष्ट्र हो संगठित हो तो

राष्ट्रके नाशकी संभावना हो जाती है । नियंत्रण-रहित होकर प्रत्येक व्यक्तिका स्वच्छन्द विचरना जाति तथा राष्ट्रका ख्याल छोड़ कर काम करना और स्वार्थ-त्यागके स्थान पर स्वार्थसे काम करना बड़ी भयंकर घटना है। यदि यह स्थिति चिरकालतक रहे तो राष्ट्रपर विदेशी लोगोंका आक्रमण हो जाना संभव है। यदि यह न हो तो भी राष्ट्रका जीवन प्रबल अराकजतासे नष्ट हो सकता है। सौभाग्यकी बात है कि अभीतक ऐसी अराजकता उत्पन्न नहीं हुई। कुछ समयके विश्रामके बाद राष्ट्र पुनः संगठित हो गये और उनमें नवीन राज्यकी नींव पड़ गयी । यह बात आर्य जातिके लोगोंमें विशेष रूपसे है। जिस प्रकार मछली पानीसे और मनुष्य वायुसे अलग नहीं हो सकता उसी प्रकार आर्य जातिके लोग राजनीतिक संगठनसे पृथक् नहीं हो सकते । राजनीतिक संगठन उनका स्वाभाविक गुण है। इतिहासमें ऐसा एक भी दृष्टान्त नहीं मिलता जब कि यह जाति राजनीतिक संगठनको छोड़ कर जंगलियोंकी तरह इधर उधर फिरने लगी हो ।

(२) राष्ट्र-परित्याग--एक राष्ट्रको छोड़कर दूसरे राष्ट्रमें बस जाना कभी कभी भयंकर घटनाका रूप धारण कर लेता है। इससे बहुत बार राष्ट्र नष्ट हो जाते हैं। बहुतसे जंगली झुण्डोंने अपने राष्ट्रको छोड़ कर रोमन साम्राज्यमें प्रविष्ट होना चाहा परन्तु जब वे इसमें सफल न हो सके तो वे दोनों ओरसे गये। वे अपना पुराना राष्ट्र भी न पा सके और न नया राष्ट्र ही बना सके।

(३) विजय—एक स्वतन्त्र राष्ट्रके पराधीन होते ही पुराना राष्ट्र नष्ट हो जाता है और बहुत बार नया राष्ट्र भी नहीं बनता। रोमने बहुतसे राष्ट्रोंको अपने में ही मिला लिया और उनके पृथक् अस्तित्वको मटिया-मेट कर दिया। दुर्बल राष्ट्रोंका अधीनता स्वीकार करना एक प्रकारसे राष्ट्रको पराधीन करना है। पराधीन राष्ट्रोंको अपने आपको नष्ट होनेसे बचानेका यत्न करना चाहिये, क्योंकि विजयी राष्ट्र उसको अपना ही अंग बनाकर नष्ट कर सकता है।

(४) सम्मिलन—छोटे छोटे राष्ट्र जब अपने आपको (सम्मिलन द्वारा) किसी एक बड़े राष्ट्रके अंग बना लेते है तो वे स्वयं नष्ट हो जाते हैं। यही कारण है कि सम्मिलन राष्ट्रनाशका एक मुख्य साधन माना जाता है।

(५) पार्थक्य—एक बड़ा राष्ट्र कई छोटे छोटे राष्ट्रोंमें विभक्त होकर स्वयं नष्ट हो सकता है। कभी कभी बड़ी बड़ी रियासतें एक राष्ट्रको आपसमें बांट कर नष्ट कर देती हैं। पोलेण्डका बांटना इसीका ज्वलन्त उदाहरण है। ईरानको बांटनेके लिए रूस तथा इंग्लैण्डकी सन्धि इस बातकी साक्षी है कि इस सभ्य युगमें भी अन्याय तथा अत्याचारके काम पूर्ववत् ही किये जा सकते हैं। मित्रों द्वारा रूमकी कतर-ब्योंत भी उसके नाशका कारण होगी इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है।

तीसरा परिच्छेद ।

राष्ट्रके समुत्थानमें सामाजिक परिस्थितिका भाग ।

§८. *मनुष्यसमाज ।*

मनुष्य समाज की एकता तथा भेद ।

मनुष्य समाज अभीतक पूर्ण रूपसे संगठित नहीं हुआ। भिन्न २ देशोंके लोग सार्वभौम भ्रातृभावकी दृढ़ रज्जुमें अभीतक नहीं बांधे गये। सार्वभौम राष्ट्र तथा सार्वभौम राज्यके लिये नयी नयी कल्पनाएं की गयीं। समय समय पर इसकी प्राप्तिके लिए यत्न भी किये गये, परन्तु सफलता अब भी कोसों दूर है।

भिन्न भिन्न देशोंके लोग अपने आपको सार्वभौम राष्ट्रका अंग न समझ कर एक छोटे परिपूर्ण राष्ट्रका अंग समझते हैं। इससे संसार सैकड़ों भिन्न भिन्न राष्ट्रोंमें विभक्त हो गया है। जाति तथा जातीयताके भेद-भावपूर्ण विचार इसीके परिणाम हैं। धर्म्म-प्रचारकोंने इसको दूर करनेका यत्न किया। महात्मा बुद्धने अहिंसा तथा प्रेमके सिद्धान्तका प्रचार किया। संसारके संपूर्ण मनुष्योंको भाई भाईके समान प्रेमसे रहनेके लिये आदेश किया। परन्तु संसार पुनः उसी प्राकृतिक भेद-भावमें रंग गया।

आज कल तो लोग जातीय भेदको राष्ट्रीय उन्नतिका मुख्य साधन समझते हैं। संसार भिन्न २ रंगोंके मनुष्यों

तथा जातियोंसे परिपूर्ण है। प्रश्न उठता है कि क्या यह भेद स्वाभाविक है अथवा संसारकी संपूर्ण जातियां एक ही प्रधान जातिकी शाखाएँ हैं? यदि यही बात है तो जातियोंमें इतना भेद क्यों? इतिहासके अनुशीलनसे मालूम पड़ता है कि प्राचीनसे प्राचीन कालमें संसार भिन्न रंग वाली जातियोंसे परिपूर्ण था। इस भेदका रहस्य क्या है? अभी तक राजनीतिज्ञों तथा वैज्ञानिकोंको पूरी तरहसे पता नहीं चला।

संसारकी चार मुख्य जातियां।

वर्णसंकरताको बचाते हुए भी संसारकी कोई भी जाति इससे नहीं बची। आज कल संसारमें मुख्यतः चार रंगोंकी जातियां मौजूद हैं। (१) गोरे रंग वाली (२) काले रंग वाली (३) पीले रंग वाली (४) लाल रंग वाली। बहुतसे विचारक इन चारों रंग वाली जातियोंकी मानसिक शक्तिको समान नहीं समझते। उनका ख्याल है कि जातियोंकी भिन्न २ उन्नति तथा योग्यताका रहस्य इसीमें है।

(१) यूथोपियाके काले लोग

अति प्राचीन कालमें यूथोपियाके काले रंगकेलोग यूरोप तथा एशियाके दक्खिनी भागमें बसे हुए थे। इधर उधरसे धक्का खाते हुए अफ्रीकाको ही इन्होंने अपना स्थिर निवास-स्थान बनाया। हजारों वर्ष गुजर गये। परन्तु इन्होंने अबतक किसी प्रकारकी भी राजनीतिक उन्नति नहीं की। ये कहींपर भी गोरे लोगोंकी टक्करमें नहीं खड़े हुए बुद्धि तथा इच्छा-शक्तिमें संसारके अन्य रंगके लोगोंसे ये बहुत ही पीछे हैं। बहुत पुराने समयमें भारतके आर्यों

का और मिश्रके 'सैमाइट्स' लोगोंका इनपर प्रभुत्व था। अभी तक यह हालत है कि अफ्रीकाके नीग्रो लोगोंका एकतन्त्रराज्य निरंकुशता तथा स्वेच्छाचारका दूसरा नमूना है। फरांसीसियोंकी देखा देखी नीग्रो लोगोंका 'हेती' प्रजातन्त्र राज्यका स्थापित करना तथा सफलतापूर्वक चला लेना प्रशंसनीय है।

(२) अमरीकाके लाल रंगके लोग।

अमरीकाके लालरंगके लोग अफ्रीकाके काले लोगोंसे बहुत बढ़े चढ़े हैं। यह होते हुए भी वे राजनीतिक संगठनमें बहुत पीछे हैं। यूरोपके गोरे लोगोंके अमरीकामें पहुंचनेसे पूर्व पेरू तथा मेक्सिकोके लोग बहुत ही अधिक सभ्य थे। महाशय ब्लुंटश्लीका विचार है कि ये लोग आर्यलोगोंकी ही एक शाखा हैं। जिन २ स्थानोंमें इनको सभ्यता-वृद्धिका अवसर न मिला, वहां २ लोग पुनः असभ्यावस्थामें पहुंच गये।

(३) चीन तथा जापानके पीले लोग

पीले रंगके लोगोंने बहुत उन्नति की। ये लोग प्रायः एशियामें ही रहे। इनकी एक शाखा मलायाकी ओर और दूसरी शाखा मंगोलियाकी ओर बढ़ी। मंगोलोंने बड़े २ साम्राज्योंकी स्थापना की। एशियाके मध्य भागको इन्होंने जीता। गोरे लोगोंके साथ इनका विवाह चिरकालसे चला आया है। हूनों तथा तुर्कोंकी अपेक्षा जापान तथा चीनने विशेष उन्नति की। इन्होंने राजनीति तथा दर्शन शास्त्रको अपने ढंगकी पूर्णता दी। कृषि, व्यापार, व्यवसाय, शिक्षा तथा पुलिस विभागके लिए संसार इनका कृतज्ञ है।

गोरे लोगोंका दर्जा संसारके सब रंगके लोगोंसे ऊँचा है। भारत वर्षके देवों और ईरानके असुर

(४) भारत तथा यूरोपकी गोरे रंग वाली जातियां।

निवासियोंने संसारको बहुत कुछ दिया। राजनीति, दर्शन शास्त्र, धर्म्म शास्त्र ज्योतिष, व्याकरण आदि विद्याओंका आविष्कार गोरे लोगोंने ही किया है। इनकी दो मुख्य शाखाएं हैं। (१) सेमिटिक (२) आर्य। सेमिटिक लोगोंनें अपने धर्म्म प्रचारकी ओर ही विशेष ध्यान दिया। मुसलमान, यहूदी तथा ईसाई धर्म्मका विकास इन्हीं लोगोंसे हुआ। आर्य्य जाति संसारकी सब जातियोंसे आगे बढ़ गयी। धर्म्म शास्त्र, दर्शन शास्त्र, तथा व्याकरण आदिमें भारतके आर्य्योंने संसारका बहुत कल्याण किया। ये लोग जब यूरोपमें पहुंचे, तो अवस्थाओंके अनुकूल होनेसे इन्होंने राजनीति शास्त्र, रासायनिक तथा भौतिक विज्ञानको चरमावस्था तक पहुंचाया।

संपूर्ण उन्नति आर्य्यों तथा पीले रंगके लोगोंने की इसमें कुछ भी सन्देह नहीँ है। यह होते हुए भी

रंग तथा जातीय भेद स्वाभाविक नहीं

रंगका भेद स्वाभाविक नहीँ कहा जा सकता। भूमि जलवायु तथा अन्नका भेद ही इसमें मुख्य कारण है। अधिकसे अधिक पांच हजार वर्षोंतकके इतिहासका पता चलता है। मालूम नहीं मनुष्य समाजके विकासको कितने हजार वर्ष गुजर चुके। शुरू २ में क्या था—इसका अनुमान करना सर्वथा कठिन है। महाशय ब्लुन्टश्लीने रंग भेदको स्वाभाविक समझनेमें भयंकर भूल की है। यह भूल स्वाभाविक

थी । क्योंकि भूमि, जल, वायु तथा अन्नका भेद ही सभ्यता तथा रंगके भेदका मुख्य कारण है। खास २ प्रकारकी सभ्यताका खास २ प्रकारके रंगके साथ स्थिर सम्बन्ध हो जाना कुछ भी आश्चर्यप्रद नहीं । परन्तु इस आधारपर रंग तथा जातीय भेदको ईश्वरीय सृष्टिका परिणाम समझना और अपने गोरे रंगपर अभिमान करना कुछ भी उचित नहीं मालूम पड़ता ।

३९. जनता तथा जाति ।

जनता तथा जातिमें भेद ।

जनता तथा जातिमें बड़ा भेद है। मनुष्य जब किसी एक प्रकारकी सभ्यताको उत्पन्न करते हैं और एक सदृश जीवन व्यतीत करने लगते हैं, जनताका विचार तभी शुरू होता है। पारस्परिक संगठन या सम्मिलन जनसमूहको 'जनता' में परिवर्तित नहीं कर सकते। सदियोंसे एक ही देश, प्रथा, धर्म्म तथा एक ही वायुमण्डलमें लोगोंके रहनेसे उनके स्वभाव, विचार तथा रहन-सहनमें ऐसी सदृशता उत्पन्न होती है जो उनको दूसरे जनसमूहोंसे सर्वथा पृथक् कर देती है और उनको एक 'जनता' बना देती है।

जाति शब्दका राजनीतिक स्वरूप

'जाति' का व्यवहार राजनीतिक है। राष्ट्रके विकासके साथ ही इसका घनिष्ठ सम्बन्ध है। एक विशेष प्रकारकी शासन-पद्धतिमें संगठित होकर और स्वदेशके प्रेमसे प्रेरित होकर, अपने ही स्वार्थको सामने रखते हुए उन्नति करनेकी इच्छुक जनता 'जाति' का रूप धारण करती है।

३

किसी मनुष्यसमूहको 'जनता' तथा एक जातिका रूप तभी प्राप्त होता है जब वह निम्नलिखित बातोंसे प्रभावित होता है।

(१) धर्म्मका प्रभाव—अति प्राचीन कालमें एशियाके अन्दर और मध्यकालमें यूरोपके अन्दर 'धर्म्म' का लोगोंपर बहुत ही अधिक प्रभाव था। विधर्मियोंको लोग घृणाकी दृष्टिसे देखते थे और बहुत बार अपने देशमें घुसने नहीं देते थे। दैववश जब विधर्मी लो[ग] किसी राष्ट्रमें बस भी जाते थे तो भी [वे] संपूर्ण राजनीतिक तथा सामाजिक अधि[का]रोंसे वञ्चित रखे जाते थे। भारतवर्ष[में] अभीतक हिन्दू मुसलमानोंके पारस्परि[क] अनुचित व्यवहारका मुख्य कारण यही है। बहुत संभव है कि ईरानी असुरों तथा भा[र]तीय आर्य्योंके पार्थक्यका मुख्य कारण [भी] धर्म्म ही हो। बौद्धों तथा पौराणिकों [के] पारस्परिक विरोधका मुख्य कारण भी य[ही] था। यहूदी लोग भी धर्म्मके प्रभावसे [इस] हद्द तक रंग गये थे कि उन्होंने बैबलो[नि]याके कारागारमें, रोम तथा रोमन साम्राज्य[के] अन्तर्गत अलक्जन्दरियामें सैकड़ों कष्ट उ[ठाते] हुए भी अपने धर्म्मका परित्याग नहीं किय[ा]। यहूदी राष्ट्रके नाश पर भी उन्होंने अ[पने] आपको धर्म्मके बलपर अन्ततक संग[ठित रखा]

रखा। आजकल 'संगठन' में धर्म्मका भाग दिनपर दिन कम होता जाता है। स्वदेश, स्वजाति तथा स्वराज ही आज कल संगठनके मुख्य आधार हैं। जर्मनीमें कई धर्म्मके लोग थे, आस्ट्रिया हंग्रीमें भिन्न २ जातियों तथा भिन्न २ खूनके लोग थे, इसपर भी वहांके लोग जाति तथा जनताके रूपमें संगठित हो ही गये।

(२) भाषाका प्रभाव—मनुष्योंको भिन्न २ समूहोंमें संगठित करनेका काम धर्म्मसे भी बढ़ कर भाषाने किया है। जनता तथा जातिका आरंभ 'समान भाषा' के साथ विशेष तौरपर जुड़ा हुआ है। एक भाषा-भाषी लोग जब भिन्न २ स्थानोंमें जाकर बस जाते है तब दूसरे लोगोंसे मिलनेसे, नयी परिस्थिति तथा नये वायुमण्डलमें पलनेसे और मातृ-भूमिसे सर्वथा दूर हो जानेसे उनकी भाषा मातृ-भाषासे भिन्न हो कर नया रूप धारण कर लेती है। एक ही भाषा बोलने वाले लोग अपने आपको एक दूसरेका भाई समझने लगते हैं और सुख दुःखमें साथ देनेमें अधिक समर्थ हो जाते हैं।

हृदयगत उद्वेग तथा विचारको दूसरोंपर प्रकाशित करनेका भाषा एक मुख्य साधन है। एक परिवारसे दूसरे परिवारमें और एक सन्ततिसे दूसरी सन्ततिमें वही भाषा

समान रूपेण जाती है। भाषाकी एकता जातीयताको जीवित रखती है और जनताको एक दूसरेसे जुदा नहीं होने देती है। भाषाका महत्व जातीयतामें यहांतक है कि भिन्न २ राष्ट्रोंके लोग पर‌राष्ट्रकी भाषा ग्रहण कर, अपनी पुरानी जातीयताको छोड़ कर नयी जातीयताको ग्रहण कर लेते हैं। यही बात थी जिसने जर्मनीके आस्ट्रगोथों तथा लम्बार्डोंको इटैलियन और सेल्ट्स, फ्रैंक्स तथा बर्गंडियन्जको फरांसीसी बना दिया।

यूरोपमें जातीयताके भावोंके बढ़नेका मुख्य कारण भिन्न २ राष्ट्रोंकी अपनी अपनी भाषाएं हैं। जातीय साहित्य परही जातीयताकी किसी हद्द तक नींव है। 'किसी' हद्दतक का शब्द इस लिए कहा गया है कि बहुत बार जातीयताके भाव भिन्न-भाषा-भाषी लोगोंमें भी जागृत हो जाते हैं। दृष्टान्त स्वरूप ब्रिटन्स तथा बास्कस नामक जातियां भिन्न भाषा बोलती हुई और फरांसीसी भाषाको विदेशीय भाषा समझती हुई भी अपने आपको फरांसीसी समझती हैं और फ्रान्सकी जातीयताके भावोंसे पूरी तरह रंगी हुई हैं। इसका मुख्य कारण एक राष्ट्र तथा एक शासनपद्धतिमें रहना, एक स्वार्थसे प्रेरित होकर काम करना और सुख-दुःखमें समान तौरपर भाग लेना ही है।

(३) स्वभाव, देश-प्रथा तथा राजनीतिक एकताका प्रभाव—उपरि लिखित दृष्टान्तसे ही स्पष्ट है कि स्वभाव देशप्रथा तथा राजनीतिक एकता भी जनता तथा जातीयताके उत्पन्न करनेमें बड़ा भारी कारण है। भारतमें भाषा तथा धर्म्म

भिन्न भिन्न होनेपर भी लोगोंमें जातीयताके भाव उत्पन्न हो रहे हैं। इसका मुख्य कारण राजनीतिक तथा भौगोलिक एकता है। आस्ट्रिया-हंग्रीमें भिन्न जाति तथा भिन्न धर्म्मके लोग रहते थे। इसपर भी वहां राष्ट्रात्मक राज्यकी नींव पड़ गयी, क्योंकि वहां समान विपत्ति तथा समान स्वार्थसे प्रेरित होकर लोग एक जनतामें परिवर्तित हुए और एक शासन-पद्धतिमें संगठित हो गये।

उपरि लिखित दृष्टान्तोंसे सिद्ध है कि धर्म्म, भाषा, जाति, रीति, रिवाज, स्वभाव आदिके भिन्न होते हुए भी समान भय तथा समान स्वार्थके कारण एकताके निमित्त इच्छुक जनता आपसमें संगठित हो जाती है। ऐसे संगठनसे एक नये ढंगकी जातीयता उत्पन्न होती है। अमरीका तथा इंग्लैंडका इतिहास इसीका साक्षी है।

चिरकाल तक एक ही राष्ट्रमें रहते हुए भिन्न भिन्न जातिके लोग एक नये ढंगकी सभ्यताको जन्म देते हैं। भारतवर्ष भिन्न २ जातिके लोगोंसे परिपूर्ण है। उन जातियोंके रीति-रिवाज तथा आचार-व्यवहारके नियम भी आपसमें नहीं मिलते हैं। यह होते हुए भी वे ऐसे अज्ञेय दृढ़ तन्तुसे आपसमें जुड़े हुए हैं जो उनको सारे संसारके लोगोंसे पृथक् कर रहा है।

संगठन तथा सभ्यताकी उत्पत्तिमें मानुषिक यत्नके साथ साथ प्राकृतिक यत्न भी सम्मिलित हैं। प्रकृति

अपने अज्ञेय नियमोंके सहारे एक ही राष्ट्रके भिन्न २ निवासियोंमें वह समता उत्पन्न करती है जो भिन्न २ राष्ट्रके लोगोंके सामने आते ही बड़ी सफाईसे झलकने लगती है। यह समता ही विशेष रूपमें सभ्यताके नामसे पुकारी जाती है। भारतीय सभ्यता तथा आंग्ल सभ्यतामें जो भेद है वह इस समताका ही भेद है। यही समता मनुष्योंमें प्रकट होकर जाति तथा जातीयताको जन्म देती है। भिन्न २ कार्य्योंमें लगी हुई जनता एक राष्ट्रमें अंग्रेज जातिका रूप धारण करती है और दूसरे राष्ट्रमें जर्मन जातिका। यह क्यों? यह इसी लिये कि भिन्न २ राष्ट्रोंकी भिन्न २ सभ्यतामें पलकर जनता भिन्न २ रूप धारण करती है। प्राकृतिक नियमोंसे उनका स्वभाव, रीति-रिवाज तथा भाषा भी परस्पर भिन्न हो जाती है। एक ही जनता समयके चक्रमें पड़कर भिन्न २ जातिके नामसे पुकारी जाने लगती है। अंग्रेज, जर्मन, फरांसीसी, स्विस तथा भारतीय एक ही आर्य्य जातिकी शाखाओंसे विकसित हुए हैं। परन्तु आपसमें इनका कितना ज्यादा फरक है यह किसीसे भी छिपा नहीं है।

§१०. जातियोंके अधिकार।

संसार भिन्न २ जातियोंसे परिपूर्ण है। जातियोंका यह नैसर्गिक अधिकार है कि वे जीवित रहें। यदि उनके जीवन पर विपत्ति आनेकी आशंका हो तो वे प्रत्येक प्रकारका काम कर सकती हैं। आपत्तिके समय न्याय तथा अन्यायका ख्याल नहीं किया जाता। यूरोपीय राष्ट्रके लोगोंने अपने उपनिवेश बसानेके लिए सकड़ों पुरानी जातियोंका उच्छे

कर दिया। इस उच्छेदसे बचनेके लिये यदि वे राज्य-क्रान्ति करतीं तो न्याययुक्त था। भारतीयोंको भी इस सिद्धान्तका ख्याल रखना चाहिये। जीवनरक्षणसे बढ़ कर और कोई पवित्र काम नहीं। जातीय जीवनकी रक्षामें किया गया प्रत्येक प्रकारका काम पवित्र तथा धर्म्मसंगत है। महाशय ब्लुन्ट्शलीके विचारमें जीवन-रक्षणके सदृश ही जातियोंको निम्नलिखित बातोंकी भी रक्षा करनी चाहिये।

(क) भाषा—जाति तथा जनताकी मुख्य संपत्ति मातृ-भाषा है। किसी भी राष्ट्रको यह अधिकार नहीं है कि वह किसी अन्य जातिकी मातृ-भाषाको नष्ट करे या उसमें लिखी पुस्तकोंको प्रचलित होनेसे रोके। इंग्लैण्डका भारतीय भाषाओंकी उन्नतिमें ध्यान न देना भारतीयोंके साथ अन्याय करना है। कमसे कम हिन्दी तो भारतकी राष्ट्र-भाषा है। उसको राज्य-भाषाका स्थान अवश्यही मिलना चाहिये।

(ख) रीति-रिवाज—भाषाके सदृश ही अपने रीतिरिवाज़ोंका नैसर्गिक अधिकार है। जो रीति-रिवाज़ न्याय तथा सदाचारके विरुद्ध हों उनको दूर करना ही चाहिये। इंग्लैण्डने भारतसे सतीकी रीतिको हटाया अच्छा ही किया।

(ग) राज्यनियम तथा सदाचार-नियम—अपने राज्यनियमों तथा सदाचार-नियमोंको कायम रखना प्रत्येक राष्ट्रका कर्तव्य है। यहां भी यह ख्यालमें रखना चाहिये कि जो राज्य-नियम या सदाचार-नियम हानिकर हों उनको दूर करना उचित है। यज्ञमें बकरोंको काटकर बलि देना राज्य-नियमोंके द्वारा रोकना चाहिये। इस विषयमें जो कुछ

कठिनाई है वह यही है कि यह पता नहीं चलता कि कौन राज्य-नियम या सदाचार-नियम बहुत ही हानिकर है और कौन सा नहीं। बहुत बार ऐसे मामलोंमें ग़लती भी हो जाती है।

(घ) सभ्यता—प्रत्येक राष्ट्रकी जनताको अपनी सभ्यताकी रक्षाका यत्न करना चाहिये। पराधीनताका सबसे बड़ा दोष यही है कि लोग अपनी सभ्यता खोदेते हैं। अंग्रेज लोग परोक्ष रीतिसे भारतीयोंमें अपनी सभ्यता ठूंस रहे हैं। उनका यह काम बहुत ही अन्यायपूर्ण है। भारतीयोंको अंग्रेजोंकी भोग-विलासपूर्ण सभ्यतासे कुछ भी लाभ नहीं पहुंच सकता।

§११ *समाज*

फरांसीसी राजनीतिज्ञोंने समाज, जाति तथा राष्ट्रमें कोई भेद नहीं माना हैं। इससे विचारमें बड़ी गड़बड़ पड़ती है। जर्मनीके विचारकोंने शुरूसे ही राष्ट्र, जाति तथा समाज-को पृथक् पृथक् मानकर विचार करना शुरू किया। उनके अनुसार मनुष्योंके साधारण सम्मिलन या संघका नाम समाज है। दृष्टान्त स्वरूप, आर्य समाज, ब्रह्मसमाज इत्यादि इत्यादि। एक राष्ट्रमें राजनीतिक तौरपर संगठित पुरुषोंका नाम 'जाति' है। जाति शब्दमें उसका राजनीतिक स्वरूप छिपा है परन्तु समाज शब्दमें यह बात नहीं। जाति अपने अपमान, सम्मान आदिका ध्यान रखती है, 'समाज' में यह बात कहां? समाज नियमनिर्माण, शासन तथा निर्णय आदि-का कुछ भी काम नहीं कर सकता। 'जाति' यह सब कुछ करती है।

जाति तथा समाजका परस्पर भेद होते हुए भी आपसमें बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध है। राष्ट्र या जाति भिन्न २ समाजोंके लिए अच्छे २ नियम बनाती है और उनकी रक्षा करती है। उनके स्वार्थोंको कई तरीकोंसे पूरा करनेका यत्न करती है। यह उचित भी है। क्योंकि समाज ही राष्ट्र तथा जातिको आर्थिक सहायता पहुंचाता है। समाजको नुक्सान पहुंचते ही राष्ट्र तथा जातिको नुक्सान पहुंचना स्वाभाविक है। स्वास्थ्यसंपन्न शिक्षित समाज राष्ट्र तथा जातिको पुष्ट करता है और बढ़नेमें बड़ा भारी सहारा देता है।

बहुत बार समाजका राष्ट्र तथा जातिसे घनिष्ट सम्बन्ध नहीं भी रहता। यह तभी होता है जब समाज कुछ एक अपने ऐसे स्वार्थोंको पूरा कराना चाहता है जो राष्ट्र तथा जातिको अभीष्ट नहीं होते। इससे विपरीत भी देखा गया है। राष्ट्र तथा जाति समाजसे बहुतसी ऐसी बातें कराने चाहते हैं जो वह नहीं कर सकता या जिनका करना वह पाप समझता है। प्रायः शासनपद्धति तथा शासनके समुचित न होनेसे समाजमें विप्लव तथा विक्षोभ हो जाता है। राष्ट्र तथा जाति जब उस विप्लवको दूर करना चाहती है तो समाजका कोप और भी अधिक बढ़ जाता है।

समाजका 'जनता' के साथ भी सम्बन्ध है। परन्तु उतना घनिष्ट नहीं जितना कि राष्ट्र तथा जातिके साथ। जनताकी भाषा तथा विचार-प्रणाली अपनी होती है। समाज तो जनताका ही एक अंग है। उसका अपना कुछ

भी नहीं होता है। जनता कई राष्ट्रोंमें विभक्त हो सकती है परन्तु समाज ऐसा नहीं कर सकता।

§१२ *संघ तथा श्रेणी।*

जिस प्रकार संसार भिन्न २ जातियों तथा जनताओंमें विभक्त है उसी प्रकार प्रत्येक जनता भिन्न भिन्न दल, संघ या श्रेणी (tribes) के लोगोंमें विभक्त होती हैं। हो सकता है कि गोंड भील आदि आर्य जातिके ही भाग हों परन्तु आजकल वे भिन्न श्रेणीके समझे जाते हैं। उनकी भाषा तथा रहन-सहनने एक नया रूप धारण कर लिया है। वे लोग दूसरी श्रेणीके लोगोंको विदेशीयकी दृष्टिसे देखते हैं।

एक ही जनताको भिन्न भिन्न श्रेणीके लोगोंमें कुछ कुछ समानता होती है। भील, गोंड, सन्थाल आदि जितना भारतीयोंसे मिलते हैं उतना यूरोपियन लोगोंसे नहीं। क्योंकि यद्यपि उनकी भी जाति या रहन-सहन भारतीयोंसे भिन्न है तो भी बहुत अंशोंमें यूरोपिनोंकी अपेक्षा वह भारतीयोंसे अधिक मिलता है। उनकी भाषामें जातिका कुछ न कुछ भाग अवश्य ही मिला हुआ है। संसारके सम्मुख भिन्न भिन्न जनताओंकी जो स्थिति है, वही स्थिति जाति तथा जनताके सम्मुख भिन्न भिन्न श्रेणीके लोगोंकी है। श्रेणियोंका होना न तो बुरा है और न अच्छा ही है। जनतासे पृथक् हो कर भिन्न भिन्न श्रेणियोंके लोगोंको अपनी शक्ति वृद्धिका पूरा अवसर मिलता है। यह बुराईका रूप तभी धारण करता है जब यह राष्ट्रके संगठनमें बाधक हो जाता है। रोम भिन्न २ श्रेणीके लोगोंके पार्थक्यसे शक्ति-संपन्न

हुआ और यूनान इसीसे एक बड़े राष्ट्रका रूप धारण करनेमें असमर्थ हुआ।

जर्मनीको उन्नति करनेमें सबसे बड़ी बाधा यही थी कि वहां भिन्न भिन्न श्रेणीके लोग विद्यमान थे। एक २ श्रेणीके लोगोंने अपनी छोटी २ रियासतें कायम करली थीं। बहुत ही मेहनतके बाद बिस्मार्कने इन रियासतोंको आपसमें जोड़कर राष्ट्रात्मक राज्यकी नींव रखी। जर्मनीके दुश्मन जर्मन साम्राज्यको छिन्न भिन्न करनेके लिये इनको प्रायः साधन बनाते रहे। यही बात आस्ट्रिया-हंग्रीको उन्नतिमें बाधक थी। पांच साल तक जर्मन मित्रदल फ्रान्ससे लड़ता रहा परन्तु आस्ट्रिया-हंग्रीकी एक रियासतके फूट जानेसे उसको बहुत ही अधिक चोट पहुंची।

भारतवर्ष मरहठा, बंगाली, गुजराती, राजपूती, बुन्देली, कनाड़ी आदि अनेक श्रेणियोंके लोगोंसे परिपूर्ण है। इन सबकी अपनी अपनी भिन्न २ भाषाएं हैं। भारतको एक राष्ट्र बनानेमें जो बाधाएं आजकल पड़ रहीं है उनमें एक मुख्य कारण भिन्न २ श्रेणियोंके लोगोंका होना भी कहा जा सकता है। यह भी बहुत सम्भव है कि एक राष्ट्रके रूपमें संगठित होनेपर भी भारतकी स्थिति सदा ही पेचीदी बनी रहे और भिन्न २ श्रेणियोंके लोगोंके होनेसे राष्ट्रकी एकताके भंग हो जानेके भयसे भारतीयोंका दिल धक् धक करता रहे।

§१३. जाति।

समाज तथा श्रेणीके सदृश ही भिन्न २ जनताएँ जातियोंमें विभक्त हैं। जातियोंका मुख्य केन्द्र भारतवर्ष है। मिश्र तथा ईरानमें भी इसका कुछ कुछ प्रभाव पड़ा है। यूरोप जात पांतके

झगड़ोंसे बचा रहा । परन्तु उसमें भिन्न २ श्रेणीके लोग-का झगड़ा बराबर बना रहा और इसी झगड़ेसे वह बहुत कुछ उन्नत भी हुआ। भारतमें हिन्दुओंका विश्वास है कि ब्राह्मण लोग ब्रह्माके मुंहसे, क्षत्रिय बाहुसे, वैश्य जंघासे और शूद्र पैरोंसे उत्पन्न हुए हैं । जो जिस जातिमें उत्पन्न हुआ वह उस जातिको नहीं छोड़ सकता । इन जातियोंके सदृश ही भारतमें बहुतसी उपजातियां भी विद्यमान हैं। कुम्हार, तेली, चमार, जुलाहा, धोबी, लोहार, सुनार इन्हीं उपजातियोंके परिणाम हैं।

जातियों तथा उपजातियोंका वास्तविक उद्भव भिन्न २ कार्य्योंमें एक ही परिवारके लगातार लग जानेसे हुआ है। प्राचीन भारतीयोंका ख्याल जितना भेद-भावको स्थिर रखनेकी ओर गया उतना उसको मिटानेकी ओर नहीं गया। शुरू शुरूमें लोग चार ही पेशोंमें लगे हुए थे। जो लोग पढ़ाते लिखाते थे और संपत्ति बटोरनेका ख्याल छोड़कर राज्य-संचालन तथा राज्य-नियमोंको एकत्र करनेका काम करते थे वे ब्राह्मण कहलाते थे। राष्ट्रका धार्मिक काम भी यही लोग करते थे । जो लोग युद्धमें लड़ते थे वे क्षत्रिय, जो लोग व्यापार-व्यवसायका काम और खेती करते थे वे वैश्य, तथा जो लोग तीनों वर्णोंकी सेवा सुश्रूषाका काम ही करते थे वे शूद्र नामसे पुकारे जाते थे।

जातियोंकी स्थिर संस्था बन जानेसे एक व्यक्तिका दूसरी जातिमें जाना कठिन हो गया। क्षत्रिय ब्रह्मज्ञानी होते हुए भी ब्राह्मण नहीं बन सकता था। समयके गुजरनेके साथ भिन्न भिन्न वर्णोंके लोगोंने अपना पुराना काम छोड़कर नया काम करना शुरू किया परन्तु उनकी जाति पूर्ववत् बनी रही। एक

ब्राह्मण क्षत्रिय या शूद्रके यहां रोटी पकानेका काम करते हुए भी अपना ब्राह्मणत्व नहीं खोता। यही हालत अन्य जातिके लोगोंकी भी है।

व्यापार-व्यवसायके बढ़ने और राज्य-प्रबन्ध तथा शासन-कार्य्यमें श्रमविभागके उत्पन्न हो जानेसे उपजातियोंकी सृष्टि हुई। उपजातियोंमें भी भिन्न भिन्न नगरों तथा ग्रामोंके आधार-पर भेद स्थापित हो गये। ब्राह्मणोंमें सारस्वत तथा कान्य-कुब्जके भेद और क्षत्रियोंमें पूर्वियों तथा पच्छिमियोंके भेद इसीके ज्वलन्त उदाहरण हैं।

समाजकी स्थिरता तथा शान्तिको कायम रखनेमें जातियों तथा उपजातियोंने काफी काम किया। जबतक भारतीयोंमें आत्मसम्मान, वैयक्तिक स्वतन्त्रता तथा वैयक्तिक समानताके भाव जागृत नहीं हुए थे और कर्मवादके स्थानपर भाग्य-वाद प्रबल था, जाति तथा उपजाति शान्ति तथा स्थिरताकी बाधक न हुई। राष्ट्रीय एकता, भ्रातृभाव तथा जातीयताके भावोंको बढ़ाने और जनताके राजनीतिक जीवनको उन्नत करनेमें जातियों तथा उपजातियोंने भारतको बहुत ही अधिक नुकसान पहुंचाया। भाग्यवाद तथा निराशाके पचड़ेमें पड़कर भंगियोंने ब्राह्मण बननेका यत्न नहीं किया तथा ब्राह्मणोंने घर बैठे ही मुफ्तका धन प्राप्तकर देशके उद्धारके लिये विशेष यत्न न किया। यूरोपकी दशा भारतसे सर्वथा भिन्न थी। यूरोपमें व्यापार-व्यवसायके नये नये गिल्ड (दल) बने। इसके साथही साथ कुलीनों तथा पादरियोंकी संस्थाएं भी वहां पर विद्यमान थीं। साधारण लोगोंके पास ज्यों ही धन बढ़ा त्यों ही उन्होंने कुलीनों तथा पादरियोंकी शक्तिको चकना-चूर किया और लोकतन्त्र राज्यकी यूरोपमें स्थापना की।

धनके बहुत अधिक बढ़नेसे और उत्पत्तिके नवीन साधनोंके दोषपूर्ण होनेसे साराका सारा यूरोप आजकल धनियों तथा दरिद्रोंमें विभक्त हो गया है। कर्मवाद तथा पौरुषवादके आधारपर काम करते हुए वहांके दरिद्रोंने अपने आपको समितियोंमें संगठित किया है, और हड़ताल तथा निष्क्रिय प्रतिरोधको साधन बनाकर धनियोंकी शक्तिको चकनाचूर करनेके लिये यत्न करना शुरू किया है। इसी यत्नका उज्ज्वल फल रूसका साम्यवादी राज्य है।

भारतवर्ष पुराने अन्धविश्वासों तथा ब्राह्मणोंकी उपासनाके ही पीछे पड़कर बुतपरस्त तथा भाग्यवादी बना रहा। अंग्रेजोंका भारतपर राज्य होते ही भारतकी पुरानी स्थितिमें परिवर्तन शुरू हो गया। धीरे धीरे भारतवर्ष भी साम्यवाद तथा कर्मवादकी ओर झुकता जा रहा है। अंग्रेजोंका स्वार्थ तथा स्वेच्छाचारी शासन जनतामें राजनीतिक जीवनको उन्नत कर रहा है। कालिजोंकी पढ़ाई और आर्य्यसमाज, ब्रह्मसमाज आदि समाजोंका यह फल है कि ब्राह्मणों तथा जात-पांतका अनुचित महत्व भारतसे उठता जाता है।

§१४ जन-संख्याका महत्व ।

प्राकृतिक परिस्थितिका मनुष्यके आचार व्यवहारपर प्रभाव

प्राकृतिक परिस्थितिका मनुष्योंके आचार-व्यवहार तथा स्वभावपर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। यही कारण है कि राष्ट्रका विचार करते समय मनुष्योंके साथ साथ प्राकृतिक परिस्थितिका भी विचार करना पड़ता है।

वंश तथा पैतृक संस्कार ।

वंश तथा पैतृक संस्कार भी मुख्य तत्व हैं। इन्हींके प्रभावसे एक मनुष्य दूसरे मनुष्यसे और एक जाति दूसरी जातिसे परस्पर नहीं मिलती। मनुष्योंमें प्रत्येक प्रकारकी भिन्नता होते हुए भी एकताकी ओर झुकाव होता है और इसी झुकावका परिणाम राष्ट्र है। राष्ट्रके निर्माणमें प्राकृतिक परिस्थिति तथा मानुषिक आचार-व्यवहारका एक सदृश भाग है। राष्ट्र प्रकृति तथा मनुष्यके संयोगका ही परिणाम है।

राष्ट्रकी शक्ति तथा जनसंख्याकी वृद्धि ।

जनसंख्या-वृद्धिके साथ राष्ट्रकी शक्तिकी वृद्धिका घनिष्ट सम्बन्ध है। मृत्युकी अपेक्षा उत्पत्तिके अधिक होनेपर ही जनसंख्या बढ़ती है। आजसे बहुत समय पहिले यूरोपमें मृत्यु संख्या अधिक थी। उस समय वहां जनसंख्या बहुत न बढ़ी। दुर्भिक्ष, रोग, युद्ध आदि विपत्तियोंमें यूरोपीय लोग बहुसंख्यामें मृत्युको प्राप्त होते थे। आजकल यूरोप समृद्ध है। अब दुर्भिक्ष तथा रोग आदि भी वहां बहुत कम देख पड़ते हैं। यही कारण है कि कुछ सदियोंसे वहां आबादी दिन-दूनी रात-चौगुनी बढ़ी है। इस आबादी बढ़नेका मुख्य कारण उत्पत्तिका बढ़ना नहीं है, अपितु रोगोंका कम होना ही है। यह प्रायः देखा गया है कि सभ्यता तथा समृद्धिकी वृद्धिके अनुपातमें मनुष्योंकी उत्पादक शक्ति नहीं बढ़ती है। परन्तु इसमें सन्देह नहीं है कि मृत्युको बढ़ाने वाले कारण सर्वथा कम हो जाते हैं।

सभ्यता तथा समृद्धि-का स्वच्छता तथा स्वास्थ्यके साथ सम्बन्ध ।

सभ्यता तथा समृद्धिकी वृद्धिके साथ साथ यूरोपमें स्वच्छता तथा स्वास्थ्य बढ़ा । दुर्भिक्ष तथा रोग दूर किये गये । वृद्धों, बालकों, अनाथों तथा विधवाओंकी रक्षाका उपाय किया गया और बेकारोंको काम तथा भोजन दिया गया । यही कारण है कि यूरोपकी आबादी पूर्वापेक्षा बहुत ही अधिक बढ़ गयी ।

जनसंख्याकी वृद्धि तथा राष्ट्रका विस्तार ।

राष्ट्रकी उन्नति-अवनतिमें जनसंख्याका बड़ा भारी भाग है । यदि प्राचीन कालमें जनसंख्या न बढ़ती तो संगठित राज्य तथा राष्ट्र न उत्पन्न होते । यही जनसंख्या-वृद्धि जब राष्ट्रकी आर्थिक शक्तिका अतिक्रमण कर देती है तो उपनिवेश-वृद्धि तथा विजय अपना रूप प्रकट करती हैं । आजकल तो राष्ट्रकी सैनिक तथा व्यावसायिक शक्तिका दारोमदार जनसंख्यापर ही है । जनसंख्या ही राष्ट्रका प्राण तथा जीवनाधार है ।

§५ १ *जनसंख्याका विभाग ।*

जनसंख्याका विभाग तथा उसमें प्राकृतिक कारणोंका भाग ।

जनसंख्या-वृद्धिके सदृश ही जनसंख्याका विभाग बहुत ही महत्वपूर्ण है । जनसंख्या विभागमें भी प्राकृतिक कारणोंका बड़ा भाग है । संसारमें अनेक भूभाग मनुष्योंसे खचाखच भरे हुए हैं । यह क्यों ? यह इसलिये कि मनुष्योंको अपने जीवन-निर्वाहके लिये प्राकृतिक पदार्थोंका सहारा लेना पड़ता है । जहां प्राकृतिक

पदार्थ अधिक उत्पन्न होते हैं वहां मनुष्य भी अधिक संख्या-में रहते हैं। परन्तु जहां यह बात नहीं है, भूमि मरुप्राय या ऊसर होनेसे अनुत्पादक है वहां जनसंख्याका कम होना या सर्वथा ही न होना स्वाभाविक है।

जनसंख्या-विभाग तथा मानसिक कारण ।

जनसंख्या-विभागमें प्राकृतिक कारणोंके सदृश ही मानसिक कारणोंका भी मुख्य भाग है। शिकार-प्रधान जातियोंको जितना भूमि-भाग जीवन निर्वाहके लिये चाहिये उसके सौवें हिस्से-में ही कृषिप्रधान जातियां अपना काम चला लेती हैं। यदि दैवात् व्यापार तथा व्यवसायमें भी कोई कृषि-प्रधान जाति बहुत हो बढ़ जावे तब तो उसकी जनसंख्या जितनी बढ़े उतनी ही थोड़ी है। ऐसी ही जातियोंमें मृत्युकी अपेक्षा उत्पत्ति अधिक होती है और लोग सुख-समृद्धि तथा शान्तिमें जीवन व्यतीत करते हैं।

उपनिवेश ।

एक देशको छोड़ करके अन्य देशोंमें लोगोंका बसना एक महत्वपूर्ण घटना है। नवीन परिस्थिति-को प्राप्त करके और विवाह द्वारा भिन्न भिन्न जातियोंके नरनारी आपसमें संगठित हो करके राष्ट्रकी उत्पत्ति तथा वृद्धिमें बड़ा भारी भाग लेते हैं। ऐसे ही स्थानोंमें राज्य तथा राज्यनियम भी अद्भुत रूप धारण करते हैं। नवीन भूमिके पुराने निवासी दास बनाये जाते हैं और जो दासतासे बच गये वे जंगलों, ऊसर तथा निर्जन भूमियोंमें भाग जाते हैं।

जनसंख्याका महत्व ।

संसारके सभी देशोंमें यह घटना विद्यमान है कि कहीं-पर लोग अधिक संख्यामें रहते हैं और कहींपर बहुत कम संख्यामें। प्रकृति तथा मनुष्योंपर विजय प्राप्त करके किसी एक जातिका किसी एक देशमें घने तौरपर बसना सुगम हो जाता है। घनी आबादी सभ्यताका चिन्ह

है, क्योंकि घनी आबादीवाले देशोंमें ही राज्य तथा उच्च कोटिका संगठन उत्पन्न होता है। शासक तथा शासितका भेद ऐसे ही जनसमाजमें प्रगट होता है। व्यावसायिक तथा व्यापारिक जीवन व्यतीत करनेसे नयी नयी राजनीतिक तथा आर्थिक समस्यायें सामने आती हैं, जिनको हल कर लेनेसे जनताकी मानसिक शक्ति उन्नत हो जाती है। उपनिवेशोंकी वृद्धिसे देशकी सभ्यता तथा भाषा स्थान स्थानपर फैल जाती है। रोम-साम्राज्यके छिन्न भिन्न होनेपर यूरोपीय राष्ट्रोंका उदय हुआ और यूरोपीय राष्ट्रोंकी आबादी बढ़नेपर अफ्रीका, अमेरिका, आस्ट्रेलिया आदि दूरवर्ती महाद्वीप आबाद हुए। इन घटनाओंसे यह स्पष्ट हो गया होगा कि जनसंख्या-विभाग तथा राष्ट्रकी उन्नतिका कितना घनिष्ट सम्बन्ध है।(१)

(१) १९१० तथा १९११ के बीचमें निम्नलिखित राष्ट्रोंमें प्रति वर्ग मील निम्नलिखित जनसंख्या थी—

राष्ट्र	प्रति वर्ग मील	राष्ट्र	प्रति वर्ग मील
बेलिजयम	६५२	आस्ट्रिया	२४७
इंग्लैण्ड	६१८	स्विट्ज़ेंलैण्ट	२१४
नीदर्लैण्ड	४७२	फ्रान्स	१८९
जापान	३३९	स्पेन	१००
इटली	३१३	रूस	६९
जर्मनी	३१०	अमेरिका	३१
चीन	२६६		

(Introduction to Political science by Gettell C[illegible] IV, p. 32).

६१६. जाति ।

सभी मनुष्य आपसमें बहुत कुछ मिलते हैं और बहुत कुछ भिन्न हैं। पारस्परिक भेदका मुख्य कारण भिन्न भिन्न व्यक्तियोंकी अन्तरीय तथा वाह्य विशेषतायें हैं। अन्तरीय विशेषतायें व्यक्तियोंके साथ ही उत्पन्न तथा नष्ट होती हैं।

मनुष्योंका पारस्परिक भेद तथा संमिलन।

कभी कभी वे अपनी छाप राष्ट्रपर बना जाती हैं। वाह्य विशेषतायें प्राकृतिक परिस्थिति तथा जातीय परिस्थितिका परिणाम होती हैं। जातीय भेद वंश तथा प्रकृतिसे सम्बद्ध है। भिन्न भिन्न वंशों तथा भिन्न भिन्न माता पिताओंसे उत्पन्न सन्ततियां अपने पूर्वजोंके संस्कारों, स्वास्थ, रूप, रंग तथा गुणोंको अपने साथ ले आती हैं और एक ही जल-वायु, भूमि तथा भोजनमें पल करके उस सादृश्यको ग्रहण करती हैं जो उनको एक जातिके रूपमें परिवर्तित कर देता है। जातिके सदृश ही 'जात' का उद्भव है। एकही कार्य्यमें तथा पेशेमें काम करने वाले लोगोंको एक खास प्रकारका स्वभाव आचार-व्यवहार तथा रहन-सहन हो जाता है। यदि यही घटना पीढ़ियों तक चली जावे तो एक ही पेशेके लोग एक 'जात' का रूप धारण कर लेते हैं और लोहार सुनार, तेली, चमार आदि भिन्न भिन्न नामोंसे पुकारे जाते हैं।

अन्तरीय तथा वाह्य विशेषताओंका जातिकी उत्पत्तिमें भाग।

राष्ट्र निर्माणमें जातियोंकी स्थितिका निम्न लिखित भाग है।

(१) राजनीतिक संगठनमें सुगमता—एक ही जातिके लोगोंका स्वभाव, आचार, व्यवहार आपसमें बहुत अधिक मिलनेसे राजनीतिक संगठन सुगम हो जाता है। राजनीतिक संगठनके साथ जातीयताका घनिष्ठ सम्बन्ध है। जातीयताके भावोंसे प्रेरित होकरके लोग कठिनसे कठिन कामोंको करनेके लिये तैयार हो जाते हैं और समय पड़ने पर जातिकी रक्षामें अपने प्राणों तकको स्वाहा कर देते हैं। प्राचीन कालमें जातीयताका भाव राष्ट्र-निर्माणका मुख्य-आधार था। इसी जातीय भावको सुरक्षित रखनेके लिये शिखा-सूत्रकी कल्पना की गयी और वर्णसंकरता दोष ठहरायी गयी।

(२) राष्ट्रका उद्भव—एक ही रक्त तथा वंशके लोगोंसे परिवारका विकास हुआ। परिवार ही महान् रूप प्राप्त करके 'जात' तथा जातिके रूपमें प्रकट हुआ। राष्ट्र भी इसी महान् रूप-का परिणाम है। सारांश यह है कि परि-वारसे 'जात,' जातसे जाति, और जातिसे राष्ट्र उत्पन्न हुआ है। यही कारण है कि राष्ट्रकी उन्नति-अवनतिमें जातीयताका बड़ा भाग है। आर्य्य जातिने जो राजनीतिक तथा सामाजिक संगठन उत्पन्न किये, अफ्री-काके काले आदमियोंके लिये वे स्वप्नके सदृश हैं।

§१७. *जातीयता ।*

जातीयताकी उत्पत्ति

प्रारम्भिक अवस्थामें राष्ट्रकी जन-संख्या भिन्न भिन्न जातों तथा जातियोंमें ही विभक्त रहती है। वंश तथा रक्तकी एकता संगठनका मुख्य आधार बनकर राष्ट्रीय जीवन व्यतीत करना सुगम कर देती हैं। निस्सन्देह आज-कल इन तत्वोंकी प्रधानता बहुत कुछ लुप्त हो चुकी है। अन्तर्जातीय विवाह तथा उपनिवेश-निवास रक्त तथा वंशके महत्वको दिनपर दिन घटा रहा है। मनुष्योंका पारस्परिक भेद तथा सम्बन्ध आजकल किन्हीं दूसरे ही तत्वोंपर आश्रित है। परन्तु इसका यह तात्पय नहीं है कि रक्त तथा वंशकी एकताने अपने पुराने संकुचित स्थानको छोड़ करके सारीकी सारी राष्ट्रीय जन-संख्यापर आतंक जमाया है और जातीयता रूपी एक नयी घटनाको उत्पन्न कर दिया है। एक स्वार्थ, एक स्वभाव तथा एक ही रीतिरिवाज़को आधार बना करके जातियोंने संसारमें अपना पृथक् अस्तित्व स्थापित किया है। समाज-संगठन या मनुष्योंके जातीय स्वरूपमें निम्न लिखित तीन शक्तियां मुख्य हैं।

(१) धर्म्म—प्राचीन काल तथा मध्यकालमें समान धार्मिक विश्वास संगठनका एक मुख्य तत्व था। विधर्म्मी शत्रु माने जाते थे। कभी कभी एक ही देश तथा एक ही खूनके लोगोंको राष्ट्रीय धर्म्ममें विश्वास न करनेके कारण कष्ट झेलना पड़ता था। यहूदियोंका अस्तित्व,

मुसलमानी साम्राज्यकी वृद्धि तथा सोलहवीं सदीके यूरोपीय युद्ध—ये सबके सब राष्ट्रीय जीवनमें धार्मिक शक्तिके महत्वको सूचित करते हैं। सहिष्णुता तथा विचार स्वतंत्रता ने धर्म्मकी उग्र प्रतिमाको अब चूर चूर कर दिया है। यही कारण है कि धर्म्म-भेद होते हुए भी जर्मन लोग एक राष्ट्रमें सुगमतासे ही संगठित हो गये।

(२) भाषा—जातीय एकतामें भाषाका भाग भी रहता है। समान स्वार्थ तथा हितसे प्रेरित लोग समान भाषा ग्रहण करते हैं और भिन्न भाषा-भाषियोंको बर्बर तथा म्लेच्छ समझने लगते हैं। साहित्य तथा समाचार पत्रोंकी वृद्धिके साथ साथ सामाजिक संगठन दृढ़ होता है और जातीयता एक स्थिर आधार प्राप्त कर लेती है।

(३) समान उद्देश्य—समान भय तथा समान उद्देश्य भी जातीयताके भावोंको दृढ़ करता है। आस्ट्रिया-हंग्रीमें भिन्न भिन्न भाषा बोलने वाले भिन्न भिन्न जातिके लोग रहते थे। फिर भी उनमें जातीयताका भाव उत्पन्न हो गया। भारतवर्षमें लोगोंका धर्म्म भिन्न भिन्न है। भाषा भी सब प्रान्तोंकी समान नहीं है। इसपर भी दिनपर दिन जातीयताके भाव लोगोंमें उत्पन्न हो रहे हैं। यह क्यों ? क्योंकि लो

उत्तम शासनको चाहते हैं। स्वेच्छाचारी निरंकुश शासन लोगोंको पसन्द नहीं है। उसी शासनको सुधारनेके लिए लोग संपूर्ण भेद भावोंको भुलाकर एक जातिमें परिवर्तित हो रहे हैं।

§ १८. राष्ट्र-निर्माणमें जातीयताका भाग।

राजनीति तथा राष्ट्रीय निर्माणमें जातीयताका बड़ा भारी भाग है। जातीयताका ही यह महत्व है कि यूनान जैसी छोटी रियासत ईरानियोंसे और जर्मन्स रोमनसे लड़ाईमें प्रवृत्त हुए। जातीयताके भेदने हो रोमन लोगोंको—यूनानी तथा लैटिन—दो सम्राटोंके अधिकारमें रोमन साम्राज्यको विभक्त करनेकेलिये प्रेरित किया। फ्रान्स तथा जर्मनीका फटाव भी बहुत कुछ इसीसे जुड़ा हुआ है। आजकल तो जातीयताने अपना उग्ररूप धारण किया है।

जातीयताका महत्व।

एक सदीकी बात है कि नैपोलियनने फरांसीसी लोकसभा तथा फ्रेञ्च जातिकी सहायता प्राप्तकर यूरोपको अपने पैरों तले रौंदना चाहा। यूरोपमें जातीयताके भाव जागृत हो चुके थे। परिणाम इसका यह हुआ कि वह अपने उद्देश्यमें सफल न हो सका।

नैपोलियनके स्वेच्छाचारसे यूरोपमें जातीयताकी उत्पत्ति।

अंग्रेज लोग राष्ट्रनिर्माणमें जातीयताको आधार रखना पसन्द नहीं करते। इसका मुख्य कारण यही है कि ग्रेटब्रिटनमें कई जातियोंका निवास है। जातीयताके भावोंको बहुत दूर तक बढ़ानेसे भारतके हाथसे निकल जानेका भी उनको खतरा है। यह होते हुए भी संवत् १८९७ (सन् १८४०) से यूरोपके अन्दर राष्ट्रनिर्मा-

इंगलैण्डका राष्ट्र निर्माणमें जातीयताको मुख्य न रखना।

णमें जातियोंका भाग विशेष तौरपर बढ़ा है। जर्मनी तथा आस्ट्रियाहंग्रीकी राष्ट्रात्मक शासनपद्धति इसीका परिणाम है।

राष्ट्र निर्माणमें जनताके अधिकार ।

आजकल यह सिद्धान्त दिनपर दिन उग्ररूप धारण कर रहा है कि "प्रत्येक जनताका यह जन्म सिद्ध अधिकार है कि वह अपना राष्ट्र आप बनावे। जिस प्रकार मनुष्य-समाज भिन्न भिन्न जनताओंमें विभक्त है, उसी प्रकार उसको भिन्न भिन्न राष्ट्रोंमें विभक्त होना चाहिये, संसारमें जितनी जनतायें हैं उतने ही राष्ट्र होने चाहिये। क्योंकि राष्ट्रका आधार जनता तथा जाति ही है"। परन्तु यह विचार ठीक नहीं है। इस विचारका अन्तिम परिणाम यह कि एक ही राष्ट्र धीरे धीरे अपने आप कई जनताओंमें विभक्त होकर कई राष्ट्रोंको जन्म दे देगा। शुरू शुरूमें इंग्लैण्ड तथा उत्तरीय अमरीका एक ही जनताके अंग थे। राजनीतिक जीवनके जागृत और उपरिलिखित सिद्धान्तके प्रचलित होते ही उत्तरीय अमरीकाने अपने आपको इंग्लैण्डसे पृथक् कर लिया, क्योंकि एक ही जनता कई बार दृष्टिभेदसे भिन्न भिन्न जनताओंमें विभक्त दिखायी देने लगती है। इस दृष्टि-भेदके कारण भिन्न भिन्न राष्ट्रोंमें विभक्त हो जाना कभी भी उचित नहीं कहा जा सकता है। इंग्लैण्डने उत्तरीय अमरीकाके लोगोंके साथ वही व्यवहार किया जो वह पराधीन जातियोंके साथ करता आया है। इस हालतमें उत्तरीय अमरीकाका एक पृथक् राष्ट्र बन जाना स्वाभाविक ही था। उपरिलिखित सिद्धान्तका ख्याल न रखनेसे ही जर्मनी भिन्न भिन्न जनताओं तथा जातियोंके लोगोंको संगठित कर एक बड़े राष्ट्रका रूप धारण कर सका।

भिन्न भिन्न जनता तथा जातीयताके लोगोंके एक ही देशमें पास पास बसनेसे निम्नलिखित घटनायें उत्पन्न होती हैं।

(१) संमिलन—उच्च सभ्यता तथा उच्च राजनीतिक जीवनमें पले लोग एक ही देशमें पहुंचकर अपने भेद भावोंको भुलाकर तथा मिटाकर आपसमें मिलना शुरू कर देते हैं। यूरोपीय जातियोंका अमरीका पहुंचकर अमरीकन बनना इसीका चलता उदाहरण है।

(२) पार्थक्य—यह भी देखनेमें आया है कि बहुत बार भिन्न भिन्न जातियां अपनी भाषा तथा अपनी जातीयताको नहीं छोड़तीं। आस्ट्रिया हंग्रीकी पुरानी राष्ट्रात्मक शासन-पद्धति इसी भेद-भावका परिणाम थी। आस्ट्रियामें लम्बार्ड तथा वैनीशियन्ज़ माग्यार तथा स्लेब्ज और ज़ेचों तथा जर्मनोंका विरोध इसी पार्थक्यका उदाहरण है।

(३) संगठन—भिन्न भिन्न जातियां जब किसी एक राष्ट्रमें आपसमें न मिलकर पृथक् पृथक् रहना ही पसन्द करें उस समय राज्योंको निष्पक्ष भावसे एक ही राष्ट्र तथा एक ही राज्यमें उनको समान रूपेण संगठित करना पड़ता है। सबको समान अधिकार दिये जाते हैं और अन्तरीय जीवनमें सबको पूर्ण तौरपर स्वतंत्रता प्राप्त होती है।

राज्यको किसी एक जातिके स्वार्थ तथा हितका ख्याल छोड़कर सबका समान रूपसे ध्यान रखना पड़ता है । स्विट्ज़लैंडने इस विकट समस्याको बड़ी सफलतासे हल किया है।

स्विट्ज़लैंड आस्ट्रिया

जर्मनी फ्रान्स तथा इटलीकी भिन्न भिन्न जातियां भी राष्ट्रात्मक राज्यमें इसी प्रकार संगठित की गयी हैं। आस्ट्रियामें सैनिक शक्तिके बलपर भिन्न भिन्न राष्ट्र राष्ट्रात्मक राज्यमें जोड़े गये। परन्तु यह तभी तक चलता है जब तक कि राज्य शक्तिशाली होता है। इस पञ्चवर्षीय विश्व युद्धमें आस्ट्रियाकी एक रियासतका शत्रुओंसे शुभ मन्त्रणा कर आस्ट्रियासे कट जाना इस बातका प्रमाण है कि संगठनका यह तरीका कितना कमजोर है।

यदि भिन्न भिन्न जातियां आपसमें मिल जायं तो राज्य खतरेसे बच जाता है। ऐसी हालतमें प्रायः यह देखा गया है कि प्रबल जातियां दुर्बल जातियोंको अपने अन्दर ले लेती हैं। आयरिश, जर्मन्स तथा फरांसीसी, अमरीका पहुंचकर दो ही पीढ़ियोंके बाद ऐंग्लो सैक्संसमें मिल जाते हैं।

प्रबल जातिमें निर्बल जातिका लीन हो जाना।

उपरिलिखित विचारसे स्पष्ट है कि जातीयता (नैशनेलटी) तथा राष्ट्र (स्टेट) का घनिष्ट सम्बन्ध है। परन्तु इससे यह अनुमान करना कि जनता (पीपिल) तथा जातीयतामें भी घनिष्ट सम्बन्ध होता है, ठीक नहीं है। क्योंकि

जनता तथा जातीयतामें भेद।

(१) राजनीतिक योग्यता—प्रत्येक जनता राष्ट्रके बनाने योग्य नहीं होती। राष्ट्र-निर्माणके लि

राजनीतिक योग्यता होनी चाहिये। नियन्त्रणमें रहना, दुर्बलोंको न सताना, शक्तिशाली किसी व्यक्ति या सभाके आधिपत्यमें जीवन व्यतीत करना आदि अनेकों गुण हैं जिनसे जनताको स्वतन्त्र जातिका रूप प्राप्त होता है और वह राष्ट्र निर्माणके योग्य बन जाती है यही कारण है कि जनतामें जातीयताके भाव तभी उत्पन्न होते हैं जब कि उसमें राजनीतिक योग्यता हो।

(२) मतभेद—मतभेद उन्नति तथा अवनतिका मुख्य कारण है। एक उद्देश्यसे प्रेरित होकर और राष्ट्र तथा राज्यके साथ प्रेम रखकर जनताओंका मत-भेद प्रगट करना उन्नतिका कारण है। इसीसे भिन्न भिन्न प्रकारकी शासन-पद्धतियोंका विकास होता है। परन्तु यदि मतभेद इस हद्द तक बढ़ जाय कि वह भिन्न भिन्न जातियोंको छोटी छोटी रियासतोंमें रहनेके लिये प्रेरित करे तो इसका फल वही होता है जो यूनान में हुआ। यूनानी राष्ट्र मतभेदके कारण बड़े राष्ट्रका रूप न धारण कर सके। इससे एक बार तो उनको मक़दूनियाका आधिपत्य स्वीकार करना पड़ा और इसके बाद रोमके राज्यमें उनको जीवन व्यतीत करना पड़ा। इसी मतभेदका फल जर्मनी

तथा इटलीको भी चखना पड़ा यदि वहां लोगोंमें मतभेद बहुत प्रबल रूप न धार कर लेता तो वहां विदेशियोंका राज्य न होत

(३) राजनीतिक जीवनका अनुभव करना—यदि किसी देश जनता अपने स्वतन्त्र अस्तित्वको समझने तो उसका यह नैसर्गिक अधिकार है वह स्वतन्त्र राष्ट्र बन जाय। उसको इस रोकना अत्याचार तथा अन्याय है। प्रि बिस्मार्कने ठीक कहा था कि "यदि क जनता जीना चाहती हो'। तो उसे शक्ति होनी चाहिये कि वह स्वतन्त्र तौर अपने अंगोंको हिला डुला सके।" प्रसन्नता बात है कि भारत वर्षमें जनता दिनपर दि अपने राजनीतिक अधिकारोंको समझ जाती है। अंग्रेजोंको यह उचित नहीं है वे भारतीयोंको पराधीनताकी जञ्जीरों जकड़ रखें, क्योंकि प्रत्येक जनताका यह नै गिंक अधिकार है कि वह अपने अनुकू शासनपद्धति तथा राज्यमें रहे।

(४) जातीय राष्ट्र—जातीय राष्ट्रों (नैशनल स्टेट) लिये यह आवश्यक नहीं है कि उ सारीकी सारी जनता समा जाय। प्रत्ये राष्ट्रमें जनताका इतना बड़ा भाग अवा होना चाहिये जो राष्ट्रपर अपनी छाप बन रखे। फ्रान्स जर्मन तथा इटलीके र

जातीयराष्ट्र हैं यद्यपि उनमें भिन्न भिन्न जातियोंके लोग भी सम्मिलित हैं। फ्रान्स जातीयराष्ट्र इसीलिये है कि वहां फरांसीसी लोग अधिक संख्यामें हैं। यही बात जर्मनी तथा इटलीके साथ समझनी चाहिये।

(५) आदर्श राष्ट्र—जात तथा जातीयताके भाव मनुष्य समाजकी अपरिपूर्णताके ही चिन्ह हैं। साधारणतः सार्वभौम बन्धु भावको ही प्रधानता मिलनी चाहिये। सब मनुष्य भाई भाई हैं, जात तथा जातिके भाव कल्पित हैं, गोरे कालेका भेद अस्वाभाविक है, इत्यादि बातोंको आधार बनाकर ही परिपूर्ण संगठन तथा आदर्श राष्ट्रकी नींव रखी जा सकती है। मनुष्य समाजका अन्तिम उद्देश्य आर्दश राष्ट्रको प्राप्त करना है। राज्य-नियमोंका आधार मनुष्यका स्वभाव होना चाहिये। दुःखकी बात है कि यूरोपीय राष्ट्रोंका इस ओर कुछ भी ध्यान नहीं है। अफ्रीकाके उपनिवेशोंका भारतीयों तथा एशियाटिक लोगोंको अपने उपनिवेशोंमें न बसने देना और उनको राज्याधिकार न देना भयंकर अन्याय है। जापानियोंको अमरीका तथा आस्ट्रेलियामें किसी प्रकारका भी अधिकार प्राप्त नहीं है।

आज कल जातीय राष्ट्रोंका ही प्रचार है। उनको चाहिये

कि वे विदेशियोंके साथ अच्छा बर्ताव करें। स्वदेशियो सदृश ही उनको भी राजनीतिक अधिकार दें। इसमें उन कुछ भी कठिनता न हो यदि वे आदर्श राष्ट्रको बना अपना उद्देश्य रखें।

(६) एकता—आदर्श राष्ट्र बनाना यदि जातीय राष्ट्रों उद्देश्य हो तो उनमें एकता बहुत ही अधि बढ़ सकती है। भिन्न भिन्न जातियोंके ल प्रायः प्रत्येक राष्ट्रमें मौजूद हैं। जातीयता भावोंको चरम सीमा तक पहुंचानेका य फल है कि उस राष्ट्रमें एकता तथा संग अपना पैर नहीं रखते। आस्ट्रिया अभी पूर्ण तौरपर संगठित नहीं हुआ। भि भिन्न जातिके लोग जातीयताके मदमें होकर आपसमें मिलनेका यत्न नहीं कर और इस प्रकार राष्ट्रकी दुर्बलताको बढ़ा बड़ा भारी भाग ले रहे हैं। परन्तु जातीयताके भावोंको गौण रूप दिया ज तो यह बात न हो। इंग्लैण्डने इसीके सा अपने आपको संगठित किया। शुरू शु इंग्लैण्ड वाले सैक्सन्स लोगोंसे और नार्मन्स लोगोंसे मिल गये। इसके बाद लोगोंको उन्होंने अपने अन्दर मिलाया और वे आयरिश लोगोंको मिलाना चाहते

(७) समानता—जातीयताके अंशको गौण करनेपर ही राष्ट्र अपने नागरिकों या राष्ट्रोंको स

अधिकार दे सकता है। अमरीकाका राष्ट्रात्मक राज्य पूर्ण तौरपर संगठित है, क्योंकि वहां भेद-भाव काम नहीं करता। प्रत्येक राष्ट्रको समान अधिकार है। जातीयताके भावोंको बहुत बढ़ानेसे आस्ट्रिया हंग्रीकीसी दशा होती है। भिन्न भिन्न राष्ट्रोंके भिन्न भिन्न अधिकार होते हैं और इस प्रकार झगड़ा सदा बना रहता है।

(८) स्वतन्त्रता—राष्ट्रको उन्नतिका तत्व इसीमें है कि वह नागरिकोंकी स्वतन्त्रताका मान करे। इस ज़मानेमें वही राष्ट्र फलते फूलते हैं जो कि जनताकी इच्छाओंका ख्याल रखते हैं। जिस राज्य-प्रणालीमें जनताकी इच्छाओंकी कुछ भी क़दर नहीं वह शीघ्र ही नष्ट हो जाती है। कभी कभी प्रबल राष्ट्र दुर्बल राष्ट्रोंको अधीन कर मनमाने ढंग पर राज्य करते हैं। दुर्बल राष्ट्रकी जनतामें ज्यों हीं जागृति हुई त्यों ही प्रबल राष्ट्रका तख्ता पलट जाता है। राष्ट्रोंको चिरकाल तक पराधीन रखना सुगम काम नहीं है।

प्रत्येक राष्ट्रका अपना अपना स्वभाव तथा अपना अपना आचार-व्यवहार है। एक ही शासन पद्धति प्रत्येक राष्ट्रके लिये अनुकूल नहीं हो सकती। बहुत सी यूरोपियन रियासतोंने अमरीकाकी शासन-पद्धतिका अनुकरण किया परन्तु किसीकी भी शासन-पद्धति अमरीकाके सदृश नहीं

रही । भिन्न भिन्न राज्योंमें अमरीकन शासन-पद्धति पहुं कर भिन्न भिन्न रूपकी हो गयी ।

उन्नतिशील राष्ट्र समयके अनुकूल अपनी शासन पद्धतियोंमें परिवर्तन करते रहते हैं । इन परिवर्तनोंको कर हुए भी वे "अपनापन" नहीं छोड़ते । रोम समय समय पर भिन्न भिन्न प्रकारकी शासन-पद्धतियोंमें गुजरा पर सभी पर उसने रोमनपनेकी छाप कायम रखी

सारांश यह है कि स्वाभाविक राष्ट्र वही हैं जो सम के अनुकूल अपनी शासन-पद्धतियोंमें परिवर्तन करते रहते हैं तथा दूसरोंकी उन्नति तथा आविष्कारोंसे लाभ उठाने यत्न करते रहते हैं । जो समयके परिवर्तनोंसे डरते हैं नयी बातोंको ग्रहण करनेसे हिचकते हैं वे अवनत होकर हो जाते हैं ।

§१९. राष्ट्र तथा परिवार ।

परिवार तथा राष्ट्रमें अधिक समता है । राष्ट्र परिवा का ही विराट् रूप समझा जाता है । सिसरोने लिखा "परिवारका बड़ा रूप ही राष्ट्र है । राष्ट्रका मुख्य शासक पि है, और जनता उसके बाल बच्चे हैं" । इस ढंगके वि किसी हद्दतक ही ठीक हैं । राष्ट्र तथा परिवारमें अधिक समता है वहां अधिक भेद भी है । महाशय ब्लु श्लीने इस भेदको इस प्रकार दिखाया है—

क. विवाह—परिवारके लोग विवाह या वंशके द्वारा दूसरेके साथ जुड़े होते हैं । राष्ट्रके सभ्योंका पारस्परि सम्बन्ध ऐसी किसी भी बातपर निर्भर नहीं रहता । भार

तो राष्ट्रके सभ्य एक दूसरेके साथ विवाह-सम्बन्ध भी नहीं कर सकते। एक ही जातिमें व्यक्तियोंका वैवाहिक सम्बन्ध भारतमें प्रचलित है। परिवारके अधिकारोंका भी राष्ट्रके साथ कुछ भी सम्बन्ध नहीं है।

ख. भूमि तथा जातीय संगठन—राष्ट्रका जातियोंके संगठन तथा भूमिके साथ विशेष तौरपर सम्बन्ध है। परिवारको इनसे कुछ भी मतलब नहीं। भूमि तथा मकानकी मिलकियतके बिना भी परिवार फलते फूलते हैं। राष्ट्रका व्यक्तियोंसे सीधा सम्बन्ध है, न कि परिवारसे।

ग. राजनीतिक तथा पारिवारिक सम्बन्ध—परिवार तथा राष्ट्रके संगठनमें आधारभूत भेद है। पिता परिवारका रक्षक समझा जाता है। वह परिवारको पालता है। परन्तु राज्यमें यह बात नहीं है। यहां व्यक्ति ही राज्यको धनकी सहायता देते हैं और इस प्रकार राज्यको पालते हैं। व्यक्तियोंका राज्यके साथ राजनीतिक सम्बन्ध है। पारिवारिक तथा राजनीतिक सम्बन्धमें जो भेद है वह किसीसे भी छिपा नहीं है।

आर्य्य जातिमें राष्ट्रका आरम्भ परिवार तथा जातियोंसे ही हुआ। न्यायाधीशों, राजाओं तथा शासकोंको भिन्न भिन्न परिवारों तथा जातियोंसे सहायता लेनी पड़ती थी। यही बात किसी जमानेमें रोम तथा ग्रीसमें मौजूद थी। परिवार तथा जातिमें केवल इतना ही भेद है कि परिवार एक वंशसे और जाति बहुत वंशोंसे मिलकर बनती है। कुलपति तथा जातिके नायक वंशागतके साथ साथ कभी कभी निर्वाचित भी होते थे। कुल तथा परिवारके विचारको

५

सामने रखते हुए चीनी तथा मलाया लोगोंने अपने राष्ट्र
उन्नत किया। मलाया देशमें अबतक लोग राजाको पि
तथा जनताको उसके बालबच्चे मानते हैं। आर्य्य जाति
अपनी स्वतन्त्रताको यदि कहींपर पूरी तौरपर न्यौछा
किया तो वह मलाया देश ही है।

राष्ट्रकी उन्नतिमें कुटुम्बोंका बड़ा भाग है। राष्ट्रकी
कर्तव्य है कि वह कुटुम्बोंका उच्छेद न होने दे। प्राचीन
कालसे अबतक भारतमें प्रत्येक व्यक्तिका यह कर्तव्य समझा
जाता है कि वह विवाह अवश्य ही करे। एक स्त्री
साथ एक पुरुषका विवाह होना ही राष्ट्रके लिये हितकर है
बहु विवाह—पुरुषका हो या स्त्रीका—अनुचित है। इस
स्त्रियोंकी स्थिति बिगड़ जाती है। उचित यही है कि स्त्रि
की स्थिति पुरुषोंके सदृश ही हो।

रोमके प्राचीन नियमोंके अनुसार स्त्रियां पतिके आ
पत्यमें नहीं थीं। लड़कीके सदृश ही स्त्रीके साथ पति
बर्ताव करना पड़ता था। इसके दोषोंको देखकर रोम
लोगोंने इसमें परिवर्तन किया। परन्तु इससे व्यभिचा
तथा भोग-विलास बहुत ही अधिक बढ़ गया। रोमके अ
पतनमें भी इसने बड़ा भारी भाग लिया। जर्मनीमें स्त्रि
अपनी संपत्तिके रखनेका हक़ है और उनको पतिका वि
तौरपर मान करना पड़ता था। स्त्रीका स्वामी होते हुए।
पुरुष उसपर अत्याचार नहीं करता। जर्मन परिवार सु
तथा शान्त होते हैं, उनमें कलह तथा अशान्ति बहुत
देखी गयी है।

रोमन लोग विवाहको एक प्रकारका साझा समझते थे। यूरोपकी कई रियासतोंमें अभी तक यही बात समझी जाती है। उचित यही है कि विवाह एक धार्मिक कृत्य समझा जाय। विवाहके समय विशेष प्रसन्नता होनी, उत्सवका किया जाना, यज्ञ द्वारा पति-पत्नीका सम्बन्ध स्थिर करना, किसी हद तक लाभकर ही है, क्योंकि इससे विवाहमें साझेका विचार दूर हो जाता है। यूरोपमें यह बात नहीं है। वहां विवाह दो प्रकारका है।

(क) एक तो वह विवाह है जिसमें पति-पत्नीके सम्बन्धको राष्ट्रके मुख्य शासक स्थिर करते हैं। इस कारवाईके विना विवाह वैध नहीं कहा जा सकता।

(ख) दूसरा विवाह वह है जिसमें पादरी लोग पति-पत्नीके सम्बन्धको स्थिर करते हैं।

विवाह न कर भोग-विलासमें जीवन व्यतीत करना यूरोपके अन्दर उग्र रूप धारण कर चुका है। इससे राष्ट्रके नाशकी संभावना हो जाती है। सम्राट् अगस्टसने वैवाह्य नियमोंके सहारे रोमकी आबादी बढ़ानेका यत्न किया। रोममें अमीर लोग इस लिये विवाह नहीं करते थे कि बुढ़ापेके दिनोंमें उनको कष्ट न उठाना पड़े। संपत्ति-वितरणमें वे स्वतन्त्र थे, मरने पर जिसको चाहें वे संपत्ति दे सकते थे। इसका परिणाम यह था कि बहुतसे लोभी लोग इन अमीरोंके चारों ओर घिरे रहते थे और उनकी सब सेवा सुश्रूषा करते थे। उनको यह आशा रहती थी कि बुड्ढेकी अतुल संपत्ति उन्हींके हाथोंमें आ जावेगी। इसी

सेवा सुश्रूषाके लोभमें रोमन लोग शादी नहीं करते थे। लम्पटतामें ही सारा जीवन व्यतीत करते थे। इसी कर दृश्यको देखकर अगस्टसने यह बात कही थी 'रोमके अधःपतनका मुख्य कारण रोमके लोग ही यदि ये लोग इसी प्रकार अपना जीवन व्यतीत करेंगे रोम यूनानियों या बर्बर लोगोंका शिकार हो जायगा फ्रान्समें यही घटना कुछ ही समय पूर्व उत्पन्न हो गयी। वहांकी आबादी दिनपर दिन घट रही थी। फरांस राज्यने इस आबादीको बढ़ानेके लिए बहुत ही अं यत्न किया।

सारांश यह है कि विवाहका राष्ट्रके साथ घनिष्ठ स है। किस स्त्रीके साथ कौन पुरुष विवाह करे इ निर्णय विवाह करने वालेके ही हाथोंमें होना चा पितामाताका लड़की चुनना तथा अपने लड़केसे वि ही उसकी शादी कर देना भारतवर्षमें विशेष तौरपर लित है। इस मामलेमें भी अब परिवर्तन शुरू हो ग और लड़कोंको भी खास खास क़ौमोंमें कुछ स्वतन्त्रता गयी है।

विवाहके लिये उत्तेजित करनेके स्थानपर आ बहुतसे राष्ट्रोंको उलटा काम करना पड़ता है। धनकी भयंकर असमानता है। लाखों मनुष्य वहां जिनके पास न कुछ पूंजी है और न कुछ भूमि ही है। लोगोंका विवाह कर पारिवारिक जीवन व्यतीत करना लिये हानिकर है। यही कारण है कि माल्थस

सज्जनोंने दरिद्रोंको आत्मसंयमका उपदेश दिया है और बिना संपत्तिके विवाह करना कष्टका मूल प्रगट किया है।

परन्तु यूरोपकी दशा विचित्र है। संपत्तिके न होनेसे लोगोंने विवाह करना छोड़ दिया है। कायिक प्रवृतिको वे लोग अनुचित तरीकोंसे शान्त करते हैं। इन्हीं तरीकोंमेंसे एक तरीकाका यह परिणाम है कि प्रत्येक यूरोपीय राष्ट्रमें कामज संततियां दिनपर दिन बढ़ती जाती हैं। लाचार होकर राष्ट्रको कामज बच्चोंका पालन-पोषण स्वयं ही करना पड़ता है।

स्त्री-पुरुषके पारस्परिक सम्बन्धोंमें हस्तक्षेप करना राज्यका कर्त्तव्य नहीं है। परन्तु कभी कभी यहां भी ऐसी घटनाएं उत्पन्न होती हैं कि राज्यको अपना मौन व्रत छोड़ना पड़ जाता है। यदि एक पुरुष अपनी स्त्रीको डण्डोंसे पीटे तथा उस बिचारीपर अन्य भयंकर अत्याचार करे तो राज्यके सिवाय उस बेचारीका और कौन सहारा हो सकता है।

महाशय प्लेटोका विचार था कि राष्ट्रके आदर्श शासकोंको न विवाह करना चाहिये और न पारिवारिक जीवन व्यतीत करना चाहिये। कायिक प्रवृत्ति शान्त करनेके लिये उनको स्त्रियां मिल जानी चाहियें। यह इसीलिये कि वे निश्चिन्त होकर निःस्वार्थ भावसे राष्ट्रकी सेवा तथा हित-चिन्ता कर सकें। इस विचारमें जो कुछ दोष है वह यही है कि इससे पारिवारिक जीवनपर भयंकर धक्का लगेगा। स्वतन्त्र प्रेम (Free love) के द्वारा भी काम नहीं चलाया जा सकता क्योंकि मनुष्य अभी तक पूर्ववत् हो

कायिक प्रवृत्तियोंके वशीभूत हैं। स्वतन्त्रता पाकर वे
बुराई न करें वही थोड़ी है।

आजकल यूरोपीय राष्ट्रोंमें तलाक देनेकी प्रथा प्रचलि
है। पुरुष स्त्रीको और स्त्री पुरुषको छोड़ सकती है
तलाक सम्बन्धी राज्यनियम ही इस मामलेमें कुछ कु
बाधक हैं। न्यायालयके द्वारा स्वीकृत होने पर ही तला
दिया जाता है, और पुरुष-स्त्री मनमाने तौरपर एक दू
रेको नहीं छोड़ सकते हैं।

§ २० *स्त्रियोंकी स्थिति।*

संसारकी सभी जातियोंमें स्त्रियोंका वंश तथा गोत्र
समझा जाता था जो कि उनके पतिका होता था। क
कभी इसका विपरीत भी देखनेमें आया है। परन्तु इ
दृष्टान्त इतने थोड़े हैं कि इस पर ध्यान न देना ही उ
प्रतीत होता है। पुरुषोंका स्त्रियोंपर प्रभुत्व, स्त्रियों
बालबच्चोंके पालन-पोषणमें ही मग्न होना और बाह
मामलोंसे ध्यान हटाकर घरेलू मामलोंको ही अपना का
क्षेत्र समझना पुराने ज़मानेकी सभ्यताका एक मुख्य
था। इसमें अनेक गुणोंके होते हुए भी यह दोष था
स्त्रियां राष्ट्रकी उन्नतिमें विशेष तौरपर भाग ले
असमर्थ थीं।

यूरोपमें स्त्रियोंकी स्थितिके अन्दर संवत् १८४६ (सन् १७
की फरांसीसी राज्यक्रान्तिने विशेष परिवर्त्तन करना
किया। लोगोंको समानता, स्वतन्त्रता तथा ढम्धुभ
भावोंसे रंगे हुए देखकर एक स्त्रीने संवत् १८४६ (सन् १७

में राजाके पास स्त्रियोंको राज्याधिकार देनेके विषयमें एक प्रार्थनापत्र भेजा। फरांसीसी जातीय सभाने इस प्रार्थनापत्रको घृणाकी दृष्टिसे देखा और उस पर किसी प्रकारका भी ध्यान न दिया। इंग्लैण्डमें महाशय मिलने और फ्रान्समें एडुआर्ड लैबोलीने स्त्रियोंकी राजनीतिक स्थितिको ऊंचा करनेका यत्न किया।

स्त्रियोंको राजनीतिक अधिकार देनेके विषयमें महाशय मिल निम्न लिखित चार युक्तियां पेश करते हैं—

(क) पुरुषोंके सदृश ही स्त्रियोंकोभी उत्तम शासन चाहिये। उत्तम शासनका आधार यदि प्रतिनिधि-निर्वाचन है तो स्त्रियोंको भी क्यों न यह अधिकार दिया जाय। महाशय ब्लुन्ट्शली इस युक्तिको हेत्वाभास समझते हैं। उनका ख्याल है कि निर्वाचनका सम्बन्ध योग्यतासे है न कि उत्तम शासनसे। बालकोंको निर्वाचनका अधिकार इसीलिये नहीं दिया गया है चूंकि वे इस कामके योग्य नहीं है। उत्तम शासन तो उनको भी चाहिये। यदि उत्तम शासन ही निर्वाचनका आधार हो तो क्यों न बालकोंको भी निर्वाचनका अधिकार मिले। महाशय ब्लुन्ट्शलीके कथनमें बहुत कुछ सचाई है। प्रश्न तो यह है कि वह कौनसी बात है जो स्त्रियोंको निर्वाचनके अयोग्य सिद्ध करती है। बालकके सदृश ही बालिकाओंको चाहे निर्वाचनकाअधिकार न दो, परन्तु पुरुषोंके सदृश ही स्त्रियोंको निर्वाचनका अधिकार क्यों न मिले? यदि पुरुष लोग प्रतिनिधितन्त्र राज्यको उत्तम शासनके लिये आवश्यक समझते हैं और

इसीलिये शासकोंका निर्वाचन स्वयं करते हैं तो स्त्रियोंको भी यह अधिकार क्यों न मिले। सबसे बड़ी बात तो यह है कि जिस प्रकार एक पहियेसे रथ ठीक ढंग पर नहीं चलता उसी प्रकार स्वतन्त्रता तथा समानताका रथ तबतक ठीक ढंग पर नहीं चल सकता जबतक कि पुरुषोंके सदृश ही स्त्रियां भी इसको न अपनायें। प्रतिनिधितन्त्र शासन प्रणाली, स्वतंत्रता तथा समानताका भाव बच्चोंको दूधके साथ ही पिलाया जाना चाहिये। जिस चीज़को स्त्रियां अपना लेती हैं वह राष्ट्रका स्वभाव बन जाती है। इस हालतमें स्त्रियोंको निर्वाचनका अधिकार मिलना राष्ट्रके लिये हितकरके सिवाय अहितकर नहीं हो सकता।

(ख) पुरुषोंके सदृश ही स्त्रियोंको अपनी संपत्तिके प्रबन्ध करनेका अधिकार है। राज्यकर तथा लगान पुरुषोंके सदृश ही स्त्रियोंसे भी सरकार लेती है। यदि हमारा यह सिद्धान्त हो कि प्रतिनिधि-निर्वाचन तथा राज्यकर देना (No taxation without representation) घनिष्ठ तौर पर परस्पर जुड़े हुए हों तो क्यों न स्त्रियोंको भी प्रतिनिधि निर्वाचनका अधिकार मिले। यदि सरकार उनसे राज्यकर तथा लगान न ले और प्रतिनिधि-निर्वाचनका भी अधिकार न दे तो किसी हद्द तक यह घटना किसी एक सिद्धान्त पर आश्रित कही जा सकती है, परन्तु राज्यकर तथा लगान लेते हुए स्त्रियोंको प्रतिनिधि-निर्वाचनका अधिकार न देना अन्याययुक्त है।

(ग) संसारकी बहुत सी जातियोंमें पुरुषके सदृश

स्त्री भी राज्य पर बैठती है । एलिजाबेथ, ऐन, मेरी, तथा विक्टोरियाके दृष्टान्त इतिहासप्रसिद्ध हैं । रोम तथा ग्रीसके लोग स्त्रियोंको राज्यपर बैठानेके विरुद्ध थे । हैलिगावेलसने अपनी माताको रोमन सीनेटमें बैठाया । रोमन लोगोंने यह पसन्द नहीं किया । यही कारण है कि उसकी मृत्युपर उन्होंने स्त्रियोंका सीनेटमें आना एक राज्य-नियमके द्वारा रोक दिया । यह होते हुए भी आजकल संसारके लगभग सभी सभ्य राष्ट्र स्त्रियोंको राज्य सिंहासनपर बैठाते हैं । इस हालतमें स्त्रियोंको प्रतिनिधि-निर्वाचनका अधिकार न मिलना आश्चर्यप्रद है ?

कई लोगोंका विचार है कि एकतन्त्र राज्यपद्धतिमें राजाका राज्यपर बैठना उसकी शासनकी योग्यताको नहीं सूचित करता है । वह राज्यपर इसीलिये बैठता है कि राज्य उसकी संपत्ति है । यदि संपत्तिकी मालकिन स्त्री हो सकती है तो दायादके नियमोंके अनुसार स्त्रीका राज्यपर बैठना आवश्यक ही है । प्रतिनिधि तन्त्र शासन-पद्धतिमें प्रधान पदपर स्त्रीका निर्वाचन या स्त्रियोंको निर्वाचनका अधिकार देना उपरिलिखित युक्तिके अनुसार कभी भी पुष्ट नहीं किया जा सकता है । परन्तु इसको यदि हम दूसरे ढंगपर पेश करें तो स्त्रियोंका प्रतिनिधि-निर्वाचन सम्बन्धी विवाद सुगमतासे सरल किया जा सकता है । प्रत्येक ऐतिहासिक यह अच्छी तरहसे जानता है कि ऐलिजाबेथ तथा विक्टोरियाने जिस उत्तम विधिपर शासन किया, बहुतसे राजा वैसा शासन न

कर सके। स्त्रियोंमें राजनीतिक योग्यता है, यह इसीसे सिद्ध है। इस हालतमें क्यों न पुरुषोंके सदृश ही स्त्रियोंको भी निर्वाचनका अधिकार मिले?

समाजकी दशा हर समय बदलती रहती है। एक ढंगके स्वभाव वाले शासकोंकी उसको जरूरत नहीँ है। उसको उसकी दशाके अनुकूल ही शासक मिलना चाहिये। यदि पुरुषोंमें वीरता, साहस तथा धैर्य्य अधिक है तो स्त्रियोंमें कोमलता, प्रीति, तथा शान्ति अधिक है। युद्धके समयमें राष्ट्रका प्रधान पुरुष हो और शान्तिके समयमें स्त्री हो तो राष्ट्रकी कला बहुत उत्तम विधि पर चल सकती है। सारांश यह है कि निर्वाचनका क्षेत्र जितना विस्तृत हो उतना ही अच्छा है। यदि पुरुषोंमें समाजकी दशाके अनुकूल शासक नहीं मिलता हो तो स्त्रियोंमेंसे ही क्यों न चुनाव किया जाय! राष्ट्रको उत्तम शासक चाहिये। चाहे वह स्त्री हो या पुरुष, इससे राष्ट्रको कुछ भी मतलब नहीं होना चाहिये। यही कारण है कि स्त्रियोंको निर्वाचनका अधिकार अवश्य ही मिलना चाहिये।

(घ) स्त्रियोंका जीवन पारिवारिक जीवन है। स्त्री तथा कन्याका पिताके अनुकूल वोट देना स्वाभाविक ही है। इस दशामें भिन्न २ परिवार एक एक निर्वाचक मण्डलका रूप धारण करेगा। यह बहुत ही अच्छी घटना है, क्योंकि शुरूमें राष्ट्रका उदय परिवारसे ही हुआ था और विकसित था। फूले फले राष्ट्रके अन्दर परिवारकी मुख्यताका बढ़ना उन्नति चक्र के अनुसार उचित ही है। जो शुरूमें था, यदि

वही चरमावस्थामें उत्पन्न हो तो इससे बढ़ कर अच्छा और क्या हो सकता है।

(ङ) आज कल यूरोपीय राष्ट्रोंमें स्त्रियां अप्रत्यक्ष तौर पर राजनीतिमें भाग लेती हैं। पुरुषों पर स्त्रियोंका कितना अधिक प्रभाव होता है यह किसीसे भी छिपा नहीं है। राजनीतिज्ञोंका अनुभव है कि अप्रत्यक्ष हाथकी अपेक्षा प्रत्यक्ष हाथका किसी कार्यमें होना अच्छा है। स्त्रियां परदेमेंसे राष्ट्रकी कलको घुमाया करें इससे बढ़कर हानिकर और क्या बात हो सकती है। अच्छा तो यही है कि स्त्रियोंको निर्वाचनका अधिकार दे दिया जाय और वे अपना उत्तरदातृत्व समझते हुए खुले तौर पर राष्ट्रीय कार्य्योंमें भाग लें।

इस प्रकार स्पष्ट है कि स्त्रियोंको राज्यकार्य्य तथा निर्वाचनका अधिकार देना राष्ट्रको भयंकर नुक्सान न पहुंचा कर कुछ न कुछ लाभ ही पहुचावेगा। परन्तु एक बात है जिसको न भूलना चाहिये। स्त्रियोंको कुछ अधिकार देकर राष्ट्र कुछ खोवेगा भी। परिवर्त्तनमें कुछ नष्ट होता है और कुछ उत्पन्न भी होता है। परिवारका सुख तथा आनन्द राजनीतिक विवादोंके पहुंचनेसे कुछ न कुछ अवश्य ही किरकिरा हो जायगा। स्त्रियोंकी कोमलता तथा सौन्दर्य्य राजनीतिक अधिकारोंके पीछे कुछ न कुछ अवश्यही मुरझा जायगा। हो सकता है कि किसी राष्ट्रकी स्थिति तथा स्वभाव ऐसा विचित्र हो कि स्त्रियोंको निर्वाचनका अधिकार देने पर लाभकी अपेक्षा उसको नुक्सान अधिक उठाना पड़े। स्त्रियोंके कारण राष्ट्र भयंकर विपत्तियोंमें पड़ चुके

हैं यह किसीसे भी छिपा नहीं है। स्त्रियोंके अपमान पर लोगोंका खून उबल पड़ता है। सीताका अपहरण, द्रौपदीका चीरहरण, और राजपूत ललनाओं पर मुसलमानोंकी कामिक दृष्टि सैकड़ों खूनी युद्धोंको भारतमें जन्म दे चुकी है। राजनीतिक विवादोंमें मान तथा अपमान प्रति दिन होता रहता है। इसमें पड़ कर स्त्रियां अपनी पुरानी इज्जतको खो देंगी और पुरुषोंमें पारस्परिक वैमनस्य बढ़ावेंगी। यदि कोई पुरुष राजनीतिक झगड़ोंमें पड़ कर किसी स्त्रीका अपमान करे, उस दशामें उसके पतिको या तो उसका अपमान चुप चाप सहन करना पड़ेगा या क्रोधमें आकर वह राष्ट्रके हिताहितको छोड़नेके लिये बाधित होगा।

§ २१. कुलीन।

यूरोपमें जातोंके स्थानपर कुलीन लोग ही मुख्य हैं। कुलीनोंका जातोंसे भेद है। जात स्थिरताको पसन्द करती हैं और परिवर्तनसे डरती हैं। परन्तु कुलीनोंमें यह बात नहीं हैं। ऐतिहासिक परिवर्तनोंके साथ ही साथ उनकी स्थिति तथा उनके राज्याधिकार भी बदलते हैं।

शुरू शुरूमें यूरोपीय कुलीन वर्ण जातोंसे मिलते जुलते थे। परन्तु पूरी शक्ति प्राप्त करते हो वे जातोंसे भिन्न हो गये। ग्रेट ब्रिटेनमें डूयिड लोग किसी ज़मानेमें संपूर्ण धार्मिक कृत्योंको करते थे। शिक्षण तथा राज्य-नियम सम्बन्धी कामोंका एकाधिकार उन्हीं लोगोंके हाथमें था। भारतीय ब्राह्मणोंसे उनकी तुलना की जा सकती है। उसी प्रकार शासनका काम भिन्न भिन्न कुलोंनोंके

पास था जो भारतके क्षत्रियोंसे बहुत कुछ मिलते जुलते थे। कृषकों तथा अर्द्धदासोंकी संस्था भी वहां भारतके सदृश ही विद्यमान थी।

भारतने जातोंके भेदको बनाये रखा और अभी तक इसको ईश्वरीय सृष्टिका परिणाम समझता है। यूरोपने इस भेदको क्रमशः घटाया और समानता, बन्धुभाव तथा स्वतन्त्रताको अपने सामाजिक संगठनका आधार बनाया। उसने जन्मके स्थानपर कार्य्यको मुख्यता दी। यही कारण है कि मध्यकालमें यूरोपके अन्दर प्रत्येक मनुष्य मेहनतसे कुलीन बन सकता था। वहां भी मध्यकाल तक सारा समाज चार वर्गके लोगोंमें बंटा रहा जिनके नाम निम्न लिखित हैं।

(१) पादरी
(२) कुलीन तथा ताल्लुकेदार लोग
(३) नागरिक
(४) कृषक

मध्यकालके अन्तमें उपरिलिखित वर्ग एक दूसरेमें विलीन हो गये। आजकल यूरोपमें असमानता तथा भेद-भावका आधार संपत्ति है न कि जन्म। सम्पत्ति सम्बन्धी भेदभावको मिटानेके लिये यूरोपमें जो प्रबल यत्न हो रहा है, यदि वह यत्न सफल हो गया तो वहां नया जीवन आ जायेगा। दुःखकी बात है कि भारतवर्ष अभी तक ज्योंका त्यों अज्ञानान्धकारमें लीन है। जन्मसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य बननेके विचारोंने हिन्दू समाजके आत्माको इतना छली

कर दिया है कि अभीतक समानता, बन्धुभाव तथा स्वतन्त्रताके सिद्धान्तोंके महत्वको वे न समझ सके। समुद्र-यात्राको रोककर हिन्दुओंने अपनी उन्नतिको कोसों दूर फेंक दिया है। संसारके भिन्न भिन्न उन्नत जनसमाजको देखनेका यदि हिन्दुओंको मौका होता तो उनके पुराने विचार कभीके दूर हो चुके होते। अंग्रेजी राज्यके आनेका भारतवर्षपर पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। अंग्रेजी शिक्षाने पुराने विचारोंपर पानी फेरनेका अच्छा काम किया है। भय जो कुछ है वह यही है कि अंग्रेजोंकी पराधीनतामें कहीं यह अपनी अच्छी अच्छा बातोंको भी न खो दे।

चौथा परिच्छेद

राष्ट्रके समुत्थानमें प्राकृतिक परिस्थितिका भाग।

§ २२. जलवायु।

मनुष्य प्रत्येक प्रकारकी भूमिमें रह सकता है। भयंकरसे भयंकर जलवायुमें (वह अपने रहन-सहनको बदल कर) निवास करना शुरू कर देता है। गर्मी सर्दी तथा दिन रातका मनुष्यके जीवन पर काफी प्रभाव पड़ता है। जनताकी आदत, रहन सहनका ढंग तथा आचार-व्यवहार भिन्न जलवायुमें भिन्न रूप प्राप्त कर लेते हैं। पूर्वी प्रदेशोंमें पहुंचते ही रोमन लोग अपनी वीरता खो बैठे, जर्मन लोग अफ्रीकामें जाते ही निशःक्त हो गये और अंग्रेज भारतवर्षमें रहते ही भोग-विलास-प्रिय तथा आलसी बन गये।

शुरू शुरूमें सभ्यताकी उत्पत्ति उन्हीं देशोंमें हुई जो कि न अति गर्म थे और न अति ठण्ढे। बहुत ठण्ढे देशोंमें असभ्य लोगोंका सारा समय भोजनाच्छादनकी सामग्री जुटानेमें ही खर्च हो गया। यही कारण है कि वहां सभ्यता न बढ़ सकी। वृष्टि तथा उत्पादक भूमिसे युक्त गर्म देशोंमें भोजनाच्छादनकी अधिकतासे सभ्यता बढ़ी। गर्मीके कारण लोगोंमें प्रमाद तथा आलस्य बढ़ा इससे वे सभ्यताको एक हद्द तक ही बढ़ा सके।

समशीतोष्ण देशोंमें सबसे पहिले सभ्यता बढ़ी। इसका एक प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि संसारके सभी राष्ट्रोंकी

राजधानियां लगभग ८ से १६ शतांश गर्मीके बीचमें हैं । (१) लगभग शब्द इसलिये कहा कि कुछ एक यूरोपीय राष्ट्रोंकी राजधानियां अति शीत देशोंमें हैं । (२)

विद्या, विचार, विज्ञान आदिकी उन्नतिसे जलवायुका प्रभाव किसी हद्द तक दूर किया गया है । बिजलीके पंखों, बरफ तथा खसखसकी टट्टियोंसे सख्तसे सख्त गर्मीमें भी शीतप्रधान देशका मनुष्य गुजारा कर सकता है । मुसल्मान तथा हिन्दुओंके धर्म्मशास्त्रोंमें शराब पीना रोका गया है । यह क्यों ? यह इसीलिये कि गर्म देशोंके लोगोंको यह बहुत ही अधिक नुकसान पहुंचाती है । ठण्डे देशके लोगोंके लिये यह इतनी हानिकर नहीं है । सर्द देशोंमें देरतक मेहनतका काम किया जा सकता है । गर्म

---

१. दृष्टान्तके तौरपर निम्नलिखित राजधानियोंकी गर्मीकी मध्यम दी जाती है । रोम. १५°.४—माद्रिद १४°.२—पैरिस १०°.८—लण्डन ९°.८—वीना १०.५—कान्स्टैन्टिनोपल १३°.७—बर्लिन ९°.१—हम्बर्ग ८°.९—कोपन हेगन ८°.२—जूरिच ८°.८—हेग १०°.५—ड्रेस्डन ८°.३—म्यूनिच ९°.१—बोस्टन ९°.६—वाशिंगटन १३°.५—फिलेडेल्फिया ११°.९—रिचमन्ड १३°.८—पेकिन ११°.३—नैपल्स १६°.४—लिस्बन १६°.४ मैक्सिको १६°.६—ब्यूनस आयरस १६° ९—पालर्मो १८°.२—सिडनी १८°.१—नागारस्की १८°.३—कैन्टन २१°.६—केरो २२°.४—रायोडि जैनिरो २३°.—कलकत्ता २५°.८ सिंगापुर २६°.८—

२ दृष्टान्तके तौरपर—पेट्रोग्रेड ३°.१—क्रिस्चियाना ५°.३—स्टाकहाल्म ५°.६

पीछे जो कुछ आविष्कृत हुआ है वह सभी श्री मार्शलके अनुसन्धानका फल है।

श्री मार्शलका द्वितीय खनन कार्य्य ।

प्रथमबारके खनन-कार्य्यके फलसे उत्साहित हो फिर सन् १९०८ ईसवी (संवत् १९६५) में डाक्टर कोनोको साथ लेकर श्रीमार्शल इस कार्य्यमें लगे। इस वर्ष भी उत्तरीय अंशमें ही कार्य्य आरम्भ हुआ। धामेक स्तूपके उत्तरमें कितनेही स्तूपों आदिका आविष्कार करके मार्शलने इन्हें गुप्त कालीन (पंचमसे अष्टम शताब्दी तकका) बतलाया। जगतसिंह स्तूपके चारों ओर खोदवाकर उन्होंने स्तूपके पुनः सात बार संस्कार होनेके चिन्ह पाये। इस बारके खनन-कार्य्यमें बहुतसी हिन्दू बौद्धमूर्त्तियाँ और २३ शिला लिपियां भी आविष्कृत हुईं। इन्हें छोड़ कच्ची एवं पक्की मिट्टीकी मुहरें (Seal), मिट्टीकी बनी माला, द्वारोंके टुकड़े इत्यादि भी प्रचुर परिमाणमें मिले। सुदीर्घ १२ फुट ऊंची महादेवकी दश भुजावाली मूर्ति, १ म शताब्दी विक्रमीयसे कुछ पहिलेका मिट्टीका सिर, (१४) "क्षान्तिवादि जातक" चित्रित पत्थरका खंड, विश्वपालकी लिपि और कुमरदेवीकी लिपि आदि विशेष रूपसे उल्लेख योग्य हैं। इनका वर्णन समुचित रूपसे अगले अध्यायमें किया जायगा।

पृष्ठ ८० का नोट—(१३) श्रीयुत राखालदास वन्द्योपाध्याय लिखित "बौद्ध वाराणसी" प्रबन्ध सा० प० पत्रिका १३१३ साल, १९३ पृष्ठ

(१४) Annual Report 1907-08, figure 8.

श्रीहारग्रीवका अनुसन्धान ।

श्री मार्शल साहबके खनन-कार्य्यके पीछे छः वर्षतक सारनाथमें खुदाईका काम बन्द रहा । सारनाथके खनन-कार्यनेही सबको चमत्कृतकर दिया था । इसलिये सारनाथके सदृश विख्यात ऐतिहासिक स्थानके खनन-कार्य्यका पुरातत्व-विभाग द्वारा इतने समयतक स्थगित रक्खा जाना न्यायसङ्गत नहीं कहा जा सकता । यदि साधारण लोग यह न जाने कि खुदाई कहां करानी चाहिये तो कोई आश्चर्य्यकी बात नहीं है । सर रत्न ताताने जो पाटलिपुत्रके खनन-कार्य्यमें बहुतसा द्रव्य लगा दिया इसके लिये हम उनको दोषी नहीं ठहरा सकते, पर यह सोचनेकी बात है कि पहिली खुदाइयोंका फल देखकर भी प्रत्नतत्व-विभागके अधिकारियोंने उनको आशानुरूप फलका लोभ कैसे दिखलाया । खैर, सारनाथकी खुदाईको जारी रखनेकी बात उनको उन दिनों भूल गयी थी । संवत् १९७२ में पुरातत्व-विभागके श्री हारग्रीवने जो थोड़े समयके लिए खनन-कार्य्य चलाया था उससे तीन अति मूल्यवान् मूर्तियां प्राप्त हुईं । इन तीनों मूर्तियोंके पाद-पीठोंपर द्वितीय कुमारगुप्तके राज्यकालतकके विषयोंका वर्णन करती हुई दानमूलक लिपियां खुदी हुई हैं ।

पञ्चम अध्याय ।

सारनाथसे प्राप्त शिल्प-चिन्होंका महत्त्व

सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक विन्सेण्ट स्मिथने सारनाथसे निकली वस्तुओंको देखकर अन्तमें अपने विख्यात ग्रन्थमें इस सिद्धान्तको स्थिर किया है कि केवल सारनाथके शिल्पोंहीसे अशोकसे लेकर मुसलमानोंके अधिकार तकके भारतीय शिल्पके इतिहासका स्पष्ट वर्णन हो सकता है। (१) प्राचीन भारतमें जितने प्रकारकी शिल्पकलाओंका प्रचार हुआ था उन सबका नमूना यहां मिल सकता है। "भारतीय चित्रकला-पद्धति" के नव-सेवकगण यदि अपनी उग्र कल्पनाका परित्यागकर कुछ दिनोंके लिए इस स्थानकी शिल्प-रीतिसे शिक्षा लें, तो प्राचीन शिल्पादर्शके सम्बधमें भ्रान्त धारणाओंके लिए उन्हें हास्यास्पद बननेकी सम्भावना न रह जाय। आजकल यह अवश्य कहा जाता है कि कल्पनाक्षेत्रसे भारतीय चित्रकलाका आदर्श प्राप्त नहीं हो सकता, फिर भी आत्मनिर्भरशील नये चित्रकार इस बातको बिलकुल व्यर्थ समझेंगे।

(१) "*** the history of Indian sculpture from Asoka to the Muhammadan conquest might be illustrated with fair completeness from the finds at Sarnath alone." V. A, Smith "A history of fine Art in India and Ceylon" p. 148.

सारनाथकी ऐतिहासिक सामग्री शिल्पके अतिरिक्त मूर्तितत्व (Iconography) के लिहाज़से भी अधिक मूल्यवान् है। किस युगमें किस मूर्तिका आदर था, कौन सम्प्रदाय किस मूर्तिकी आराधना करते थे, किस सम्प्रदायमें परिवर्त्तन किया गया था, इत्यादि नाना ज्ञातव्य बातें हम सारनाथकी मूर्ति प्रभृति भास्कर्य्य निदर्शनसे ही जान सकते हैं। बौद्ध, हिन्दू, जैन मूर्तियोंकी अपूर्व्व सङ्गति अनेक तथ्योंका उद्‌घाटन कर देती है। मूर्तियों और शिल्पोंद्वारा निर्णय करनेमें दक्ष महानुभाव उचित अवसरपर बहुसमयव्यापी परीक्षाद्वारा इन विषयोंकी मीमांसा करेंगे। सारनाथके भास्कर्य्य-संग्रहसे ही भारतीय पुराणतत्व (mythology) की भी बहुतेरी बातें प्रकाशित हुई हैं। संग्रहीत विविध प्रस्तर खंडोंपर बौद्ध पुराणान्तर्गत जातकोंकी घटनावलियां भी अंकित हैं। (२) शिल्पतत्व, मूर्त्ति-तत्व पुराणतत्वको छोड़कर ऐतिहासिक और पुरातत्वमें भी सारनाथका भास्कर्य्य-संग्रह यथेष्ट मूल्यवान् है। यहांकी अनेक मूर्तियोंकी गढ़नसे मूर्त्तिकी लिपिका समय स्थिर किया गया है, अनेक मूर्त्तियोंका पत्थर देखकर भिन्न भिन्न स्थानोंके शिलिपयोंके भावोंका विनिमय भी जाना गया है, किसी किसी स्तूपोंकी शिल्प पद्धतिसे मालूम हुआ है कि सिंहलद्वीपके शिलिपयोंके साथ भी सारनाथके शिलिपयोंका सम्बन्ध था। सुतरां, यह सारनाथका म्युज़ियम ऐतिहासिकों या पुरातत्वज्ञोंके लिए दर्शनीय शिक्षागार है। जिस प्रकार प्रयोगशाला (लेबोरेटरी)

(२) क्षान्तिवाद जातक।

अभ्यास किये बिना कोई मनुष्य वैज्ञानिक नहीं बन सकता, ठीक उसी भांति म्युज़ियममें शिक्षा प्राप्त किये बिना कोई ऐतिहासिक या प्रत्नतत्वविद् नहीं हो सकता। यह बड़े दुःखका विषय है कि इस देशके लोग अभीतक इस ओर ध्यान नहीं दे रहे हैं। यूरोपमें म्युज़ियम देखे बिना एवं देश-भ्रमण किये विना शिक्षा समाप्त नहीं हो सकती। हम अनेक विषयोंमें तो यूरोपका अनुकरण करते हैं किन्तु इस विषयमें हम बिलकुल पिछड़ गये हैं। तथापि मालूम होता है कि देशकी हवा कुछ फिरी है। जातीय चेष्टासे कहीं कहीं म्युज़ियम स्थापित करना आरम्भ हो गया है। यदि सारनाथके ऐतिहासिक संग्रहका निम्नलिखित सामान्य विवरण पढ़कर किसीके हृदयमें म्युज़ियमसे शिक्षा प्राप्त करनेकी आकांक्षा जागृत हो तो मेरा यह परिश्रम सफल होगा। अब मैं इस स्थानसे आविष्कृत द्रव्यादि तथा म्युज़ियमके संग्रहका यथासाध्य कालक्रमानुसार विभागकर स्थूल रूपसे वर्णन करूंगा।

मौर्य्यकालीन शिल्पके नमूने।

सारनाथमें अबतक जो कुछ आविष्कृत हुआ है उसमें सबसे प्राचीन एवं सर्व्वोत्कृष्ट शिल्प निदर्शन महाराज धर्म्माशोकका सिंहयुक्त प्रस्तरस्तम्भ है। इसके पूर्व्व भारतके नाना स्थानोंपर अशोकके नव प्रस्तरस्तम्भ आविष्कृत हो चुके थे। उनकी भी बनावट और शिल्प-चातुर्यकी प्रशंसा देशी तथा विदेशी शिल्प-समालोचकोंने सैकड़ों मुंहसे की है। (३)

(३) The detached monolithic pillars erected by Asoka ** bear testimony......to the perfection attained by the early stone-cutters of India in the exercise of their craft." V. A. Smith in the Imp. Gazetteer of India Vol. II p. 109.

किन्तु इस स्तम्भके आविष्कृत होनेके पीछे सब लोगोंने एक वाक्यसे स्वीकार किया है कि इसकी अपेक्षा सुन्दर पाषाण स्तम्भ और नहीं हैं। स्तम्भके सिरपर चार सिंह-मूर्त्तियां वर्तमान हैं प्राचीन कालमें इन सिंहोंके नेत्र मणिमय थे। इस समय वे मणियुक्त तो नहीं हैं पर उनके मणियुक्त होनेके अनेक चिन्ह वर्तमान हैं। इन सिंहोंकी खोदाई इतनी स्वाभाविक और सुन्दर हुई है कि इसे देखते ही अनवरत प्रशंसा करनेकी इच्छा होती है। इन सिंहोंके नीचे चार चक्र हैं, दो दो चक्रोंके मध्यमें हाथी, सांड, अश्व तथा सिंह अंकित हैं। ये चक्र सम्भवतः बौद्ध चक्रके चिन्ह स्वरूप बनाये गये हैं। हाथी, सांड़, अश्व और सिंह यथाक्रमसे इन्द्र, शिव, सूर्य तथा दुर्गाके वाहन हैं। अतएव ये बौद्धधर्मकी अधीनताको सूचित करते हैं। परलोकगत डाक्टर ब्लकका यही मत है। इस स्थानपर यह देखने योग्य बात है कि उक्त चारों पशु चलते हुए ही अंकित किये गये हैं। चक्र भी चलते हुए दिखाये गये हैं। इसका तात्पर्य्य कदोचित् यह था कि जबतक ये जन्तु संसारमें चलते रहेंगे तबतक बौद्ध धर्म भी पृथिवीपर चलता रहेगा। हम डाक्टर ब्लकके इस मतको भी पण्डित दयाराम साहनीकी भांति अस्वीकार नहीं कर सकते। इस चित्रके नीचेका अंश घंटेके सदृश अंकित हैं। यह समग्र स्तम्भ-शीर्ष म्युज़ियमके प्रधान गृहमें स्थापित हैं और स्तम्भका निम्नांश अपने प्राचीन स्थानपर वर्तमान है। इसके अन्य भग्नांश भी इसके निकट ही रखे हैं। यह स्तम्भ-शीर्ष तथा स्तम्भ बलुये पत्थरके बने हैं। इसके ऊपर एक

वज्रलेप है। (४) वज्रलेपकी चमक, उसका चिकनापन तथा उसका रंग देखकर अचम्भित होना पड़ता है और इतने प्राचीन युगमें भौतिक विज्ञान जिस उन्नतिको प्राप्त हुआ था इसका विचारकर आश्चर्यका पारावार नहीं रहता। (५) इस स्तम्भके मस्तकपर बौद्ध वाराणसीका प्रधान चिन्ह एक वृहत् धर्मचक्र था, इसका भग्नांश अब भी म्युज़ियममें सयत्न रक्षित है।

इस स्तम्भपर जो भिन्न भिन्न तीन खुदी लिपियां दिखायी देती हैं उनकी आलोचना अगले अध्यायमें विस्तारपूर्वक की जायगी। इस अध्यायमें जिन बातोंकी चर्चा की

---

(४) पूज्यपाद ऐतिहासिक तथा शिल्प समालोचक श्री युक्त अक्षय कुमार मैत्र महाशयका कथन है कि तन्त्रमें इस लेपकी रचना-प्रणालीका वर्णन है। बंगालके मासिक पत्रोंमें भी इसकी बहुत चर्चा हुई है।

(५) विन्सेण्ट स्मिथ अशोक स्तम्भको ग्रीक व पारस्य कला-पद्धतिके अनुसार बनाया गया बतलाना चाहते हैं। "* * * The Asoka pillars may be described as imitations of the Persian columns of the Archalmanian period with Menestic ornament." सुप्रसिद्ध चित्र शिल्पी ह्यावेल (Havell) ने थोड़े ही दिन हुए भारतीय शिल्पपर यूनानियोंका प्रभाव पड़नेके मतका खण्डन किया है। पेशावर म्युजियमकी २४१ नंबरकी मूर्त्ति एवं अन्यान्य मूर्तियोंको देखकर यह जाना जाता है कि ग्रीक शिल्पियोंके सदृश उनमें मांसपेशी (Muscles) की रचना करनेकी प्रवृत्ति न थी।

इन स्थूलोदर मूर्त्तियोंको देखकर उन्हें "भारतीय" छोड़ और कुछ नहीं कहा जा सकता। ग्रीक मूर्त्तियां स्थूलोदर नहीं होतीं। (cf. Sohrman's "Die Altindische saule" (Old Indian Halls)

गयी है, वे किन किन लिपियोंमें पायी गयी हैं, इसका विवरण भी वहीं दिया जायगा। यह अध्याय केवल लिपियोंके उल्लेख करनेमें ही समाप्त होगा।

मुख्यतः अशोक-स्तम्भके सिवाय मौर्य युगका और कोई शिल्प-निदर्शन सारनाथमें नहीं निकला। कुमरदेवीकी लिपिसे प्रकट होता है कि उन्होंने अशोक कालीन "श्री धर्म चक्रजिन" अथवा बुद्ध भगवान्‌की मूर्त्तिका संस्कार कराया था। (६) इतने समय तक इस सम्बन्धमें यूरोपीय लोगोंमें जो अज्ञान था, इस लिपिसे उसका अन्त हो गया और सत्यका प्रकाश हो गया। अब भी कितने ही यूरोपीय पुरातत्व-विशारदोंका मत है कि महायान सम्प्रदायके आविर्भावके पहिले बुद्ध या अन्य किसी देवताकी मूर्त्ति इस देशमें नहीं बनती थी। कुमर देवी यदि मिथ्यावादिनी न कही जाय,

(६) Epigraphica Indica Vol. IX, P. 325, also A.S.R. 1907-08, page 79.

* धर्म्माशोक नराधिपस्य समये श्री धर्मं चक्रोजिनो
याद्दृक् तन्नय रक्षितः पुनरयञ्चक्रे ततोऽप्यद्भुतम्
वीहारः स्थविरस्य तस्य च तया यत्नादयङ्कारितः
तस्मिन्नेव समर्पितस्त्व वसतादाचन्द्रचण्डद्युति।

डाक्टर वोगलने लिखा है:—A still further development in the History of Buddhism is illustrated by the numerous images of deities, of which the Sarnath excavations have yielded so many specimens. The worship of these no doubt formed a part of the popular religion of India at an early stage, in fact it may in many cases go back to Pre-Buddhist times."

तो यह स्वीकार करना पड़ेगा कि यह धारणा बड़ी ही भ्रांतिमूलक है। विद्वानोंको यह बात कभी स्वीकार नहीं हो सकती कि अशोक-स्तम्भ या सांचीके समान सूक्ष्म शिल्पोंके बनाने वाले शिल्पी, भगवान् बुद्धकी मूर्त्ति बनानेमें असमर्थ थे। यूरोपियनोंका यह विश्वास बिल्कुल प्रमाणशून्य है। अतः हम उसे ग्रहण नहीं कर सकते।

मौर्ययुगका दूसरा निदर्शन अशोक द्वारा निर्मित एक सुन्दर पाषाण-वेष्ठनी (Railing) है। इसकी आलोचना प्रसंगवश अन्यत्र की गयी है। यह पाषाण-वेष्ठनी प्रधान मन्दिरके दक्षिण वाले गृहमें ईंटोंके एक छोटे स्तूपके चारों ओर लगी हुई निकली है। इसमें आश्चर्यकी बात यह है कि यह वेष्ठनी एक ही पत्थरके टुकड़ेसे बनी है। उसमें कोई जोड़ नहीं है।

इसकी बनावट और पालिस साञ्ची और भरहुतमें पायी गयी रेलिङ्गके सदृश ही है। इस रेलिङ्गमें भी उसी प्रकारकी सूचियां लगी हैं जिस प्रकारकी सांची और भरहुतमें हैं। (७) उन रेलिङ्गोंपर जिस तरह दाताओंके नामकी छोटी छोटी लिपियां हैं उस भांति इसमें भी वर्तमान हैं। इस वेष्ठनीपर जो ब्राह्मी अक्षरोंमें एक छोटी लिपि है उससे प्रकट होता है कि "सवहिका" नामकी किसी मठवासिनीने इसे दिया था। मथुरा आदि स्थानोंमें बौद्ध युगके निदर्शन जिन्होंने देखे हैं, उनके लिये यह वेष्ठनी और सूची नयी नहीं है।

(७) Anderson's "Archaeological catalogue Part I. Indian museum p.9.

शुंग युगका चिन्ह।

मौर्य युगके बाद शुङ्ग युगके एक सचित्र स्तम्भ-शीर्षने वैदेशिक शिल्पियोंकी दृष्टिको आकर्षित किया है। यह स्तम्भ-शीर्ष (No. D 9. 4) प्रधान मन्दिरके पश्चिमोत्तर कोणकी ओर मिला था। यह चपटा और दोनों ओर चित्रित है। एक ओरके चित्रमें एक पुरुष बड़े तावसे घोड़ा चलाता है। अश्वका गति-भङ्ग, पुरुष-मूर्त्तिका हिलना एवं मुखका भाव इत्यादि देखने योग्य है। यह सम्पूर्ण चित्र स्वाभाविकतासे परिपूर्ण है और भारतकी प्राचीन चित्रकला-पद्धतिके अनुसार बनाया गया है। दूसरी ओरके चित्रमें एक हस्तीपर दो पुरुष आरूढ़ हैं। सामने महावत अंकुशकी मारसे हस्तीको चला रहा है। इसके पीछे एक व्यक्ति हाथमें पताका लिये बैठा है। अंकुशकी मार खाकर हाथी किस प्रकार सूंड़ सहित माथा ऊंचाकर पैर उठाये हुए है, आरोहीगण किस रूपसे तिरछे हो गये हैं, पताका किस भावसे सञ्चालित हो रही है, ये सब भाव बड़ी दक्षतासे अंकित किये गये हैं।

इसके अतिरिक्त शुङ्ग युगके कई एक वेष्टनी-स्तम्भ भी विशेष उल्लेख योग्य हैं। (No. D a 1-12) ये मार्शल साहबके द्वारा प्रधान मन्दिरके पूर्वोत्तर भूभागसे निकले थे। एकको छोड़ प्रत्येक स्तम्भके एक भागपर नानारूपके बौद्ध चिन्ह वर्त्तमान हैं। किसीपर माल्यादाम शोभित बोधिद्रुम, त्रिरत्न विज्ञापक त्रिशूल चिन्ह और किसीपर चक्र तथा चि... खुदे हैं और किसीपर चक्र तथा छत्र वर्त्तमान हैं। D (a) नं० स्तम्भपरके चित्र कौतूहल जनक हैं। आधा मनुष्य और आधा राक्षसवाली मूर्त्ति, हाथीके कान, तथा मछलीकी पूंछवाली मूर्त्ति, पुष्प, सिंह-मुख इत्यादि विशेष देखने योग्य हैं।

शुङ्ग युगका एक और चिह्न (B I नं०) पाया गया है। पुरुष मस्तकके दो ऐसे टुकड़े मिले हैं जिनमें दाहिना कान तो टूटा हुआ, पर बायाँ वर्तमान है। कानमें कोई आभूषण नहीं है। मस्तकपर देशीय प्रथाका सूचक जूड़ा बंधा है, जूड़ेको छोड़ शेष शिर मुंड़ा हुआ है। यह अर्टल साहबके समयमें प्रधान मन्दिरके निकटवर्त्ती स्थानसे आविष्कृत हुआ था।

कुशान युगकी बौद्ध मूर्तियां।

शुङ्ग युगके पीछे भारतमें कुशान युगका आविर्भाव हुआ शुङ्ग युगके सदृश कुशान युगमें भी कितने-ही ऐतिहासिक निदर्शन सारनाथके भू-खननसे आविष्कृत हुए हैं। ये सभी बुद्ध मूर्त्तियाँ हैं। अतः कुमरदेवी द्वारा वर्णित मूर्त्तिकी बातका ख्याल न कर विदेशी पुरातत्वज्ञोंने इनमेंसे-ही प्रधान मूर्त्तिको सारनाथकी सबसे प्राचीन मूर्त्तिका नमूना ठहराया है। इनकी प्रधान युक्ति यह है:— 'सबसे प्राचीन बुद्ध मूर्त्ति गान्धारके बैक्ट्रियन (ग्रीक) शिल्पियों द्वारा निर्मित हुई। वहाँसे इसका नमूना मथुरामें लाया गया और मथुरासे इसका प्रचार भारतके सम्पूर्ण बौद्ध स्थानोंमें हुआ। सारनाथकी यह बोधिसत्व-मूर्त्ति (बुद्धि मूर्त्ति नहीं) मथुराके लाल पत्थरसे बनी है। इस मूर्त्तिके देनेवाले भिक्षु बलकी ठीक ऐसी ही मूर्त्ति मथुरामें मौजूद है। (८) अतः स्वीकार करना पड़ता है कि सारनाथमें कोई मूर्त्ति इससे अधिक प्राचीन नहीं हो सकती।" हम इस युक्तिको स्वीकार करनेमें

(८) Sarnath Catalogue p. 18.

असमर्थ हैं और इसके विषयमें एक प्रमाणका उल्लेख इस मूर्त्तिके आकारादिका वर्णन करेंगे । गान्धार या पेश वरमें अब तक जितनी बौद्ध कालीन मूर्त्तियाँ मिली हैं उन से किसी भी मूर्त्तिको इस मूर्त्तिकी अपेक्षा पुरातत्वज्ञ प्राचीनतर प्रमाणित नहीं किया है । इस मूर्त्तिपर खुदी लिपिको ही ये लोग कनिष्कके राज्यकालके तीसरे वर्ष बतलाते हैं । यह मूर्त्ति आकारमें प्रायः ६ फुट ५ इञ्च ऊँ है । इसका दाहिना हाथ टूटा है । करतलमें चक्र प्रत्येक अंगुलीके सिरेपर शुभ-लक्षण-सूचक चिह्न हैं । ये दोनों चिह्न महापुरुषोंके लक्षणोंके अन्तर्गत हैं बुद्धत्वके भी परिचायक (सूचक) हैं । इस मूर्त्तिका बा हाथ कुछ तिरछे रूपमें कमरपर रखा हुआ है । कमरसे नी एक "अन्तरवासक" (धोती) पट्टी द्वारा बंधा है और ऊ भागपर 'उत्तरासंग" (चादर या डुपट्टा) है ।

इसके वस्त्राभूषण आदिके देखनेसे यह मालूम होता कि इस शिल्पीने स्वाभाविकताकी रक्षा करनेमें बड़ाही किया था । साहब लोगोंका विश्वास है कि इस तरह मूर्त्ति केवल ग्रीक लोगों द्वारा बनायी जा सकती थी । क्षमें अनेक प्रमाणोंके रहते हुए भी वे यदि ऐसी ही बातें कहते रहें तब तो लाचारी है और इसका कोई उत्तर नहीं

दोनों पैरोंके बीचमें एक छोटे सिंहकी मूर्त्ति है । "डा वोगल" का कहना है कि यह बुद्धके शाक्य सिंह नाम परिचय देती है । किन्तु बोधिसत्वके पैरोंके नीचे सिंहकी मूर्त्ति किस कारण रह सकती है यह हमारी सम नहीं आता । हम तो यह समझते हैं कि जिस कारण

स्तम्भके शोर्षपर चार पशुओंमें सिंहकी भी मूर्त्ति वर्तमान है, ठीक उसी कारणसे अथवा महायान पथके अनुसार किसी भिन्न ही कारणसे यह सिंहकी मूर्त्ति बनायी गयी है। मूर्त्तिके मस्तकके ऊपर एक बहुत बड़ा छत्र बना था। यह छत्र टूट गया है, इसके दश खण्ड निकले हैं, ये टुकड़े जोड़कर म्युज़ियममें रख दिये गये हैं। छत्रके मध्य भागमें पद्मका सा आकार खुदा है। उसके चारों ओर अनेक वृत्त वर्तमान हैं। एक एक वृत्तमें नाना जन्तुओंकी मूर्त्तियां, त्रिरत्न, मछलियोंके जोड़े, शंख, स्वस्तिक आदि चिन्ह खुदे हैं। छत्रके स्तम्भपर जो लिपि खुदी है उसका वर्णन षष्ठ अध्यायमें सविस्तर किया जायगा।

इस मूर्त्तिके सिवाय कुशान युगकी एक और मूर्त्ति विशेष उल्लेख योग्य है। इसका नम्बर B (a) 3 है। यह बोधिसत्वमूर्त्ति बहुत छोटी नहीं है। पांवोंके नीचेकी चौकीको मिलाकर इसकी ऊँचाई १० फुट ६ इञ्च है। मूर्त्तिका मस्तक टूट गया है। दाहिना हाथ ठीक पूर्वोक्त मूर्त्तिके सदृश है। इसका बायां हाथ कमरपर नहीं, परन्तु जांघपर वर्तमान है। इस मूर्त्तिका वस्त्र क्रमशः मिटता जाता सा मालूम होता है। इसके दोनों पैरोंके मध्यमें अस्पष्ट रूपसे जो एक छोटी मूर्त्ति दिखायी देती है अनुमानतः वह भी पूर्वोक्त B (a) I मूर्त्तिके सिंहके सदृश है। मूर्त्तिके चरणके दोनों ओर नम्र भावसे युक्त दो छोटी मूर्त्तियां देखी जाती हैं। सम्भवतः ये दोनों दाताओंकी मूर्त्तियां हैं। मस्तकके पीछे एक बड़ा प्रभामण्डल (Halo) था जिसका चिन्ह अभी तक वर्तमान है। इस मूर्त्तिपर पहिले लाल रंगका लेप लगा था, दोनों पैरोंमें

इसका चिन्ह अब तक मौजूद है। यह मूर्त्ति अटल सा द्वारा की गयी खुदाईमें प्रधान मन्दिरके दक्षिण पूर्वकी ओ एक मध्य युगके स्तूप सहित निकली थी। इस मूर्त्ति जो छत्र लगा था वह तो प्राप्त नहीं हुआ किन्तु छत्रदण्ड मूर्त्तिके निकटही भूमिमें गिरा हुआ पाया गया है।

इस मूर्त्तिके अतिरिक्त एक और मूर्त्तिके प्रभामण्डल अंश कुशान युगका बतलाया गया है B (a) 4.। इस सामनेके भागपर पीपलके पत्ते खुदे हैं। इससे यह अनुम होता है कि जिस मूर्त्तिका यह अंश है वह मूर्त्ति गौतम बु बुद्धत्व लाभ करनेके पीछेकी अवस्थाको सूचित करनेके बनी थी। मूर्त्ति अब तक नहीं पायी गयी है। इस पत्थर लाल वर्णका देखकर यह मालूम होता है कि यह सम मूर्त्ति मथुराके शिल्पियों द्वारा बनायी गयी थी, ऐसा पं दयाराम साहनीका अनुमान है।

इन ऐतिहासिक निदर्शनोंको छोड़कर और भी कु युगके कई नमूने म्युज़ियममें रखे गये हैं। किन्तु प्रयोज भावसे प्रत्येकका विशेष परिचय देना हम आवश्यक समझते।

गुप्त युगकी मूर्त्तियों-का परिचय।

गुप्त युगही सारनाथकी मूर्त्तिकारीके अभ्युदयका यु सारनाथमें इसी युगकी मूर्त्तियां स अधिक हैं। इनकी कारीगरीमें अन्य को मूर्त्तियोंकी अपेक्षा अधिक सफाई सुन्दरता है। बोधिसत्व या बुद्धकी मू योंमें आसनों और मुद्राओंके भेद बड़ी स्पष्टतासे दिख गये हैं। बोधिसत्वके लक्षणोंके अनेक चिन्ह इन मूर्त्ति

पाये जाते हैं। सारनाथमें इस युगकी बड़ी बढ़िया बढ़िया मूर्त्तियां निकली हैं। हम यहांपर सिर्फ नमूने (type) के तौरपर एक एक मूर्त्तिकी एवं विशिष्टताज्ञापक कुछ और मूर्त्तियोंकी चर्चा करेंगे। कारीगरीके लिहाजसे गुप्त युगकी बुद्ध मूर्त्तियोंका यथेष्ट महत्व है। पुरातत्व-विशारद डाक्टर वोगल तकने इन मूर्त्तियोंको बौद्धतत्व-प्रकाशक कहकर इनके शुद्ध और प्रशान्त भावोंके स्पष्ट चित्रणकी बड़ी प्रशंसा की है। (९) इस युगकी मूर्त्तियोंके शिल्पमें वह सरलता नहीं है जो कुशानयुगकी मूर्त्तियोंमें हैं। फिर भी ये मूर्त्तियां शिल्पज्ञोंके लिये आदरकी वस्तु हैं। मूर्त्तियोंके प्रभामण्डलके ऊपर नाना भांतिके लता-पत्र और अलंकार चित्रणकी कारीगरी असभ्यता सूचक नहीं हो सकती। इस युगकी मूर्त्तियां कुशान युगकी मूर्त्तियोंकी अपेक्षा छोटी और आर्य-भाव-प्रकाशक हैं। उनसे स्वाभाविकता झलकती है। कुशान युगकी मूर्त्तियोंके मुख देखकर मंगोलियन (कारीगरी) का जो भ्रम होता है वह इस युगकी मूर्त्तियोंको देखकर नहीं होता। इस बातका ऐतिहासिक प्रमाणोंसे भी सम्बन्ध है क्योंकि गुप्त युग ही बौद्ध पौराणिकताके विकासका समय था अतः इस युगकी मूर्त्तियोंपर भी उसके विविधि चिन्ह पाये जाते हैं। (१०) गुप्त युगमें बोधिसत्वकी पूजाका बहुत

(९) Some of the Buddha Statues of this period, by their wonderful expression of calm repose and mild serenity, give a beautiful rendering of the Buddhist idea" Sarnath Catalogue p. 19.

(१०) यूची लोग मंगोलियासे ही आये थे। कुशान लोग यूचीलोगोंकी एक शाखा थे।

प्रचार हुआ, इसी कारण अवलोकितेश्वरकी अनेक नमूने
मूर्त्तियां सारनाथके म्युज़ियममें इकट्ठी की गयी हैं। अब ह
विशेष मूर्त्तियोंके वर्णनकी ओर झुकते हैं।

B (b) I—यह एक खड़ी बुद्ध मूर्त्ति है। दोनों पैर
बायां हाथ टूटा है। भिक्षुओंके उपयोगी "त्रिचीवरों" (
(काषाय वस्त्रों) मेंसे इस मूर्त्तिपर नीचे तो "अन्तरवास
(१२) और ऊपर "संघाटी" (१३) नामक वस्त्र वर्तमान
नीचेके भागका वस्त्र "काया बन्धन" वा कटि बन्धन का
पट्टा द्वारा बंधा है। मूर्त्तिका दाहिना हाथ उठा हु
देखनेसे यह मालूम होता है कि यह मूर्त्ति म
अभयदान दे रही है। मूर्त्तिके केश लहरीदार
दाहिनी ओर कुछ लटके हुए सजाये गये हैं। मस्त
ऊर्णा चिन्ह (भ्रूमण्डलके बीच सौभाग्यसूचक एक प्रका
चिन्ह) नहीं है। मूर्त्तिके मस्तकके पीछेका प्रभामण्डल
युगके शिल्प-वैचित्र्यका सूचक है। प्रभामण्डलके कि
अर्धचन्द्रके रूपमें खुदे हैं। ठीक इसी आकारके प्रभाम
लवाली और "अभय मुद्रा" में बठी हुई सारनाथकी
बुद्ध मूर्त्ति कलकत्तेके अजायब घरमें रखी है। उसका

---

(११) विनय पिठकाके अनुसार भिक्षुको "त्रिचीवर" मात्रही प
अधिकार है। त्रिचीवर-संघाटी, उत्तरासंग एवं अन्तरवास। उत्तरा
इसे इसके रंगके अनुसार काषायभी कहते हैं। परन्तु यह शब्द
पिठकामें नहीं है।

(१२) अन्तरवासक—नीचे पहरनेका वस्त्र।

(१३) संघाटी—ऊपर ओढ़नेका वस्त्र।

(२) शासक नवीन राज्यनियमोंको बना सकता है ।

भारतवर्षमें शासन-विज्ञानकी उन्नति तो चाणक्य पर्यन्त होती रही । राष्ट्रीय सिद्धान्तोंकी ओर भारतीय जनसमाज क्यों न झुका यह रहस्यसे परिपूर्ण है । वास्तविक बात तो यह है कि भारतमें शासक लोग पाश्चात्य देशोंके सदृश कभी भी स्वेच्छाचारी नहीं हुए । राज्यनियम तथा देशप्रथाकी व्यवस्था ब्राह्मणोंके हाथोंमें थी । वेद, स्मृति तथा सदाचार ही प्रामाणिक माने जाते थे । ब्राह्मणोंको राजा लोग मृत्युदण्ड या शारीरिक दण्ड कुछ भी न दे सकते थे । ब्रह्महत्या भयंकर पातक समझी जाती थी । विद्या--विज्ञानकी उन्नति तथा उसकी बागडोर ब्राह्मणोंके ही हाथोंमें थी । उन्होंने शासकवर्गसे कभी भी कष्ट न पाया था । यही कारण है कि शासकके निर्वाचनकी ओर उनका ध्यान ही न गया । राष्ट्रीय सिद्धान्तोंका उदय तथा राजनीतिक संगठनकी उत्तमता वहां ही होती है जहां जनता परिवर्त्तन चाहती है । भारतमें परिवर्त्तनसे लोग डरते थे । राजनीतिक उन्नतिका आधार ही लुप्त था । राजनीतिक उन्नति होती कहांसे ?

यूनानकी स्थिति भारतसे सर्वथा भिन्न थी । ब्राह्मण तथा पुरोहित लोग वहां बहुत शक्तिशाली न थे । प्रकृति अदम्य तथा क्रूर न होकर उदार थी । देश पर्वतप्राय था अतः साम्राज्यकी प्रवृत्ति प्रबल रूप धारण न कर सकी । राष्ट्रोंमें पारस्परिक सम्बन्ध तथा पारस्परिक व्यवहारके शिथिल होनेसे राष्ट्र नागरिक राष्ट्रसे जातीय राष्ट्र न बन सके । नगरोंमें स्वेच्छाचारी राजाओं तथा कुलीनोंका शुरू २

७

में राज्य था परन्तु देरतक उनका राज्य न ठहर सका इसका मुख्य कारण यह है कि एकतन्त्र स्वेच्छाचारी राज्य वा ही फलीभूत तथा दृढ़ हो सकता है जहां कि साम्राज्य संभावना हो और दूर दूरके प्रदेश सुगमतासे ही जोड़े सकें। पार्वतीय होनेसे यूनानी राष्ट्र नागरिक राष्ट्र बने रहे। वहां एकतन्त्र राज्य सफलतापूर्वक न चला, क्यों कि शासित तथा शासक एक दूसरेके अत्यन्त समीप थे शासितोंकी श्रद्धा शासकोंको भगवान्‌का अवतार भी लिए न बना सकी। इसका परिणाम बहुत उत्तम हुआ यूनानी राष्ट्रोंमें लोकतन्त्र राज्यका प्रचार हुआ। राजनीति परिवर्त्तनोंके साथ ही साथ राजनीतिक सिद्धान्त निकले यूनानी लोग राष्ट्रको दैवी संस्था समझते थे। उसकी रक्षा अपना तन मन धन स्वाहा करनेके लिए तैयार रहते पार्वतीय प्रदेश होनेसे वहां लोकतन्त्र राज्यपद्धति प्रफुल्लि हुई। प्रत्येक नागरिक राज्य-कार्यमें भाग लेने लगा। शनैः प्रत्येक स्वतन्त्र पुरुष नागरिक बनना तथा रा कार्योंका करना अपने जीवनका उद्देश्य बना बैठा। प्रतिनिधितन्त्र शासनपद्धतिका इसीलिए विकास न हुआ यह स्वेच्छाचारी राज्यका एक रूपान्तर समझा लगा। इसका परिणाम यह हुआ कि यूनानी राष्ट्र लो तन्त्र शासनपद्धतिको साम्राज्य संगठनके योग्य न बना और अन्तमें उनको सिकन्दरके एकतन्त्र राज्यमें संग होना पड़ा। पर सब होते हुए भी यूनानी नागरि राजनीतिको बहुत उन्नत किया। यदि उनमें निम्नलि दोष न होते तो पता नहीं वे राजनीतिमें कहांतक उन्नति क

(क) यूनानी लोग दासताको बुरा न समझते थे इससे उनके नागरिकोंमें असमानता थी। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता तथा राजनीतिक अधिकारपर इसका कुछ भी अच्छा प्रभाव पड़ा।

(ख) यूनानी राष्ट्र बहुत छोटे थे। प्रतिनिधितन्त्र शासनप्रणालीका विकास वहां इसलिए न हो सका।

(ग) वर्त्तमान कालकी व्यावसायिक तथा आर्थिक समस्याएं वहां मौजूद न थीं।

(घ) उपनिवेशों तथा अधीन प्रदेशोंकी राज्यप्रणालीका ज्ञान उनको न था। उपनिवेशोंके साथ भी उन्होंने अधीन प्रदेशोंके सदृश ही व्यवहार किया।

अफ़लातून तथा अरस्तूने यूनानके राजनीतिक सिद्धान्तों-को बहुत अच्छी तरहसे प्रगट किया है। रोमने यूनानियोंका ही अनुकरण किया। केवल शासन--विज्ञानको ही उसने नवीन रूप दिया। सदाचार तथा धर्म्मसे राज्यनियमका पृथक् करना उसीका काम है। व्यक्तिगत स्वतन्त्रताका उसने कुछ भी विचार न किया। राष्ट्रको ही उसने अपना सर्वस्व समझा। अपने अन्तिम दिनोंमें रोमने सार्वभौम राज्य स्थापित करनेका इरादा किया परन्तु पूर्णतया सफल न हो सका। पालीवियस तथा सिसरोने रोमन-राजनीतिको बहुत ही अच्छी तरह अपने ग्रन्थोंमें दिखाया है।

§ २८ *मध्यकालिक राष्ट्रीय सिद्धान्तः—*

मध्यकालमें राजनीतिक सिद्धान्तोंको उन्नत करनेमें दो बातोंने बड़ा भारी भाग लिया। वे निम्नलिखित हैं—

(१) ट्यूटन लोगः—ट्युटनलोग व्यक्तिगत स्वतन्त्रताके प्रेमी

थे । उन्होंने रोमन शासनप्रणालीमें वै
क्तिक स्वतंत्रताके तत्वको बढ़ाकर एकतं
शासनप्रणालीकी नींव यूरोपमें रखी। क्षत्रि
यतंत्र (फ्यूडलिज़्म) इसीका परिणाम था

(२) चर्चः—चर्चकी प्रधानतासे राजाओंकी राज-शक्ति
कम हो गयी और पोपका प्रभुत्व युरोप
बढ़ा ।

संवत् १४०७ (१३५० ई०)के बाद यूरोपने अपनी केंचु
बदली । व्यापारके बढ़नेसे सर्वसाधारणकी शांति त
समृद्धि बढ़ी । धर्मकी ओर लोगोंका झुकाव भी धीरे धी
घट गया । प्रतिनिधि-तंत्र-शासनप्रणालीकी नींव ज
जगह पर पड़ गयी । इतिहासका सहारा लेकर पुरा
विचारोंका खण्डन किया गया और नये नये सिद्
निकाले गये ।

§ २९. *अर्वाचीन राष्ट्रीय सिद्धान्तः—*

अर्वाचीन राजनीतिक सिद्धान्तोंपर विचार करनेके पूर्व
परिस्थितिका उल्लेख कर देना आवश्यक प्रतीत होता है, जि
अन्दर उन्होंने जन्म लिया । नवीन कालके
होते ही विचारकोंका ध्यान प्रोटेस्टैन्ट संशोधनोंकी
विशेष रूपसे गया । देखनेमें तो प्रोटेस्टैन्ट मत एक धार्
चीज़ थी परन्तु विकसित होनेपर यह राजनीतिक
निकली । महाशय कालिवनने राष्ट्रके सिद्धान्तोंपर वि
प्रभाव डाला । उस ज़मानेमें यह एक विकट

स्या था कि चर्चके साथ राष्ट्रका क्या सम्बन्ध हो। समाज तथा धर्मसंशोधकोंने बहुत विचारके बाद यही निर्णय किया कि चर्च तथा राष्ट्रका शक्ति पृथक् है और एक दूसरेसे स्वतन्त्र है यद्यपि दोनोंही दैवी हैं। धीरे धीरे राज्यनियम तथा दैवी नियममें भेद स्थापित किया गया और लोग दैवी नियमके अनुसार चलनेके लिए प्रेरित किये गये। इसका परिणाम यह हुआ कि राजा तथा प्रजामें भयंकर मतभेद खड़ा हो गया। राजा अपने आपको ईश्वरका प्रतिनिधि समझकर स्वेच्छाचारी होना चाहते थे और सर्वसाधारण राजाको दैवी नियमोंका भंग करनेवाला समझकर वैयक्तिक स्वतन्त्रताकी ओर झुक रहे थे।

सदियों तक राजा-प्रजामें झगड़ा चला। अन्तमें लोगोंने विजय प्राप्तकर प्रतिनिधि-तन्त्र-राज्य प्रचलित किया। पुराने दैवी सिद्धान्तके महत्वको नष्टकर सामाजिक प्रण-सिद्धान्त बड़े ज़ोरोंके साथ प्रगट हुआ। जनतामें राष्ट्रकी प्रभुत्वशक्ति मानी गयी और व्यक्ति तथा राष्ट्रके पारस्परिक सम्बन्ध समयानुकूल किये गये। रूसो, आस्टिन तथा मेन आदि लेखक ही अर्वाचीन सिद्धान्तोंके कर्णधार हैं। अब उनके सिद्धान्तोंकी पर्य्यालोचना करनेका यत्न किया जायगा।—

§ ३०. *सामाजिक प्रण-सिद्धान्तः—*

सामाजिक-प्रण-सिद्धान्तका महत्व बहुत ही अधिक है। इसीके द्वारा भिन्न २ लेखकोंने राष्ट्रके विकासको उचित रूपसे प्रगट किया। उसे निम्नलिखित तीन भागोंमें विभक्त करके इस सिद्धान्तपर प्रकाश डालनेका यत्न किया जायगा।

(क) सामाजिक-प्रण-सिद्धान्तका स्वरूप ।

(ख) सामाजिक-प्रण-सिद्धान्तका इतिहास ।

(ग) हाब्ज़, लाक तथा रूसोका सामाजिक प्रण-सिद्धान्त

(घ) सामाजिक-प्रण-सिद्धान्तकी पर्य्यालोचना ।

क. सामाजिक-प्रण-सिद्धान्तका स्वरूप—सामाजिक-प्रण-सिद्धान्तके स्वरूपको समझनेके लिये निम्नलिखित तीन बातोंको ध्यानमें रखना आवश्यक है ।

(१) नैसर्गिक दशा तथा नैसर्गिक नियम—सामाजिक-प्रण-सिद्धान्त माननेवालोंका ख्याल है कि कोई ज़माना था जब कि राज्यनामक संस्था विद्यमान न थी और न लोगोंमें राजनीतिक जीवन ही था। प्रकृति माताकी गोदमें पलते हुए प्राकृतिक नियमोंके अनुसार ही वे लोग चलते थे।

(२) राजनीतिक गुट्ट—चिरकाल तक लोग प्राकृतिक स्थितिमें न रह सके। या तो इसका यह कारण था कि वह जीवन इतना सुखमय था कि उसका देरतक जारी रहना असम्भव था अथवा वह जीवन स्वार्थ तथा मात्स्य न्याय रूपी भयंकर तूफानोंसे इतना दुःखमय था कि उसको राज्यरूपी छत्रकी शरण लेनी पड़ी। प्राकृतिक तथा नैसर्गिक नियमोंका स्थान राष्ट्रीय नियमोंने लिया और जनसमाज भिन्न २ राजनीतिक गुट्टोंमें परिवर्त्तित हो गया। राष्ट्रका उदय इन्हीं राजनीतिक गुट्टोंके साथ विशेष रूपसे जुड़ा हुआ है।

(३) शासक गुट्ट—राजनीतिक गुट्टके साथ ही शासक गुट्टने अपना रूप प्रगट किया। लोगोंने अपनी स्वतंत्रताको नियमबद्ध किया और बहुत-से अधिकार शासकोंको दिये। शासकों-की गुट्ट बन जानेपर उनके कार्यक्षेत्रका निश्चय किया गया।

यही संक्षेपतः सामाजिक-प्रण-सिद्धान्त है। भिन्न भिन्न समयोंमें विचारकोंने इसी सिद्धान्तके सहारे जनताकी प्रभुत्वशक्ति तथा नैसर्गिक नियमोंकी सत्ताको पुष्ट किया। यह सिद्धान्त कितना महत्वपूर्ण था, इस बातका ज्ञान इसके इतिहाससे ही हो सकता है। अब उसीपर प्रकाश डालनेका यत्न किया जायगा—

(ख) सामाजिक प्रण-सिद्धान्तका इतिहास—सामाजिक प्रण-सिद्धान्तका आविष्कार सबसे पहले भारतीयोंने ही किया। महर्षि व्यासने शान्तिपर्वमें लिखा है कि पृथु महाराजको सामाजिक प्रण-सिद्धान्तके अनुसार ही राज्य मिला। उसीके नामपर भूमिका नाम पृथ्वी पड़ा। संसार-के सबसे पहले शासक वही हैं। भिन्न २ पुराणोंने भी इसी बातको पुष्ट किया है। यूरोपमें सामाजिक-प्रण-सिद्धान्तका उदय यूनानियोंसे ही माना जाता है। प्रयत्न तथा ह्रासके दिनोंमें इसका विशेष रूपसे प्रचार हुआ। अफ़लातून तथा अरस्तूने भी इस सिद्धान्तका उल्लेख किया है, परन्तु उन्होंने इसको किसी प्रकारका विशेष महत्व नहीं दिया। इसका मुख्य कारण यह था कि वे सामाजिक तथा राजनीतिक बन्धनको नैसर्गिक समझते थे। अरस्तूका यह कहना कि

‘मनुष्य राजनीतिक जीव है’ इस बातका साक्षी है कि यूनानी लोग राज्य तथा राजनीतिक बन्धनको नैसर्गि समझते थे। कदाचित् व्यक्तिगत स्वतन्त्रताका प्रश्न उठनेका मुख्य कारण भी यही हो। यूनानी राष्ट्रोंके अधःप नके बाद यूनानी दार्शनिकोंका ध्यान राजनीति शासन ओर बहुत न गया। ऐपीक्यूरियन सम्प्रदायके विचारको यहां तक लिख दिया कि राज्योंके नियमोंके अनुसार प्रत्ये व्यक्ति इसी लिए चलता है कि उसका इसीमें विशेष स्वा हित होता है। राज्य विदेशी हो चाहे स्वदेशी हो स में 'यह बात लागू है"। रोमने राज्यनियमोंको उन्नत कि और लोगोंको गम्भीर विचार करनेका अवसर दिया। उ ज़मानेसे ईसाइयोंने स्वर्ण-युगकी कल्पना लोगोंके सा रखी और राष्ट्रको एक ‘बुराई’ बतलाया। यूरोपमें ज विद्याका विस्तार शुरू हुआ तब दैवी तथा मानुषी नियमों सर्वथा पृथक् २ रखनेका यत्न किया गया। नैसर्गिक नि मोंको आधार बनाकर सामाजिक-प्रण-सिद्धान्त उ किया गया।

सम्राट् तथा पोपमें जब (यूरोपके अन्दर) झगड़ा शु हुआ, पादरियोंने सामाजिक-प्रण-सिद्धान्तका सहारा ले यह दिखाना शुरू किया कि राजाको शासनका अधिक जनताने ही दिया है, उस ज़मानेके सारेके सारे विचार इस सिद्धान्तको सच समझते थे और जनतामें ही राष्ट्र प्रभुत्वशक्तिको मानते थे। सामाजिक-प्रणका स्वरूप क था-इसी पर प्रायः विवाद होता रहता था। कई लोग समझते थे कि जनताने सदाके लिए राजाको अपने अ

कार दे दिये और कई लोग यह समझते थे कि जनताने अच्छे शासनकी शर्तपर ही राजाको अपने अधिकार दे दिये हैं। यदि राजा अपने अधिकारोंका अनुचित प्रयोग न करे तो जनता उससे संपूर्ण अधिकार छीन सकती है। सतरहवीं सदीमें सामाजिक-प्रण-सिद्धान्तने नवीन रूप प्राप्त किया। इंग्लैण्डमें लाक तथा हाब्ज़ने और फ्रांसमें रूसोंने इस सिद्धान्तको इतना अधिक वैज्ञानिक तथा महत्वपूर्ण बना दिया कि उसपर विस्तृत रूपसे विचार करना अत्यन्त आवश्यक प्रतीत होता है।

(ग) हाब्ज़, लाक तथा रूसोका सामाजिक-प्रण-सिद्धान्त—**सत्रहवीं** तथा अठारहवीं सदीके राजनीतिक तथा सामाजिक परिवतनोंने भी यूरोपको हिला दिया। नये नये सिद्धान्तोंने यूरोपीय रंगमञ्चपर अपना रूप प्रकट किया। उन सिद्धान्तोंके कर्णधारोंमें हाब्ज़ सबसे पहिले उत्पन्न हुआ। उसके बाद लाक तथा रूसोंने उसकी नाव खेयी। अब क्रमशः एक २ पर प्रकाश डाला जायगा।

(१) हाब्ज़—हाब्ज़ चालस् द्वितीयका शिक्षक रह चुका था। सदाचार तथा दर्शनशास्त्र सम्बन्धी बहुतसे ग्रंथ उसने लिखे थे। उसने अपने लैवियाथान (संवत् १७०८, सन् १६५१) नामक ग्रन्थमें सामाजिक-प्रण-सिद्धांतको बड़ा ही विचित्र रूप दिया। उसका विचार था कि स्वार्थ ही मनुष्यका नैसर्गिक धर्म है। इन्द्रियोंको शांत तथा संतुष्ट करना ही उसका मुख्य उद्देश्य है। यदि वह दया दिखाता है

तो इसी लिए कि लोग उसकी अपरिमित शक्ति तथा उदारताकी प्रशंसा करें। प्रशंसा रूपी स्वार्थ ही उसकी दयाका मूल है। कभी कभी उसमें दया इस डरसे भी उत्पन्न होती है कि "कदाचित् इसी वेगको का मुझको भी किसी समयमें आ घेरे"। मनुष्य एक प्रकारका सामाजिक जीव है जो स्वार्थसे ही चलता है। इस लिए मात्स्य न्याय ही नैसर्गिक या प्राकृतिक नियम है। मात्स्य न्यायसे भयभीत हो कर ही लोगोंने राजाकी शरण ली। राजा लोगोंके सामाजिक प्रणका अंग न था। जनताने राजाकी शरणमें अपने आपको पारस्परिक स्वार्थके घातक प्रभावोंसे बचाया। यदि राजा कुछ अधिक अधिकारोंको भी काममें लाता है तो वह ला सकता है। जनताके साथ उसने ऐसा न करनेका प्रण नहीं किया। हाब्ज़ने इस सिद्धान्तके द्वारा स्टुअरि राजाओंके स्वेच्छाचारको पुष्ट किया।

(२) जॉन लाकः—जॉन् लाकके विचार हाब्ज़से सर्वथा भिन्न हैं। लाक मात्स्य न्यायको नैसर्गिक नियम नहीं समझता था। उसका विचार था कि नैसर्गिक नियम इतने विकट हैं कि उनका जानना बहुत कठिन है। इसी कठिनाईसे उसको अपनी स्वतन्त्रता छोड़नी

पड़ी । उन्होंने जिसको राजा चुना, उसको नैसर्गिक नियमोंको पालन करनेके लिये भी बाधित किया । राजा उनके सामाजिक प्रणका अंग था यदि राजा उस प्रणका भंग करे तो वह दण्डनीय है । लाकने इस सिद्धान्तके द्वारा परिमित एकतन्त्र राज्यको पुष्ट किया सं० १७४५ (सन् १६८८) की राज्य क्रान्तिमें लाकके सिद्धान्तने बड़ा काम किया।

(३) रूसो—अठारहवीं सदीमें रूसोका सामाजिक प्रण-सिद्धान्त बहुत ही अधिक प्रचलित था । उसने सन् १७६२ में 'सामाजिक प्रण' नामक ग्रन्थ लिखा । शुरूमें पदार्थोंकी अधिकतासे लोग सुखी थे । ज्यों २ उनकी जनसंख्या बढ़ी, पदार्थोंकी कमीका प्रश्न विकटरूप धारण करने लगा । लोगोंमें चोरी आदिकी आदतें उत्पन्न हुईं । लाचार होकर लोगोंने अपने अपने अधिकारोंको एक समितिको सुपुर्द किया । राज्य सामाजिक प्रणका अंग न था । अन्तिम निर्णय लोगोंने अपने ही हाथोंमें रखा । लोकसमितिके पास ही प्रभुत्वशक्ति थी । प्रतिनिधिको भी लोग बुरा समझते थे । इस सिद्धान्तने अठारहवीं सदीमें यूरोपीय जनताको राज्यक्रान्ति करनेके लिए उत्साहित किया । राष्ट्र तथा राज्यमें इसी सिद्धान्तके द्वारा भेद स्थापित हुआ ।

अमेरिकाने राज्यक्रांति करते समय इसी सिद्धान्तका अवलम्बन किया । जैफर्सन तथा मैडीसनके लेखोंमें रूसोके सामाजिक प्रण-सिद्धान्तकी छाप अब तक देखी जा सकती है ।

(घ) सामाजिक प्रणसिद्धान्तकी पर्य्यालोचना—अठारहवीं सदी में डेविड ह्यूमने सबसे पहिले इस सिद्धान्तका खण्डन किया । उसके बाद इसपर आक्रमण होते ही रहे । जैरेमी बैन्थमने तो यहां तक कह दिया कि "मैं सामाजिक प्रणको सदाके लिये नमस्कार करता हूं । अच्छा है कि वही लोग इसमें अपना समय वितावें जिनको इसकी जरूरत हो" । महाशय ब्लुन्ट्श्ली इस सिद्धान्तको बहुत ही खतरनाक समझते हैं चूंकि इसके अनुसार राष्ट्र व्यक्तिगतस्वार्थका परिणाम सिद्ध हो जाता है ।

(१) इस सिद्धान्तका सबसे पहिला बड़ा दोष यह है कि यह ऐतिहासिक नहीं है । एक भी ऐतिहासिक घटना ऐसी नहीं है जो यह प्रगट करे कि असंगठित तथा असामाजिक जीवन व्यतीत करने वाले लोग सामाजिक प्रणके द्वारा राज्य तथा राष्ट्रकी कल्पना करनेमें समर्थ हुए हों । असभ्योंके जीवनकी छानबीन की गयी । वहां पर भी ऐसा कोई दृष्टान्त नहीं उपलब्ध हुआ जिसके द्वारा सामाजिक प्रण-सिद्धान्त सत्य सिद्ध

किया जा सकता। इसमें सन्देह नहीं है कि राजनीतिक जीवनमें पड़े लोग जब राष्ट्रसे पृथक् होकर किसी जंगलमें उपनिवेश बसाते हैं, तब वे सामाजिक प्रणके द्वारा राज्यका निर्माण करते हैं। मेफ्लागरके धूरिटन लोगोंने ऐसा ही किया था। जहाजमें बैठे हुए १६२० की ११ वीं नवम्बरको उन्होंने आपसमें एक प्रण किया कि हम लोग आगे चल कर राजनीतिक जीवन व्यतीत करेंगे। यह इसलिये कि हम लोग शान्ति तथा सुखसे जीवन व्यतीत कर सकें। सन् १६३८ में न्यूहैवनके अन्दर जमींदार समितिने और १६३६ में अमरीकन संगठनने इसी प्रकारके प्रणोंके द्वारा राजनीतिक जीवन व्यतीत करना शुरू किया। यदि सामाजिक प्रण--सिद्धान्तका यह तात्पर्य्य होता कि जरूरत पड़नेपर लोग आपसमें मिलकर विशेष प्रकारके राज्यकी स्थापना कर सकते हैं तब तो इसकी सत्यताका अपलाप करना असंभव हो हो जाता। हाबूज, लाक तथा रूसोने जो कुछ सामाजिक प्रणका मतलब लिया वह इससे सवथा भिन्न है यही कारण है कि उनके सामाजिक प्रणको हमने कल्पित तथा असत्य प्रगट किया। इतिहासके द्वारा उसकी सचाईको पुष्ट करना कठिन है।

(२) दूसरी बात यह है कि उन्हींका सामाजिक प्र
सारी जनताको प्रणके अनुसार चला सक
है जिनका राजनीतिक जीवन हो। सा
जिक प्रणसिद्धान्त वाले पूर्वकालीन जनत
राजनीतिक जीवनका अभाव मानते है
उस हालतमें उस प्राचीन प्रणका ही क
रहा ? वह प्रण प्रामाणिक ही कैसे
सकता है ?

(३) सामाजिक प्रण--सिद्धान्त विवेकपूर्ण भी नहीं
व्यक्तियोंका राष्ट्रके साथ सम्बन्ध कृ
नहीं है अपितु स्वाभाविक है मनुष्य रा
हा उत्पन्न होता है। राष्ट्रके नियमोंका पा
करना उसके लिए अत्यन्त आवश्यक
इस हालतमें सामाजिक प्रण--सिद्धान्त
विवेकपूर्ण प्रगट किया जा सकता है, क्यों
वह तो राष्ट्र तथा व्यक्तिके पारस्परिक स
न्धको कृत्रिम या सामाजिक प्रणका प
णाम प्रगट करता है। प्राचीन पुरुषोंने
कोई प्रण किया है तो उसको हम
मानें। वे लोग लाखों ग़लतियां कर
हैं, उन गलतियोंपर हम क्यों चलें।
हमारे पूर्वज सतीकी रीतिके भक्त हों
पतिके मरने पर जीते जी स्त्रियोंको आ
जला देते हों तो क्या हम भी उनका

(४)

§ ३
राष्ट्रको
त्मिक सि

करण करें ? सारांश यह है कि प्राचीन पुरुषोंका सामाजिक प्रण हमको किसी तरहसे उसके अनुसार चलनेके लिये बाधित नहीं कर सकता । यही कारण है कि सामाजिक प्रण--सिद्धान्त विवेकपूर्ण नहीं कहा जा सकता ।

(४) सामाजिक प्रण--सिद्धान्तके आधारमें 'नैसर्गिक नियम' तथा नैसर्गिक अधिकारकी कल्पना काम कर रही है। हम आगे चल कर यह दिखावेंगे कि नैसर्गिक नियम तथा नैसर्गिक अधिकार कोई वस्तु नहीं यदि ये मान भी लिये जायं तो नैसर्गिक अधिकारका परिणाम प्रतिदिनका झगड़ा और अन्तमें शक्ति-सिद्धान्तकी मुख्य । जो ताक़त वाला होगा वही दुर्बलोंको अपने क़ाबूमें कर लेगा और उनपर हुकूमत करेगा । सारांश यह है कि स्वतन्त्रताका सम्बन्ध नियन्त्रणके साथ है। राज्यमें ही सब व्यक्ति स्वतन्त्रताका अनुभव कर सकते हैं। जहां निरंकुश स्वतन्त्रता हो वहां किसीकी भी स्वतन्त्रता सुरक्षित नहीं रह सकती ।

§३१ सात्मिक या सेन्द्रिय सिद्धान्त ।

राष्ट्रको एक चेतन शरीर मानकर सेन्द्रिय या सात्मिक सिद्धान्त राष्ट्र तथा व्यक्तिके पारस्परिक विरोधको

मिटानेका यत्न करता है । इस सिद्धान्तके पक्षपोषकों का ख्याल है कि 'मनुष्य एक राजनीतिक जीव है'। उसकी स्वाभाविक गतिका परिणाम 'राष्ट्र' है। मनुष्योंके सङ्घ हो राष्ट्र उत्पन्न होते हैं। फलते फूलते हैं और नष्ट हो जाते हैं। राष्ट्रके अंग भिन्न भिन्न हैं जो कि भिन्न २ कामोंको करते हैं। राष्ट्र सोचता है, अनुभव करता है। राष्ट्र मनुष्यों की विराट प्रतिभा है।

यूनानी लोग राष्ट्रको सात्मिक मानते थे। मध्यकालमें जर्मन दार्शनिकों तथा राजनीतिज्ञोंने राष्ट्रके सात्मिकवाद को विशेष तौरपर शुरू किया। आंग्लविचारक प्रायः इस सिद्धान्तके विरुद्ध हैं। विरोधमें वे लोग निम्नलि खित युक्तियां देते हैं—

(क) व्यक्ति चेतन है परन्तु राष्ट्र नहीं। राष्ट्रकी शक्ति दिन पर दिन कम होती जाती है और उसके अंगभूत व्यक्ति योंकी शक्ति दिनपर दिन बढ़ती जाती है। यदि राष्ट्र चेतन होता तो यह बात न होती। राष्ट्र शरीरा शक्तिके बढ़ने साथ ही उसके अंगभूत व्यक्तियोंका शक्ति बढ़ती। परन्तु यूरोपका इतिहास इसका उलटा सिद्ध कर रहा है। यह कारण है कि राष्ट्र चेतन नहीं माना जा सकता।

(ख) चेतन मातापिताओंसे ही चेतन उत्पन्न होते हैं, परन्तु राष्ट्र किसी अन्य राष्ट्रके सम्बन्धसे नहीं उत्पन्न होता। राष्ट्रका विकास जनताके संगठन पर निर्भर करता है। इस हालतमें राष्ट्रको चेतन मानना ग़लत करना होगा।

(ग) चेतनोंका विकास प्रकृतिसे सम्बद्ध है। मनु

उसमें आधारभूत परिवर्तन नहीं कर सकता है। राष्ट्रोंके कार्य्योंको बदलना और उनमें संशोधन तथा परिवर्तन करना व्यक्तियोंके हाथमें है। इसी लिए राष्ट्र चेतन तथा शरीरी नहीं माना जा सकता है।

असली बात तो यह है कि राष्ट्रको शरीरी माननेसे बड़ी सुगमतासे ही बहुतसी समस्याएँ हल की जा सकती हैं। वस्तुतः चाहे राष्ट्र शरीरी न हो परन्तु चेतन मनुष्यका साधन होनेसे उसके कार्य्य ध्यान देनेके योग्य हैं। राष्ट्रको क्या करना चाहिये--यह प्रश्न प्रायः उठता है। गम्भीर विचार करें तो पता लग सकता है कि यह प्रश्न चेतनोंके मामलेमें हो किया जा सकता है। महाशय स्पेन्सरका विचार है कि राष्ट्रका मुख्य कर्त्तव्य पालन तथा रक्षण हो है। यह विचार भी तभी माना जा सकता है जब कि राष्ट्रको चेतन मानकर काम किया जाय। राष्ट्रका आदर्श क्या है? राष्ट्रको व्यक्तियोंके मामलेमें कहां तक हस्तक्षेप करना चाहिये? राष्ट्रको व्यक्तियोंकी स्वतन्त्रताका किस सीमातक ख्याल रखना चाहिये? इत्यादि प्रश्न ही इस बातके साक्षी हैं कि राष्ट्रका सात्मिक तथा सेन्द्रिय सिद्धान्त कितना महत्वपूर्ण तथा आवश्यक हैं

§ ३२. *दैवी सिद्धान्त*

राष्ट्रके दैवी सिद्धान्तको अब कोई भी सत्य नहीं समझता है। एकतन्त्र स्वेच्छाचारी राज्योंके ख़ातमेके साथ इसका भी ख़ातमा हो गया। निस्सन्देह यह सिद्धान्त बहुत ही पुराना था। बहुतोंका तो यह विश्वास है कि राष्ट्रके जन्मके

साथही इस सिद्धान्तका जन्म है । जिस ज़मानेमें धर्म राज्यनियमोंमें कोई भेद न समझा जाता था, उस ज़मा दैवी सिद्धान्तका विशेष प्रचार था । राष्ट्र तथा राजा ई के पुत्र हैं यही विचार दैवी सिद्धान्तका आधार है । य लोगोंका तो यहांतक ख्याल था कि ईश्वर राज्यमें विशेष पर भाग लेता है । यूनानी तथा रोमन लोग भी इस सि न्तकी छापसे बचे न थे । वे भी राष्ट्र तथा राज्यका उद्भव समझते थे । कार्य्यक्षेत्रमें वे इस सिद्धान्तसे कुछ भी न लेते थे । मध्यकालमें जब चर्चकी प्रधानता शुरू हुई सिद्धान्तने भी पूरा ज़ोर पकड़ा । लोगोंमें यह तो वि पुराने समयसे चला आया था कि ईश्वर ही शासनकी देता है । पोपकी शक्तिके बढ़नेपर इस विश्वासने विवादको खड़ा किया कि ईश्वर प्रत्यक्ष तौरपर शास शक्ति पोपको देता है या राजाको ? धर्म परिवर्तनके जनता तथा राजाके बीच यही विवाद खड़ा हुआ । राज ने अपने स्वेच्छाचारित्वको पुष्ट करनेके लिए दैवी सि न्तका सहारा लिया और जनताके उठते हुए राजनी जीवनको नष्ट करना चाहा । सर् राबर्ट फिल्मर् तथा प्रथमने अपने लेखोंके द्वारा दैवी सिद्धान्तको पुष्ट और राजा तथा राजशक्तिको ईश्वरीय प्रगट किया । उ ख्याल था कि भगवान्ने शुरू २ में आदमको ही शा की शक्ति दी । उसीसे यूरोपके राजाओंने इस श प्राप्त किया ।

भारतवर्षमें भी दैवी सिद्धान्तका किसी न किसी में अवश्यही प्रचार था । मनुस्मृति आदि ग्रन्थोंमें रा

देवताओंके अंशसे उत्पन्न हुआ प्रगट करना इसी सिद्धान्तका परिणाम है। आजकल दैवी सिद्धान्तपर किसीकी भी श्रद्धा नहीं है। प्राचीनकालमें असभ्य जंगली लोग नियन्त्रण तथा आज्ञापालनको कुछ भी न समझते थे। दैवी सिद्धान्तने ईश्वरको बीचमें डालकर उनको नियन्त्रण तथा आज्ञापालनके लिए प्रेरित किया। परन्तु आजकलकी जनता इस सिद्धान्तको किसी प्रकारका भी महत्व नहीं दे सकती। इससे किसी प्रकारका हित होना भी तो संभव नहीं है।

§ २३. शक्ति सिद्धान्त

कोई समय था जब कि शक्तिसिद्धान्तने भी जनसमाजमें अपना रंग जमाया। शक्तिसिद्धान्तका जो कुछ ऐतिहासिक महत्व है वह तो भुलाया ही नहीं जा सकता। सबसे बड़ी बात तो यह है कि राज्यको न्याययुक्त या अन्याययुक्त सिद्ध करनेमें भी इसका बड़ा भारी भाग है। शक्तिसिद्धान्तके अनुसार राज्यका उद्भव अत्याचार, स्वार्थ तथा युद्धसे हुआ है। शक्तिशाली लोगोंने दुर्बल लोगोंको और शक्तिशाली जातियोंने दुर्बल जातियोंको दबाकर प्रभुत्व प्राप्त किया। छोटे छोटे राष्ट्रोंका बड़े बड़े राष्ट्रोंपर प्रभुत्व और किसानोंपर ताल्लुकेदारोंका अत्याचारपूर्ण शासन इसीका फल है। बड़े बड़े ताल्लुकेदार कैसे उत्पन्न हुए? पारस्परिक युद्धमें जो जाति प्रबल हुई उसने दूसरी जातिके लोगोंको दास बना दिया और उनकी ज़मीनों तथा लोगोंको अपने छोटे सेनानायकोंके सुपुर्द कर दिया। ये ही छोटे छोटे सेनानायक कालान्तरमें ताल्लुकेदारके

नामसे प्रसिद्ध हुए। ताल्लुकेदारोंके सदृश ही वि जातिके मुखियाने राजा या सम्राट् पद ग्रहण किया। शुरूमें उसने विजित जातिके लोगोंपर कठोर शासन कि और अन्तमें उनको अपने साथ मिलाकर और उ सान्त्वना देकर स्वजातिके लोगोंको भी कठोर जंजी जकड़ दिया। शक्तिसिद्धान्तके अनुसार सम्राट् तथा ताल्लुकेदार इसी प्रकार उत्पन्न हुए। मध्यक पादरियोंने जनताको राजाओंके विरुद्ध भड़कानेके इस सिद्धान्तका सहारा लिया। संवत् ११३७ (सन् ई०) में सप्तम ग्रेगरीने लिखा था कि—"यह बात वि छिपी है कि राजा तथा ताल्लुकेदारोंका उद्भव उन लो सम्बद्ध है जिन्होंने ईश्वरको भुलाकर अभिमान, वि घात और कतलेआमके द्वारा अपने ही मनुष्योंपर श करनेका यत्न किया।"

आजकल भी शक्तिसिद्धान्तको बहुतसे वि सत्य समझते हैं। हर्बर्ट स्पेन्सरने अपने आदिम लिखा है कि राज्य पाप तथा अधर्मका परिणाम है तक उनपर उनके पापमय उद्भवकी छाया बनी हु अराजकवादी लोग व्यक्तिगत स्वतन्त्रताके विशेष भ उन्होंने भी शक्तिसिद्धान्तके सहारे राज्योंपर कालिमा पोती है। आजकल पूंजीपतियों तथा का घोर विरोध है। साम्यवादियोंने पूंजीपतियों तथा निक राज्योंको पापी प्रगट करनेके लिए इसी सिद्धा सहारा लिया है। कार्ल मार्क्स, एन्जल्ज, तथा जर्मन वादियोंका कथन है कि राष्ट्र दुर्बलोंकी दुर्बलतासे

उठानेके उद्देश्यसे ही उत्पन्न हुए हैं। पूंजीपति तथा धनाढ्य लोग राष्ट्रकी कृपासे ही मेहनतियोंकी मेहनतका मुफ्तमें ही फल उठा रहे हैं। बेचारे गरीब लोग दिनभर मेहनत करते हैं और अमीर लोग उस मेहनतके बलपर भोग-विलासमें अपना जीवन व्यतीत करते हैं। पूंजीपतियोंके खातिर नयी नयी लड़ाइयां लड़ी जाती हैं और युद्धोंमें बेचारे मेहनती कटवाये जाते हैं। कोई ऐसा अत्याचार नहीं बचा जो कि पूंजीपतियोंके निमित्त राष्ट्रोंने न किया हो। अफ्रीका तथा अमरीकाके पुराने निवासी बड़ी क्रूरतासे मारे गये। पेरू तथा मेक्सिको निवासियोंकी खानें लूटी गयीं। भारतका व्यापार-व्यवसाय नष्ट किया गया। असल बात तो यह है कि आजकल शक्तिका ही राज्य है। शक्तिशाली लोग जो करें वही ठीक है।

शक्तिसिद्धान्तके महत्वको देखकर ही महाशय नैलिनकने कहा था कि व्यक्तियोंको शक्तिशालीके सम्मुख सिर झुकाना ही चाहिये। इससे बचनेका उसके पास और तरीका ही क्या है? यहींपर बस नहीं, महाशय ब्लुन्ट्शली जैसे राजनीतिज्ञने यह लिख दिया कि "शक्तिसिद्धान्तमें बहुत कुछ सचाई है। "शक्ति" राष्ट्रका एक मुख्य साधन है। सामाजिक प्रण सिद्धान्तको मानकर यदि व्यक्तियोंकी इच्छाओंपर राष्ट्रका आधार रखा जाय तो राष्ट्र तो एक प्रकारसे निःशक्त तथा निर्जीव लोथ ही हो जायगा।" जो कुछ भी हो, हमारे विचारमें शक्तिसिद्धान्त ठीक नहीं है। जो चीज़ शक्तिके द्वारा उत्पन्न होती है वह शक्तिके नाशके साथही साथ नष्ट भी हो जाती है। यदि राष्ट्रका उदय शक्तिसिद्धान्तपर

आश्रित है तो फलतः शक्ति सिद्धान्तका परित्याग करते। राष्ट्र नष्ट भी हो जायगा। परन्तु यह कौन मान सकता है!

लडविवान हालटूने शक्तिसिद्धान्तको एक नये ढं पर ही पेश किया है। आपका कथन है 'बली तथा शक्ति शाली ही राज्य करता है। वह अपनी शक्तिका प्रयोग अत्या चारमें न कर संरक्षणमें ही करता है। दुर्बलोंका कर्त्तव्य है वे बलियोंका सहारा लेकर अपना जीवन बसर करें। आज्ञा पालन दुर्बलोंका और संरक्षण करना बलियोंका काम है माता पिता, भाई बहिन, बालबच्चोंका पारस्परिक सम्ब इसी सिद्धान्तपर आश्रित है। स्त्री पतिका, बालक मात पिताका कहना मानते हैं। इसके बदले वे संरक्षण त सुख प्राप्त करते हैं। राजा तथा प्रजाका सम्बन्ध भी इ प्रकारका होना चाहिये। यही तो संसारका नियम है सामाजिक प्रणपर संसारके सम्बन्ध स्थिर नहीं है। सू हमको गरमी देता है। क्यों? क्या उसने हमसे ठेका कि है?" इस सिद्धान्तको हाल्टने एकतन्त्र राज्यके पुष्ट करने लगाया। वास्तविक बात तो यह है कि हालटके मतसे सर्व विपरीत यह भी सिद्ध किया जा सकता है कि 'बलियोंने कुछ अब तक किया वह दुर्बलोंको सतानेके लिए ही किया है संसारका नियम भी यही है। बिल्ली चूहेको और कु बिल्लीको खाता है। मात्स्यन्याय ही संसारका संचालक है सारांश यह है कि शक्तिसिद्धान्त चाहे वह हाल्टका और चाहे वह कार्लमार्क्सका हो, राष्ट्रके उदयको प्रगट कर में सर्वथा असमर्थ है।

§३४. सामयिक विचार

ऐतिहासिक सम्प्रदायको प्रबलताका ही यह परिणाम है कि आजकल राजनीतिक राष्ट्रको दैवी संस्था नहीं समझते हैं। रूसोका सामाजिक-प्रण-सिद्धान्त भी अब प्रामाणिक नहीं माना जाता है। वास्तविक बात तो यह है कि राष्ट्र भी प्राकृतिक तथा सामाजिक परिवर्तनोंका ही परिणाम है। अति प्राचीन कालमें लोग कारणवश किसी एक स्थानपर बस गये। देखते देखते ही अन्य सामाजिक आचार-व्यवहारके विकासके साथही साथ उनमें राष्ट्रका भी विकास हुआ। कोई भी एक ऐसा सिद्धान्त नहीं है जो उस समयकी संपूर्ण परिस्थितियोंका ख़ाका खींच सके। एक ही भूमिपर बसते हुए तथा एकही हवामें जीवन बसर करते हुए प्राचीन पुरुषोंमें यदि पारस्परिक सम्मिलन दृढ़ हो जाय तो आश्चर्य करना वृथा है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि उनका जीवन भयका जीवन था। देवों तथा असुरोंका संग्राम कई सौ वर्षों तक चला। इसी संग्रामके बीचमें असुरोंने राजाको निर्वाचित किया क्योंकि बिना राजाके संग्राममें विजय प्राप्त करना सुगम काम न था। इसी प्रकार पृथु महाराजको ब्राह्मणोंने राजगद्दीपर बैठाया, परन्तु उनसे कई शर्तें मंजूर करवा लीं। पृथु महाराजको सामाजिक प्रणसिद्धान्तके अनुसार ही राज्य मिला। इतिहासमें ऐसा भी समय आ चुका है जब कि राजा देवताके सदृश पूजा जाने लगा था। राजाके 'दैवी सिद्धान्त' का रहस्य इसीमें छिपा है। ये ही सारीकी सारी बातें अति प्राचीन कालमें

भिन्न २ समाजोंमें भिन्न २ रूपसे विद्यमान थीं। इस प्रका किसी एक सिद्धान्तके द्वारा राष्ट्रके विकासको दिखा सुगम काम नहीं है। इसमें सन्देह भी नहीं है कि लोगों आज्ञापालनका भाव उत्पन्न हो चुका था, उसके बाद उनमें राष्ट्रका विकास हुआ क्योंकि शासनका आध आज्ञापालन ही है। आज्ञापालनकी आदत जिन मनुष्यों नहीं है उनमें राष्ट्रका विकास अबतक नहीं हुआ है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि 'राष्ट्रका विकास' भी सामाजि परिस्थितियोंका एक अंश है। एक स्वार्थ, भौगोलिक एका सहनिवास, समान जात, समान भय आदि अनेक कारण मि कर मनुष्योंको संगठित करते हैं। ये ही राष्ट्रके उद्भवके मो मोटे कारण हैं।

राष्ट्र एक प्रकारका राजनीतिक जीव है। इसकी इ ही राज्यनियम है। अन्य राष्ट्रोंके साथ सम्बन्ध स्था करना, राज्य रूपी संस्थाको बनाना, भिन्न २ विभागोंकी क्तियोंको नियत करना, भिन्न २ व्यक्तियोंको अधिकार दे नागरिकोंकी स्वतन्त्रताका ख्याल रखना आदि काम इस हैं। इसीसे यह भी स्पष्ट है कि राष्ट्रकी प्रभुत्वशक्ति राष्ट्रका जीवन है। इसी प्रभुत्वशक्तिके सहारे यह सा सारे काम करता है। यदि राष्ट्रके पास प्रभुत्वशक्ति हो तो व्यक्तियोंका नियमन तथा परिपालन असम्भ हो जाय।

राष्ट्रकी प्रभुत्वशक्तिका अपरिमित, निर्बाध तथा स्वतन्त्र होना आवश्यक है। कभी कभी राष्ट्रोंपर अन्य रा का शासन तथा प्रभुत्व होजाता है। ऐसे पराधीन राष्ट्रों

प्रभुत्वशक्ति दूसरे राष्ट्रोंके हाथोंमें चली जाती है। बहुतसे विचारक तो प्रभुत्वशक्तिको अपरिमित, निर्बाध तथा स्वतन्त्र न मानकर सापेक्षिक मानते हैं। परन्तु एक बात है जिसे यहांपर न भूलना चाहिये। राष्ट्रकी स्वतन्त्रता तथा राष्ट्रकी अन्तरीय प्रभुत्वशक्ति--ये दोनों परस्पर भिन्न हैं। राष्ट्रकी स्वतन्त्रताका आधार अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धोंपर है। यह अपरिमित न होकर सापेक्षिक होती है। इसमें सन्देह भी नहीं है कि कानूनी तौरपर प्रत्येक राष्ट्र स्वतन्त्र है और वह जो चाहे करे, जिस प्रकारकी सन्धि करना चाहे करे कोई उसको मना नहीं कर सकता। उसे अपने जीवनको सामने रखते हुए अन्य राष्ट्रोंका और सन्धियाँ तथा युद्ध करते हुए अन्य राष्ट्रोंकी शक्तिका ध्यान रखना ही पड़ता है। इस प्रकार उसकी स्वतन्त्रता सापेक्षिक है। परन्तु उसकी प्रभुत्वशक्तिके साथ यह बात नहीं है। वह तो अपरिमित, निर्बाध तथा पूर्ण स्वतन्त्र होती है।

राष्ट्रके क्या क्या कार्य्य हैं इसपर बड़ा मतभेद है। बहुतोंका विचार है कि संरक्षण तथा नियमनके सिवाय राष्ट्रका कोईभी अन्य काम नहीं है। इसके विपरीत कुछ लोग व्यक्तियोंके प्रत्येक काममें राष्ट्रका हस्तक्षेप उचित बताते हैं। वे इसमें कुछ भी हानि नहीं देखते। प्रसन्नताकी बात है कि आजकलके राजनीतिज्ञ मध्यममार्ग परही चल रहे हैं। उनका ख्याल है कि स्पर्द्धासे बहुत काम अच्छे ढंगपर होते हैं, अतः बहुतसी बातोंमें व्यक्तियोंको पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिये। राज्य भी राष्ट्रकी उन्नतिका एक उचित तथा हितकर साधन है। इस हालतमें उसको उन २ स्थानोंमें

अवश्यही हस्तक्षेप करना चाहिये जहां हस्तक्षेप करनेसे राष्ट्रका अधिकसे अधिक भला संभव हो।

असल बात तो यह है कि किसी भी एक सिद्धान्तका अवलम्बन करना सुगम काम नहीं है। हमलोग अपने समयके ही प्रतिविम्ब हैं। जो हम आज ठीक समझते हैं हो सकता है कि समाजमें ऐसे भयंकर परिवर्तन आजायं कि अगले लोग उसको निरर्थक तथा भ्रममूलक समझने लगें। आजकल राष्ट्र सम्बन्धी जो २ सिद्धान्त प्रचलित हैं अब उनके दर्शानेका यत्न किया जायगा और उनमें जितनी २ सत्यता है इसपर भी प्रकाश डाला जायगा।

§ ३५ राष्ट्रका विकाससिद्धान्त

अभी लिखा जा चुका है कि ऐतिहासिक सम्प्रदायके लोग राष्ट्रके विकासको सामाजिक तथा प्राकृतिक परिवर्तनोंका ही एक भाग समझते हैं। उनका ख्याल है कि राष्ट्रके विकासका कोई एक कारण नहीं है। राष्ट्र आविष्कार नहीं हैं, अपितु राष्ट्र सामाजिक परिवर्तनोंका परिणाम है। शनैः शनैः होते हुए परिवर्तन तथा सुधारोंसे ही राष्ट्र विकसित हुआ है। प्रोफ़ेसर वर्गसने ठीक कहा है कि "राष्ट्र ऐतिहासिक परिणाम है।" इस सिद्धान्तका यह अर्थ है कि राष्ट्र असभ्य ज़मानेके अपरिपूर्ण संगठन सम्बन्धी परिवर्तनोंमेंसे-जिनका कि झुकाव परिपूर्ण सार्वभौम संगठनकी ओर था—विकसित हुआ है। मनुष्यकी आध्यात्मिक तथा आर्थिक उन्नतिको पूर्ण मानकर राष्ट्रके विकासका पता लगाना कठिन है। पशुओंमें प्रकृतिजन्य अविवेकपूर्वक संगठन विद्यमान है। किसी ज़मानेमें मनुष्यों

की भी यही स्थिति थी। धीरेधीरे मनुष्योंने प्रकृतिजन्य संगठनके कारणोंका पता लगाना शुरू किया और अपने परिमित विवेक तथा ज्ञानसे किसी हद्द तक उसको उन्नत भी किया। राष्ट्रका उदय तो अन्धकारमें छिपा है। मनुष्यके विकासके साथही उसके उदयका सूत्र बंधा हुआ है। कोई भी राजनीतिक सिद्धान्त उस सूत्रका पता नहीं लगा सकता। जो कुछ कहा जा सकता है वह यही है कि राष्ट्रका उदय ऐतिहासिक विकासके साथ सम्बद्ध है। कोई ज़माना था जब कि राजनीतिज्ञ लोग राष्ट्रका उत्पत्तिस्थान परिवार या कुलको समझते थे, परन्तु अब इस सिद्धान्तपर लोगोंकी श्रद्धा नहीं है। इसका मुख्य कारण यह है।

§ ३६ *राष्ट्रका पारिवारिक सिद्धान्त*

प्राचीनसे प्राचीन समाज-संगठनका पता लगानेके लिए बहुत खोज की जा चुकी है, परन्तु विशेष सफलता न हुई। संसारके सभी मनुष्य किसी न किसी प्रकार संगठित ही हैं। अति प्राचीन संगठन क्या है इसका जानना कुछ २ असम्भव है। इतिहासद्वारा हमको जो कुछ पता मिलता है वह यही है कि अति प्राचीन कालमें लोग भिन्न २ परिवारोंमें विभक्त थे। कुल तथा जातिका भाव उनमें बहुतही अधिक प्रबल था। कुलपतिकी आज्ञाके अनुसार चलना प्रत्येक व्यक्ति अपना कर्तव्य समझता था। परिवारके सभ्योंके झगड़ोंको वही निपटाता था।

कुलपति तथा परिवारमें प्राचीन समाजको संगठित देखकर राजनीतिज्ञोंका विश्वास है कि राष्ट्रका विकास भी

इसी स्थानपर हुआ । लोगोंने पारिवारिक संगठनको उन्नत कर राष्ट्रीय संगठनको जन्म दिया । इस विचारका एक मुख्य गुण यह है कि इससे राष्ट्रका विकास अनुचित, नहीं रहता । राष्ट्रीय संगठन स्वाभाविक तथा न्याययुक्त है यह इस सिद्धान्तसे बहुत ही अच्छी तरह पुष्ट हो जाता है। राष्ट्रीय संगठन पराधीनताका मुख्य आधार है। यह वह वि है जिससे मनुष्य समाजको अपने आपको बचाना चाहिये यह वह सूत्र है जिसमें बंधकर लोगोंका स्वभाव दासता मय होगया है और लोग अबतक स्वतन्त्रतारूपी अमृतको न चख सके हैं। अराजकवादियोंके इस प्रकारके विचार पारिवारिक सिद्धान्तसे निर्मूल हो जाते हैं। सबसे बड़ी बात तो यह है कि जातियोंका उदय भी इस सिद्धान्तके सहारे क्रमबद्ध प्रगट किया जा सकता है। परिवारसे जात जातसे जातिका उदय अत्यन्त स्वाभाविक प्रतीत होता है महाशय अरस्तूने भी इसी विचारको पुष्ट किया है। उन्होंने लिखा है कि "परिवार ही सबसे पहला संगठन है......जब बहुतसे ग्रामीण परिवार आपसमें मिले तो राष्ट्र उत्पन्न हो गया।" मध्यएशियाकी भ्रमणशील जातियोंके जीवनों तथा संगठनोंके अध्ययनसे भी पारिवारिक सिद्धान्त ही सत्य प्रतीत होता है, परन्तु यहांपर एक बात न भुलानी चाहिये। इस सिद्धान्तको सार्वभौम सत्यके रूपमें प्रगट करना असम्भव है। क्योंकि बहुतसे देशोंमें परिवारसे राष्ट्रका विकास नहीं भी हुआ ।

उन्नीसवीं सदीके विज्ञान तथा विवेकपूर्ण अन्वेषणोंने यह स्पष्ट रूपसे प्रगट करदिया है कि राष्ट्रके उदयको किसी

एक सिद्धान्तके द्वारा प्रगट करना असंभव है । पारिवारिक सिद्धान्तके विरोधियोंने ऐतिहासिक दृष्टान्तोंके द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि परिवार सबसे प्राचीन संगठन नहीं और न राष्ट्ररूपी संगठनका आधार ही इसपर सब स्थानोंमें रहा । महाशय जे. एफ. मैक्लैनन तथा उनके अन्य साथियोंने यह अच्छी तरहसे पुष्ट कर दिया है कि अति प्राचीन जन समाजमें विवाह-पद्धति मौजूद न थी । उनमें पति पत्नीका विचार न था ! माताही वंशका आधार थी । एक मातासे उत्पन्न बच्चे अपने आपको भाई भाई तथा सगेसंबन्धी समझते थे । महाशय जैन्कसने अपने राजनीतिशास्त्रके इतिहासमें यह स्पष्ट तौरपर दिखाया है कि आस्ट्रेलिया तथा मलाया-के प्राचीन लोगोंमें अभीतक यह विद्यमान है । उनमें संपूर्ण सम्बन्ध ही मातृ-वंशसे शुरू होते हैं । मातृकुलमें उत्पन्न स्त्रियों तथा लड़कियोंके साथही लोग शादी करते हैं । उनमें पितृ वंशका तो पता ही नहीं चलता ।

पारिवारिक सिद्धान्तको असत्य सिद्ध करने में मातृ वंशीय सिद्धान्तका बड़ाभारी भाग है । कठिनाई तो यह है कि यह भी त्रैकालिक सत्य नहीं है । भ्रमणशील जातियोंमें बहुधा मातृ वंशसे ही सम्बन्ध होता है । कृषि आदि करनेके लिये जब वह किसी एक भूमिपर बस जाती हैं तो उनमें पारिवारिक जीवन शुरू हो जाता है । पारिवारिक जीवनका पुरुषोंकी प्रधानता से घनिष्ठ सम्बन्ध है । धीरे धीरे उनमें वंशका आरम्भ पुरुषोंसे माना जाने लगता है । वस्तुतः दोनोंही सिद्धान्त राष्ट्रके उदयको प्रगट करने में असमर्थ हैं । मनुष्य समाजका आरम्भ कबसे हुआ और कैसे हुआ इसका

ज्ञान अभी तक किसीको भी नहीं हैं। जब तक यह न व
तब तक राष्ट्रके उदयकी समस्याको हल करना असंभव है

§ ३७. अरस्तूका विचार

राष्ट्रके विकासको क्रम बद्ध बताना सुगम काम नहीं। किसी भी सिद्धान्त या विचारके अनुसार राष्ट्रके विका क्रमोंका पता लगानेमें बहुत कठिनाइयां झेलनी पड़ती। विकास तो अवश्यमेव हुआ है। प्राचीनकालके पा वारिक या मातृ-वंश-प्रधान राष्ट्रोंसे आजकलके राष्ट्र स भिन्न हैं। आजकल राष्ट्रोंका संगठन बहुत ही पेचीदा उनकी शक्ति बहुत ही अधिक विस्तृत है। परन्तु इस कासको किसी एक ढांचेमें ढालना तथा किसी एक निय अनुसार क्रम बद्ध दिखाना असम्भव है। बहुतसे राष्ट्र जिस एक बातको बड़ी मेहनतसे सैकड़ों सालोंमें प्राप्त कि दूसरे राष्ट्रोंने उसको नकल कर कुछ ही दिनोंमें ग्रहण लिया। इंग्लैण्डने प्रतिनिधितन्त्र राज्यको शनैः शनैः प्र किया। परन्तु अमरीका तथा फ्रान्सने राज्यक्रान्तिके द्वा इसको एक ही दिनका खिलवाड़ बना दिया।

इन सब कठिनाइयोंके होते हुए भी राजनीतिज्ञ लोगों अति प्राचीनकालसे राष्ट्रके विकासके क्रमोंको दिखाने धुन न छोड़ी। महाशय प्लेटोने राष्ट्रीय विकासका च और अरस्तूने उसका क्रमबद्ध परिवर्तन दिखाया। प्लेटो का विचार था कि राष्ट्रोंके राजनीतिक जीवनका विका तथा ह्रास किसी एक नियत क्रमके अनुसार ही होता है यूनानी राष्ट्रोंकी कुलीनतन्त्र शासन पद्धतिका सैनिक

शासन पद्धतिमें और धनिकतन्त्र शासनपद्धतिका लोकतन्त्र शासन पद्धतिमें और उससे एकतन्त्र शासन पद्धतिमें परिवर्तन होना उसकी आंखोंके सामने नाच रहा था। अरस्तूने प्लेटोके इस विचारको असत्य प्रगट किया और अपने क्रमके द्वारा राष्ट्रके विकासको दिखानेका यत्न किया। उसका ख्याल था कि राष्ट्रीय परिवर्त्तनका क्रम एकतन्त्रसे धनिकतन्त्र और धनिकतंत्रसे स्वेच्छाचार पूर्ण एकतन्त्र शासन पद्धतिकी ओर है। इसमें सन्देह नहीं है पुराने जमानेके यूनानी राष्ट्रोंके लिए यह क्रम ठीक था। परन्तु आजकलके परिवर्त्तनोंको जाननेमें यह कुछ भी सहायता नहीं देता है।

§ ३८ राष्ट्र विकासमें सैनिक तथा आर्थिक तत्व

कुछ राजनीतिज्ञ सैनिक शक्तिको ही राष्ट्रविकासका मुख्य कारण समझते हैं। महाशय जैन्क्सने अपने राजनीति शास्त्रके इतिहासमें लिखा है कि राष्ट्रके विकासका युद्ध कौशलके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। आजकलके प्रत्येक राष्ट्रका उदय क्रम बद्ध युद्धोंका ही परिणाम है। निस्सन्देह आधुनिक राष्ट्रोंको आत्मरक्षणके लिए युद्ध करना पड़ता है। परन्तु उनको युद्धका परिणाम समझना भयंकर भूल होगी। इसके विरुद्ध महाशय कार्ल मार्क्सने राष्ट्रको आर्थिक तत्वोंका परिणाम कहा है। उसका कथन है कि सामाजिक संस्थाओंके सदृश ही राष्ट्रका विकास आर्थिक तत्वोंके साथ घनिष्ठ रूपसे सम्बद्ध है। वर्तमान राष्ट्र उस प्रकारके संगठनको मुख्यता देरहे हैं जिसके द्वारा पूंजी पति श्रमियोंको मेहनतका फल स्वयं भोग रहे हैं। सारांश यह है कि राष्ट्रका उदय

इतना पेचीदा है कि केवल एक ही कारण उसके रहस्य सुलझानेमें असमर्थ है। इसमें संदेह नहीं है कि राष्ट्र उदय होनेके बाद कभी आर्थिक कारण और कभी धार्मिक आदि राष्ट्रकी गति निर्धारित करनेमें मुख्य हो चुके हैं। राष्ट्रका उदय उसकी गतिसे सर्वथा भिन्न है। वह तो मनुष्य समाजके उदय होनेके साथ ही उत्पन्न हुआ है। राष्ट्र विकासकी गति इतिहाससे जानी जा सकती है पर राष्ट्रके विकासको जानना बहुत ही कठिन है।

§३९. राजनीतिक विकासके साधारण चिन्ह ।

किसी एक राष्ट्र विशेषके उदय तथा ह्रासका पता लगाना इतिहासका काम है। राजनीतिशास्त्र तो उसके नियमों तथा सिद्धान्तोंका ही पता लगाता है। शोककी बात है कि राजनीति शास्त्र अभीतक इतना परिपूर्ण नहीं हुआ कि किसी भी राष्ट्रको देखकर उसके विषयमें भविष्यद्वाणी भी कर सके और उसकी उन्नतिके मार्गको स्पष्टतया दिखा सके। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है कि प्राचीन कालके राष्ट्रोंसे आजकलके राष्ट्र सर्वथा भिन्न हैं। महाशय लीकाककी सम्मतिमें यह भेद निम्नलिखित बातोंमें है।

(१) छोटे छोटे राज्योंकी भी भूमि बहुत ही अधिक है। सारे संसारकी भूमिका क्षेत्रफल ५२३००००० वर्गमील है। इसमेंसे ११५१६००० वर्गमीलपर इंग्लैण्डका, ८६६०००० वर्ग मीलपर रूसका और ३५६७००० वर्ग मीलपर अमेरिकाका राज्य था। माना कि प्राचीनकालमें भी बड़े बड़े साम्राज्य थे। चन्द्रगुप्तका साम्राज्य तथा रोम साम्राज्य भी था।

आजकल तो साम्राज्यवादकी लहर खूब विस्तृत चली हुई है। प्राचीनकालमें यह इतनी प्रबल न थी।

राष्ट्रके कार्य्योंकी स्थिरता।

(२) राष्ट्रके कार्य्य भी पूर्वापेक्षा अधिक स्थिर तथा विवेकपूर्ण हैं। असभ्य लोगोंके राज्य-नियमोंका आधार रीतिरिवाज हैं। रीति-रिवाजोंका विवेक पूर्ण तथा हितकर होना आवश्यक नहीं है। परन्तु आजकल यह बात नहीं। समाज जिस बातको करना आवश्यक समझता है उसीको राज्य नियमोंके द्वारा प्रचलित करता है।

राजनीतिक जीवनका जनतामें उत्पन्न होना।

(३) पुराने ज़मानेकी अपेक्षा आजकल लोगोंमें राजनीतिक जागृति बहुत ही अधिक है। राज्य संचालनमें जनताका भाग दिनपर दिन अधिक होता जाता है। राज्यका स्वेच्छाचार तथा अत्याचार यूरोपीय राष्ट्रोंमें बहुत ही कम हो गया है।

धर्म्मका राज्य नियमसे पार्थक्य।

(४) धर्म्म तथा राज्य नियमका पृथक् पृथक् हो जाना भी ध्यान देनेके योग्य है। प्राचीन कालमें ब्राह्मण ही राज्यनियमोंको चलाते थे और बहुधा राजनीतिक शक्तिको भी काममें लाते थे। यूरोपमें तो पादरियोंने राज्यकी नकेलको ही अपने हाथोंमें कर लिया था। आजकल यह नहीं रहा। धर्म्म तथा मत-मतान्तरोंके विवादोंको लोग पसन्द नहीं करते हैं. पादरियोंकी स्थिति भी राष्ट्रमें बहुत उच्च नहीं है। धर्म्मका राज्यनियमोंके साथ किसी प्रकारका भी विशेष सम्बन्ध नहीं रहा।

इन उपरि लिखित बातोंको ठीक ठीक समझनेके लि "यूरोपमें राजनीतिक विचारोंका उदय किस प्रकार हुआ यह जानना अत्यन्त आवश्यक है । अब इसी विषयपर विस रूपसे प्रकाश डाला जायगा ।

छठाँ परिच्छेद

राष्ट्र विषयक सिद्धान्तोंका इतिहास

§४० *भारतमें राष्ट्रीय विचार*

भारतवर्षमें ही सबसे पहले पहल राजनीतिक विचारोंका उदय हुआ। भारतके प्राचीन राजनीतिज्ञ राजनीति शास्त्रकी उत्पत्ति देवलोगोंसे बतलाते हैं। महर्षि व्यासने महाभारतमें राजनीतिके चार पांच संप्रदायोंका उल्लेख किया है। उनके विचारमें भारतमें राजा सामाजिक प्रणका परिणाम है। प्रजाका पालन तथा रक्षण ही उसका मुख्य कर्तव्य है। राजा ब्राह्मणोंका स्वामी नहीं है और यही कारण है कि वह ब्राह्मणोंको मृत्युदण्ड या अन्य किसी प्रकारका शारीरिक दण्ड नहीं दे सकता। व्यासके अनन्तर शुक्रसंप्रदाय तथा चाणक्यने राजनीतिशास्त्रको उन्नत किया। एकतन्त्र राज्यपद्धतिके होनेसे और धर्म-राज्यनियम तथा ब्राह्मणोंपर राजाका प्रभाव न होनेसे राजा यूरोपीय देशोंके सदृश भारतमें स्वेच्छाचारी न हो सके। यही कारण है कि भारतीय राजनीतिज्ञोंका लोकतन्त्र राज्यपद्धतिकी ओर कुछ भी ध्यान न गया। चाणक्यने शासनविज्ञानको बहुत ही अधिक उन्नत किया। उसका 'अर्थ शास्त्र'

महर्षि व्यास

नामक ग्रन्थ राजनीतिक संस्कारके लिये एक अद्भुत रत्न
काम कर रहा है ।*

§४१ यूनानमें राष्ट्रीय विचार

सबसे पहले यूरोपीय देशोंमें यूनानने ही रा
सम्बन्धी विचार प्रगट किये । यून

अफ़लातून या प्लेटो । नियोंका उद्देश्य उच्च और आचार स्तु
णीय था । इसका राष्ट्रीय विचारोंपर
अच्छा प्रभाव पड़ा । अफ़लातूनने लिखा है कि "अतिश
"उन्नत राष्ट्र वही है जो कि मनुष्योंके बहुत पास तक पहुंचे"
एक अंगमें कष्ट होनेपर जिस प्रकार संपूर्ण शरीर
कष्ट पहुंचता है, उसी प्रकार उन्नत राष्ट्रमें राष्ट्रशरीरीपर उस
अंगभूत व्यक्तियोंके सुखदुःखका प्रभाव पड़ता है । अफ़ला
तून राष्ट्रको सात्विक, चेतन, शरीरी मानता था, यह उप
लिखित वाक्यसे ही स्पष्ट है । इसमें सन्देह भी नहीं है उस
राष्ट्रके सात्विक विचार (Organic conception) को
उन्नति दी । उसके विचारमें राष्ट्रकी पूर्णता ही नागरिकों
अन्तिम उद्देश्य होना चाहिए । इसी उद्देश्यकी पूर्ति
नागरिकोंको अपनी सारी शक्ति खर्च करनी चाहिए
बुद्धिमान्, दूरदर्शी राजनीतिनिष्णात व्यक्तियोंका धर्म रा
का शासन करना और वीर क्षत्रियोंका धर्म राष्ट्रका संरक्ष
करना है । धनार्जनमें लगे हुए पुरुषोंको उपरिलिखित दो
श्रेणियोंकी अधीनतामें काम करना चाहिए । सारांश
है कि राष्ट्र शरीरीके प्रत्येक अंगको अपनी अपनी योग्य

* 'राष्ट्रीय सिद्धान्त' प्रो० प्राणनाथ विद्यालंकार कृत ।

तथा शक्तिके अनुसार राष्ट्रकी सेवा करनी चाहिए। इसी-में नागरिकोंकी तथा राष्ट्रों की अन्तिम भलाई है।

अफ़लातूनके सदृश ही अरस्तू भी नागरिकोंका अन्तिम उद्देश्य 'राष्ट्रकी पूर्णता' ही समझता था।

अरस्तू। उसने ही सबसे पहले पहल यह सत्य प्रगट किया कि मनुष्य एक राष्ट्रीय जीव है। राष्ट्र मनुष्यों द्वारा ही बना है। यह होते हुए भी राष्ट्र एक स्वतन्त्र शरीरी है। राष्ट्र मनुष्योंके स्वार्थका साधन नहीं है। उत्कृष्ट जीवन व्यतीत करना ही राष्ट्रका मुख्य उद्देश्य है। इन विचारोंका यह परिणाम हुआ कि यूनानी राष्ट्रोंकी शक्ति अपरिमित सीमातक पहुंच गयी। नागरिकोंका अस्तित्व राष्ट्रके सम्मुख कुछ भी न था। यूनान-में संपूर्ण नागरिक अपने आपको राष्ट्रका अंग समझते थे और राष्ट्रके लिए जीवनको न्यौछावर करना अपना परम कर्त्तव्य समझते थे। एथीनियन लोगोंमें विद्या-विचार सम्बन्धी पर्याप्त स्वतन्त्रता थी, परन्तु यह भी इसीलिए कि वे इसको अत्युत्तम समझते थे। इस प्रकारकी स्वतन्त्रतामें मनुष्यका कोई अधिकार है यह वे न मानते थे। यही कारण है कि महर्षि सुकरातको उन्होंने विष पिलाया और अन्ततक इस भयंकर कामको अनुचित तथा अन्यायपूर्ण न समझा। सारांश यह है कि यूनानी लोग राष्ट्रकी शक्ति अपरिमित समझते थे। सदाचार तथा विचार भी उसकी शक्तिका परिमित न कर सकते थे। राष्ट्रका यह अधिकार था कि वह नागरिकोंको जहां चाहे तहां लगावे और जो काम चाहे वह काम उनसे ले। राष्ट्रकी इस स्वेच्छापूर्ण अपरिमित

शक्तिका दुरुपयोग केवल इस लिए रुका हुआ था कि राष्ट्र प्रभुत्व शक्तिका प्रयोग एक मात्र नागरिकोंके ही हाथमें था और विषय भी इतने थोड़े थे कि राष्ट्रीय स्वेच्छाचा अपना भयंकर रूप दिखलानेमें सर्वथा असमर्थ था † ।

४२. रोममें राष्ट्रीय विचार ।

यूनानी राजनीतिक विचारोंका रोमनलोगोंपर प्रभाव ।

नियम तथा राजनीतिमें रोमके लोग प्राक्कालीन संपूर्ण जा तियोंसे बढ़ गये । राजनीतिको कार्य रू लानेमें भी वेही सबसे पहले समर्थ हुए। य कारण है कि रोमके लोगोंका संसारपर यून नियोंसे बहुत ज्यादा प्रभाव पड़ा। शु शुरूमें रोमके लोग राष्ट्रीय विचारोंमें यूना योंके ही पीछे चलते थे । सिसरोने राजनीतिपर लिखते सम यूनानियोंको ही अपना आदर्श बनाया था । रोमके न्यायाधी तथा स्मृतिकार भी यूनानी दार्शनिकोंके ही अनुगामी थे सिसरोकी सम्मतिमें 'राष्ट्र' ही एक ऐसा सात्मिक चेत शरीरी है जिसके बनानेमें मनुष्य समाज ईश्वरके कुछ कु समीप पहुंच गया है ।

राष्ट्रीय विचारमें रोमवासियोंका यूनानियोंसे तीन बातोंमें भेद ।

सिसरोने राष्ट्रकी सात्मिकताको स्थान स्थानपर प् किया है । यह होते हुए भी रोमके वा राष्ट्रीय विचारमें यूनानियोंसे बहुत आ बढ़ गये । निम्नलिखित तीन बातें रोमवासियोंके विचार यूनानियोंसे सर्व भिन्न थे ।

† राष्ट्रीय सिद्धान्त प्रो० प्राणनाथ विद्यालंकार कृत ।

(क) सदाचारसे राज्यनियमका पृथक् करना—रोमवासियोंने राज्यनियमोंसे सदाचारके नियमोंको पृथक् किया। उन्होंने राज्य नियमोंको एक पृथक् रूप देकरके राष्ट्रका राजनीतिक स्वरूप अति स्पष्ट कर दिया और साथ ही राष्ट्रकी शक्ति भी घटायी। देशप्रथा, सदाचार तथा धर्मसे राज्यनियमोंको जुदा करते हुए रोमवासियोंने वैयक्तिक तथा पारिवारिक स्वतन्त्रताके बढ़ानेमें बहुत अधिक भाग लिया। यह सब करते हुए भी उन्होंने यूनानियोंके सदृश ही नागरिकोंका अन्तिम उद्देश्य राष्ट्रकी पूर्णता ही प्रगट किया। देवपूजामें भी उन्होंने ऐसे ही भाव जोड़े। राष्ट्रकी इच्छा तथा शक्तिका प्रतिरोध करना किसी भी नागरिककी सामर्थ्यमें न था। यदि रोमन राष्ट्रकी शक्ति तथा कार्यक्षेत्र परिमित था तो उसका कारण वह स्वयं ही था। इसमें किसी भी नागरिककी इच्छा या अधिकार कारण न था।

(ख) जातीयताका विचार—रोमवासियोंने ही सबसे पहले पहल राष्ट्रका सम्बन्ध जनसमाजसे प्रगट किया। जातीयताका आविष्कार यूरोपमें उन्होंने ही किया। उन्होंने ही यह स्पष्ट उद्घोषित किया कि 'जनसमाज ही राष्ट्र है और उसकी इच्छा ही संपूर्ण राज्यनियमोंका स्रोत है।, इस प्रकार रोमवासियोंने नागरिक राष्ट्रके स्थानपर जातीय राष्ट्रको जन्म दिया और यूनानियोंसे राजनीतिमें कुछ कदम आगे बढ़ गये।

(ग) सार्वभौम राष्ट्र—रोमवासियोंने ही सबसे पहले पहल नागरिक नियमोंके साथ साथ अन्तर्राष्ट्रीय नियमोंका निर्माण किया। रोमको राजधानी बनाकर एक सार्वभौमराष्ट्रकी स्थापनाके लिए वे लोग प्रवृत्त हुए। परन्तु यूना-

नियोमें यह बात न थी। उनके राष्ट्र नगरसे ही सम्बद्ध थे उनको सार्वभौम राष्ट्र निर्माणका ज्ञान ना था। रोमवासियों बहुत पूर्व ही भारतमें राष्ट्रीय विचारका उदय हो चुका था सार्वभौम राष्ट्र निर्माणमें राजाओंको किस प्रकार अश्व यज्ञ द्वारा प्रोत्साहित किया जाता था, यह किसी भी भा तीय ऐतिहासिकोंसे छिपा नहीं है।

§४३. ईसाई मतका राष्ट्रीय विचारोंपर प्रभाव।

प्राचीन कालमें चर्चका राष्ट्रसे सम्बन्ध।

ईसाई मतने रोमन साम्राज्य तथा यहूदी राष्ट्रके प्र त्वको न माना। ईसा तथा ईसाके बहुत अनुयायियोंको इसीलिए शूलीपर चढ़ पड़ा। राजनीतिक संगठन तथा राज नीतिमें ईसाइयोंकी बहुत रुचि न थी धार्म्मिक संगठन तथा धर्म्मको ही वे सब कुछ समझ थे। ग्रीस तथा रोमन राष्ट्रोंके साथ ईसाइयोंका झगड़ा निपटा, उस समय चर्च अपना एक पृथक् नवी रूप प्रगट कर चुका था। इन्होंने ही राजनीतिसे पृथ धर्म्मका अस्तित्व स्थापित किया। राष्ट्रकी शक्तिका इस कम हो जाना स्वाभाविक ही था।

धीरे धीरे ईसाइयोंने साधारण राजाओंका प्रभुत्व प रियोंपरसे हटाकरके पोपका प्रभुत्व स्थापित किया यूरोपीय ईसाइयोंकी धार्मिक राजधानी रोम नगर ब और वहां ही पोप रहने लगा। रोमका राजनीतिक साम्रा छिन्न भिन्न हो गया और धार्मिक साम्राज्य पुनः संगठि हुआ। रोमके साम्राज्यका राजनीति तथा एक राज

नियम आधार न बन कर धर्म्म आधार बना। राष्ट्रकी शक्तियोंका विकास नागरिकोंसे न माना जा कर ईश्वरसे माना गया। राजा तथा पोपने स्वेच्छाचार प्राप्त किया और अपने आपको ईश्वरका प्रतिनिधि कहना शुरू किया।

§४४. ट्यूटन लोगोंका राष्ट्रीय विचारोंपर प्रभाव।

ट्यूटन लोगोंने रोमन साम्राज्यको नष्ट किया। उन्होंने रोमके भिन्न भिन्न प्रान्तोंको एक एक करके जीतना शुरू किया। कभी कभी तो विपत्तिमें पड़ कर रोमन सम्राटोंने ट्यूटन लोगोंके राजाओंसे स्वयं सहायता ली। मध्यकालमें यूरोपके अन्दर ट्यूटनलोगोंकी ही सब ओर डुगडुगी पिटने लगी। ट्यूटनोंका स्वभाव रोमनोंसे सर्वथा भिन्न था। उन्होंने रोमन राष्ट्रकी अपरिमित शक्तिको चूर चूर कर दिया और वैयक्तिक स्वतन्त्रता तथा प्रतिनिधितन्त्र शासनपद्धतिकी नींव यूरोपमें डाली। मान्टस्क्यूने ठीक कहा है कि "यूरोपीय प्रतिनिधितन्त्र शासनपद्धतिका बीज जर्मनीके जंगलोंमें ढूंढा जा सकता है।" टाइटिसने यह बहुत अच्छी तरहसे प्रगट किया है कि किस प्रकार जर्मनराजा जनसभा तथा जनसमितिसे सलाह ले कर संपूर्ण काम करते थे। ट्यूटन लोग वैयक्तिक स्वतन्त्रताके प्रेमी थे। इसी स्वतन्त्रताकी रक्षामें वे सारे संसारसे लड़नेके लिए तैयार रहते थे, अपने राज्यका तो कहना ही क्या है। राष्ट्र ही सब कुछ हैं, राष्ट्रकी शक्तिके सम्मुख सिर झुकाना नागरिकोंका परम कर्त्तव्य है--इत्यादि विचारोंको वे घृणाकी दृष्टिसे देखते थे।

इसी स्वभावका यह परिणाम था कि ट्यूटन वैयक्तिक अधिकारोंको सुरक्षित रखनेमें रोमनोंसे बहुत अधिक तैयार रहते थे। यही कारण है कि मध्यकालमें व्यक्ति, परिवार, सभा-समितियोंको पूर्वापेक्षा बहुत ही अधिक स्वतन्त्रता मिल गयी। चर्च तथा व्यक्तियोंके अधिकारोंकी (?) सभासे राष्ट्रके अधिकार बहुत कम हो गये।

ट्यूटन लोग जातीय कार्य्योंमें भी राष्ट्रकी शक्तिको निरंकुश न मानते थे। सम्राट्का दैवीरूप उनके लिए तुच्छ वस्तु था। सम्राट्की आज्ञापर चलनेसे पूर्व वे अपनी सम्मति तथा इच्छाको प्रगट कर देना आवश्यक समझते थे। राष्ट्रशरीरीकी कल्पना उनके लिए स्वप्न तुल्य थी। उनका यह विश्वास था कि कोई भी राजा राज्य-नियम नहीं बना सकता है जबतक कि वह उनसे सलाह न ले ले। राष्ट्रीय शक्तियोंका स्रोत वे व्यक्तियोंको ही समझते थे। यही कारण था कि राष्ट्रीय शक्तिको उन्होंने भिन्न भिन्न नागरिकों तथा नागरिक संघोंमें विभक्त कर दिया था। प्रत्येक नागरिक तथा नागरिक संघ एक दूसरेकी शक्तिको निरंकुश होनेसे रोकता था। इससे उनमें संगठनके शिथिल होते हुए भी नागरिकोंकी स्वतन्त्रता पूर्ण रूपसे सुरक्षित रहती थी और उसको किसी प्रकारका भी धक्का न पहुंचता था।

ट्यूटनोंका अपना राजनीतिक साहित्य न था। मध्यकालमें चर्चका ही राजनीतिक साहित्यमें एकाधिकार था। समय पड़नेपर वह लोग रोमन स्मृतिकारों तथा यूनानी दार्शनिकोंके विचारोंसे सहायता प्राप्त करते थे। राष्ट्रीय

सात्मिक वादकी ओर लोगोंका कुछ भी ध्यान न था। यही कारण है कि राष्ट्र सम्बन्धी विचार पूर्ववत् उन्नत न रहे।

व्यक्तिगत स्वतन्त्रताके बढ़नेके साथ साथ व्यक्तियोंके राजनीतिक अधिकार भी बढ़ गये। प्रान्तोंपर भिन्न भिन्न व्यक्तियोंका वंशागत स्वत्व स्थापित हो गया। राष्ट्रीय कार्य्योंको करना भार समझा जाने लगा। फ्यूडल लार्डोंके समुत्थानसे यूरोपकी रोमके आधिपत्यमें पूर्ववत् राजनीतिक एकता न रही। भिन्न भिन्न यूरोपीय राष्ट्रोंका रोमके साथ एक प्रकारका अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध स्थापित हो गया। इसमें सन्देह भी नहीं है कि पोपकी स्थितिसे यूरोपकी धार्मिक एकता नष्ट न होने पायी। रोम यूरोपकी राजनीतिक राजधानी न रहते हुए भी चिरकाल तक धार्मिक राजधानी बना रहा।

§४५. *विद्या-वृद्धिका राष्ट्रीय विचारोंपर प्रभाव।*

ट्यूटन लोगोंने रोमन साम्राज्यको चूर चूर करके भिन्न भिन्न प्रान्तोंमें विभक्त कर दिया। इससे रोमका महत्व बहुत कम न हुआ, क्योंकि पोपके रोममें रहनेसे रोम यूरोपका धार्मिक राजधानी बन गया। राष्ट्रोंकी प्राचीन शासनपद्धतियोंपर विचार पूर्ववत् होता रहा। इसका मुख्य कारण यह था कि ट्यूटन लोगोंने रोमके साम्राज्यको छिन्न भिन्न करनेके अनन्तर रोमकी सभ्यताको ग्रहण कर लिया। फ्रान्सके सम्राट् चार्लस दि ग्रेट और जर्मनीके सम्राट् ओटो दि ग्रेट् कान्स्टैन्टाइन, क्लाडियस तथा

आन्टोनियस आदिके उत्तराधिकारी ही माने जाते थे। रोमन साम्राज्य तथा रोमन सम्राट्का महत्व यूरोपीय राजाओंके हृदयमें चिरकाल तक बना रहा और वे लोग इस पदको प्राप्त करना अपना परम सौभाग्य समझते थे।

बारहवीं सदीसे पन्द्रहवीं सदीतक रोमन राज्यनियम बहुत अंशोंमें प्रामाणिक समझा जाते रहे। समय पड़ने पर भिन्न भिन्न राष्ट्रोंके स्मृतिकारोंको उन्हींका सहारा लेना पड़ता था। इटलीसे पढ़करके आनेमें यूरोपीय लोग अपना गौरव समझते थे। रोम नगरके प्राचीन प्रतिनिधितन्त्र राज्यके वर्णनोंको पढ़ कर भिन्न भिन्न यूरोपीय नगरोंके लोग अपने नगरमें भी रोम सदृश प्रतिनिधितन्त्र राज्य स्थापित करनेके लिए उत्सुक रहते थे। मध्यकालमें कई बार रोमके नागरिकोंने रोममें प्रतिनिधितन्त्र राज्य स्थापित करना चाहा परन्तु सफल न हो सके। यूनानके प्रसिद्ध दार्शनिक अरस्तूकी राजनीति विषयक पुस्तकें ईसाई मतों तथा विचारोंके विद्वान् लोग पढ़ा करते थे। थोमास आव् अक्विनोने तो इसपर एक टिप्पणी भी की थी।

यह सब होते हुए भी यूरोपकी दशा पूर्वापेक्षा बहुत बदल गयी। प्राचीन संस्थाओं तथा सभ्यताओंपर ट्यूटन लोगोंने अपनी छाप पूरी तरहसे डाली। पन्द्रहवीं सदीके बीचमें ही यूरोपमें जागृति प्रारम्भ हुई। प्राचीन शिल्प, चित्रण, विद्या तथा विज्ञानका पुनरुद्धार हुआ। जीवनको भार न समझ कर सुख तथा समृद्धि प्राप्त करनेके लिए यत्न किया गया। मनुष्य जीवनका महत्व यूरोपीय

लोगोंकी आंखोंके सामने नाचने लगा। पोपोंतकके विचारोंमें परिवर्त्तन आगया। निकोलस पंचम (संवत् १५०४-१५१२-सन् १४४७-५५) पायस द्वितीय (संवत् १५१५-१५२१ सन् १४५८-१४६४) जूलियस द्वितीय (संवत् १५६०-१५७० सन् १५०३-१५१३) लीयां दशम (संवत् १५७०-१५७८ सन् १५१३-१५२१) आदियोंने शिल्पियों तथा चित्रकारोंको पूर्ण स्वतंत्रता दी। राष्ट्रसम्बन्धी प्राचीन विचारोंनेभी अपना रूप प्रकट किया और समाजको निम्नलिखित प्रकारसे प्रभावित करना शुरू किया।

(१) बहुतसे साहसी योग्य योग्य विचारकोंने राष्ट्रको मनुष्य निर्मित प्रगट कर उसके विकासका पता लगाना शुरू किया और राष्ट्रके दैवी सिद्धान्तका सर्वथा ही परित्याग कर दिया।

दैवी सिद्धान्तका परित्याग

(२) राज्यों तथा राष्ट्रोंको किधर जाना चाहिए? उनकी क्या नीति तथा क्या आदर्श हो? इत्यादि प्रश्नोंपर गम्भीर तौरपर विचार किया गया। मैकिया वलीने ही सबसे पहले पहल इन प्रश्नोंको हल करनेका यत्न किया।

राजनीतिक समस्याएं सरल की गयीं।

(३) प्रभुत्व शक्ति सिद्धान्तका विकास भी इसी समय हुआ। छोटे छोटे राजाओंने स्वेच्छाचारीका रूप धारण किया और रोमन सम्राट् बनना अपना आदर्श बनाया।

राजनीतिक प्रभुत्वका प्रारम्भ

(४) राजओंके स्वेच्छाचारके साथ ही साथ योरूपीय जनतामें राजनीतिक जागृति प्रारम्भ हुई। लोक तन्त्रशासन-

पद्धति आदर्श शासन पद्धति समझी जाने लगी। इसका परिणाम यह हुआ कि धीरे धीरे साराका सारा यूरोप एक तन्त्रराज्यपद्धतिसे लोकतन्त्र शासन पद्धतिकी ओर झुक पड़ा।

यूरोपमें जब विद्या-वृद्धि शुरू हुई, साधारण जनता पूर्ववत् ही अज्ञानान्धकारमें लीन थी। कुछ एक इने गिने पढ़े लिखे लोग ही राजनीति तथा राजनीतिक सिद्धान्तों को समझते थे। यही कारण है कि विद्या-वृद्धिका शुरू शुरू में सारी जनतापर बहुत अधिक प्रभाव न पड़ा। इसमें सन्देह भी नहीं है। वर्तमान यूरोपकी जागृति तथा सारी जनतामें राजनीतिक जीवनका आना बहुत कुछ उसी समयसे सम्बद्ध है। जो बीज उस समय बोया गया उसीका यह फल है।

§४६. *वर्त्तमान कालका प्रारम्भ।*

वर्त्तमान काल किस समयसे प्रारम्भ होता है इसपर यूरोपीय राजनीतिज्ञोंमें बड़ा मत-भेद हैं। बहुतोंका विचार है कि वर्त्तमान काल संवत् १६९७ (सन् १६४०) तथा संवत् १७२५ (सन् १६६८) की आंग्ल राज्यक्रान्तिसे शुरू होता है। परन्तु आज कल प्रायः संवत् १७९७ से १८४६ (सन् १७४० से १७८९) तकके समयके बीचमें ही वर्त्तमान कालका प्रारम्भ माना जाता है। यही समय है जिसमें कि प्रशियन साम्राज्यकी वृद्धि शुरू होती है, आष्ट्रियामें जोजफ

संवत् १७९८ से १८४६ (सन् १७४० से १७८९) तक के समयका महत्व।

द्वितीय सुधारोंको करता है, उतरीय अमेरिका महाद्वीपमें संयुक्त प्रान्त स्वतन्त्र होता है, फ्रान्समें राज्यक्रान्ति होती है नेपोलियन फरांसीसी साम्राज्यको बढ़ाता है, भारतमें आंग्लोंका प्रभुत्व स्थापित होता है। चर्चका प्रभुत्व भी यूरोपमें इसी समयसे कम हो जाता है। स्वतन्त्रता, समानता तथा जातीयताकी ओर इसी समयसे पग बढ़ाना शुरू होता है।

इन उपरि लिखित परिवर्त्तनोंका राष्ट्रीय विचारोंपर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। राजनीतिने विशेष महत्व प्राप्त किया। नये नये राजनीतिक सिद्धान्त निकाले गये। जन-समाजने राष्ट्रीय विचारोंको विशेष तौरपर उन्नत किया।

§४७. *वर्त्तमान तथा प्राचीन राजनीतिकविचारोंमें भेद।*

परिवर्तन जाननेका मुख्य तरीका यही है कि वर्त्तमान तथा प्राचीन राजनीतिक विचारोंकी परस्पर तुलना की जाय। क्योंकि ऐसा करनेसे भेद स्पष्ट तौरपर झलकने लगता है।

प्राचीन राष्ट्रीय विचार।

(क) प्राचीन कालमें राष्ट्रके सम्मुख व्यक्ति कोई वस्तु न थी। यही कारण है कि उस समय वैयक्तिक स्वतन्त्रता नहीं मानी जाती थी। प्रत्येक प्राचीन राष्ट्रमें आधेसे अधिक दास थे। स्वतन्त्र पुरुषोंकी कमी थी। कृषि-व्यवसाय, तथा पशु-पालनका काम दासोंसे करवाया जाता

वर्त्तमान राष्ट्रीय विचार।

(क) आजकल प्रत्येक व्यक्तिका अधिकार राजनीतिमें माना जाता है। **व्यक्तिगत** वैयक्तिक स्व-तन्त्रताको प्रत्येक राष्ट्र मा-**अधिकार** नता है। दासता पाप समझी जाती है और उसका प्रचार भी सभी सभ्य देशोंसे हट गया है। असामी लोग भी पूर्वापेक्षा बहुत ही

प्राचीन राष्ट्रीय विचार	वर्त्तमान राष्ट्रीय विचार
था। बहुत बार व्यापारका काम भी उन्हींसे लिया जाता था। श्रम-का कुछ भी मूल्य नहीं समझा जाता था। श्रमीका राष्ट्र तथा राजनीतिमें कोई भाग न था। भूमिपर उनका स्वत्व न था। मनुष्योंके साधारणसे साधारण अधिकार भी उनको न प्राप्त थे। राजनियमोंके स्थानपर देश-प्रथा ही उनकी रक्षा करती थी। समय समयपर उन्होंने उठनेका यत्न किया तथा विद्रोह किया। वे बुरी तरहसे दबाये गये और उठनेसे रोके गये। उनके साथ अमानुषिक अत्याचार किये गये।	अधिक स्वतन्त्र हो गये हैं। मनुष्यों-का मनुष्योंपरसे स्वत्व हट गया है। श्रम अच्छा समझा जाता है। श्रमियोंको पूर्ण स्वतन्त्रता है कि वे जहां चाहें जावें और जहां चाहें काम करें। नौकर तथा मजदूर तक वोट देते हैं। दासोंका विद्रोह अब स्वप्न तुल्य हो गया है। राष्ट्रका सम्बन्ध प्रत्येक मनुष्यसे एक सदृश माना जाता है। प्रत्येक मनुष्य राष्ट्रका अंग है।
(ख) नागरिकोंके प्रत्येक कार्य्योंमें राष्ट्रका हस्तक्षेप था। विद्या, विज्ञान, शिल्प, धर्म्म तथा सदाचार आदिमें राष्ट्रका प्रभुत्व पूर्ण रूपसे था। पुरोहितका पद एक राजनीतिक संस्था था। प्राचीन राष्ट्रोंके सम्मुख व्यक्तिगत स्वतन्त्रता कोई वस्तु न थी।	(ख) आजकल राष्ट्रके अधिकार अपरिमित नहीं माना जाता है। राष्ट्र एक राजनीतिक संस्था है। धर्म्म तथा पूजापाठमें व्यक्तियोंको पूर्ण स्वतन्त्रता है। पुरोहितका पद एक राजनीतिक संस्था नहीं है। विद्या-विज्ञानमें भी राज्यका हस्तक्षेप परिमित है। राज्य अपने आपको इन बातोंमें प्रामाणिक नहीं समझता है।

प्राचीन राष्ट्रीय विचार

ग प्राचीन राष्ट्रमें नागरिक ही स्वतन्त्र पुरुष गिने जाते थे। व्यक्तिगत नियमों तथा राष्ट्रीय नियमोंमें अभी भेद स्थापित न हुआ था। रोमनलोगों-ने इसमें यत्न किया परन्तु पूरी तौरपर सफल न हुए। रोमनकालमें व्यक्तियों-को पूर्ण स्वततन्त्रता न मिली।

(घ) प्राचीनकालमें राष्ट्रकी प्रभुत्वशक्ति अपरिमित थी।

(ङ) प्राचीन कालमें प्रत्यक्ष लोकतन्त्रराज्य था। प्रतिनिधि-निर्वाचनकी कोई संस्था न थी। संपूर्ण राष्ट्रीय कामोंमें नागरिक स्वयं उपस्थित होते थे। मुख्य मुख्य राष्ट्रीय प्रश्नोंको वह स्वयं ही हल करते थे।

(च) यूनानी राष्ट्र एकमात्र नागरिक राष्ट्र थे। रोमने सबसे पहले पहल सार्वभौम राष्ट्र बनने-का यत्न किया।

(छ) प्राचीन कालमें शक्तिसं-विभाग न था। एक ही राष्ट्रीय संस्था

वर्त्तमान राष्ट्रीय विचार

(ग) प्रत्येक मनुष्यको आज-कल स्वतन्त्रता है। व्यक्तिगत नियमों तथा राष्ट्रीय नियमोंमें भी अब भेद स्थापित हो गया। आजकल व्यक्ति-योंको अपनी उन्नति करनेमें पूर्ण स्वतन्त्रता है। राज्यका हस्तक्षेप बहुत कम है।

(घ) आजकल राष्ट्रकी प्रभु-त्वशक्ति शासनपद्धतिकी धाराओंके द्वारा परिमित की गयी है।

(ङ) आजकल प्रतिनिधितन्त्र राज्य है। प्रतिनिधियोंसे ही पूर्ण राष्ट्रीय काम किये जाते हैं। प्रतिनिधि निर्वाचनका बहुत ही अधिक महत्व है। राज्य नियम आदि बनाना और आय व्ययका पास करना प्रतिनिधि-योंका ही काम है।

(च) वर्त्तमान कालके राष्ट्र जातीय राष्ट्र ह। नगर राष्ट्रका एक अंग है। नागरिक राष्ट्रोंका अब सर्वथा अभाव है।

(छ) आजकल शक्तिसंविभा-गके अनुसार काम होता है। भिन्न

प्राचीन राष्ट्रीय विचार ।	वर्त्तमान राष्ट्रीय विचार
भिन्न भिन्न समयोंमें शासक, नियामक तथा निर्णायक शक्ति को काममें लाती थी ।	भिन्न राष्ट्रीय संस्थाएँ भिन्न भिन्न शक्तियोंको काममें लाती हैं ; शासक शक्ति जिस संस्थाके पास है उसीके पास निर्णायक तथा नियामक शक्ति नहीं है । आजकल तीनों ही शक्तियों का एक ही संस्थाके हाथमें देना अत्याचारका दूसरा रूप समझा जाता है।
(ज) अन्तर्राष्ट्रीय नियमोंकी सभा न थी । एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र पर हर समय आक्रमण कर सकता था । रोमने अपना साम्राज्य इसी प्रकार खड़ा किया । सिकन्दरने दूसरे राष्ट्रों-पर चढ़ाई भी इसी लिए की ।*	(ज) आजकल अन्तर्राष्ट्रीय नियमोंका महत्व बहुत ज्यादा है। भिन्न भिन्न राष्ट्रोंको अन्तर्राष्ट्रीय नियम ही बचा रहे हैं । राष्ट्रोंकी स्वतन्त्रताको सब लोग मानते हैं। किसी एक राष्ट्रका सब राष्ट्रोंपर राज्य दासताका चिह्न समझा जाता है ।— *

§ ४८ वर्त्तमान तथा मध्यकालीन राष्ट्रीय विचारोंमें भेद ।

वर्त्तमान तथा मध्यकालीन राष्ट्रीय विचारोंमें बड़ा भेद है । रोमन कालके बाद यूरोपीय राष्ट्रोंका उदय हुआ विद्या प्रचारका क्षेत्र पूर्वापेक्षा बढ़ गया । आज कल तो रेल तारसे सारा संसार संघटित हो गया है । राष्ट्रीय विचारोंपर इन परिवर्त्तनोंका बहुत प्रभाव पड़ा है दृष्टान्त स्वरूप—

* The theory of the State by Bluntchli (Third edition) BookI. ch. VI. PP. 54-60.

मध्यकालीन राष्ट्रीय विचार	वर्त्तमान राष्ट्रीय विचार

राष्ट्रका ईश्वरसे उद्भव ।

मध्यकालीन राष्ट्रीय विचार

(क) मध्यकालमें राष्ट्र तथा राष्ट्रीय प्रभुत्व-शक्तिका विकास ईश्वरसे माना जाता था। ईश्वर ही राष्ट्र तथा राष्ट्रीय प्रभुत्व-शक्तिका निर्माता समझा जाता था।

वर्त्तमान राष्ट्रीय विचार

(क) आजकल राष्ट्र मनुष्योंकी संस्था माना जाता है। मानुषिक उद्देश्यको पूरा करनेके लिए और मनुष्योंकी सुखे-समृद्धिके लिए ही राष्ट्र बना है।

धर्म्मका राष्ट्रमें भाग ।

मध्यकालीन राष्ट्रीय विचार

(ख) इस्लाम और ईसाई धर्म्मोंका प्रभुत्व-शक्तिमें बड़ा भारी भाग था। इस्लाम धर्म्ममें ईश्वर ही साम्राज्य माना गया है। सुल्तान तो ईश्वरका प्रतिनिधि है। मध्यकालमें चर्च तथा राष्ट्रका एक ही सदृश यूरोपमें प्रभुत्व था। दोनों ही अपनी शक्तिका उद्भव ईश्वरसे मानते थे। इसके बाद जब प्रोटेस्टैन्ट लोगोंका जोर हुआ तब उन्होंने चर्चकी प्रभुत्व-शक्तिको न माना। एकमात्र राष्ट्रकी प्रभुत्व-शक्तिको ही उचित ठहराया। परन्तु उसका उद्भव ईश्वरसे ही प्रगट किया।

वर्त्तमान राष्ट्रीय विचार

(ख) आजकल राष्ट्रीय सिद्धान्तोंका आधार दर्शनशास्त्र तथा इतिहास ही है। मनुष्यसे ही राष्ट्र तथा राष्ट्रीय प्रभुत्व शक्तिका उद्भव आजकल माना जाता है। कईलोगोंका विचार है कि राष्ट्र मनुष्योंके उस संगठनका नाम है जो मनुष्योंके स्वातन्त्र्य तथा संरक्षणके लिए उत्पन्न हुआ है। बहुतसे लोग राष्ट्रको जातिका एक उच्चरूप ही प्रकट करते हैं। आजकल धर्म्म तथा मतके साथ राष्ट्रका संबंध कोई भी नहीं मानता है। ईश्वर तथा ईश्वरीय सृष्टिके अद्भुत रहस्यको समझते हुए भी अर्वाचीन राजनीतिक राष्ट्रको एक मानुषिक संस्था ही समझते हैं।

मध्यकालीन राष्ट्रीय विचार — वर्त्तमान राष्ट्रीय विचार

देवतन्त्र राज्य।

(ग) मध्यकालमें अप्रत्यक्ष देवतन्त्र राज्य था। शासक ईश्वर-का अवतार नहीं समझा जाता था। वह ईश्वरका प्रतिनिधि माना जाता था

(ग) आजकल राष्ट्र मानु- षिक संस्था समझा जाता है। ईश्व- रका उसके साथ कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। शासकोंका कर्तव्य ईश्वरी इच्छा पूरी करना नहीं है, अपितु राष्ट्रके अंगभूत व्यक्तियोंकी सुख समृद्धि को बढ़ाना और स्वतन्त्रता सुरक्षित रखना है।

धार्मिक स्वतन्त्रता

(घ) मध्यकालमें धर्मकी एकता पर राष्ट्रका दारोमदार समझा जाता था। इसीलिए राष्ट्र धर्मकी एकता-के लिए बहुत बल देता था। जो लोग राष्ट्रीय धर्मसे भिन्न धर्मका अवलम्बन करते थे उनको बड़ी बड़ी तकलीफें दी जाती थीं।

(घ) आजकल धर्मपर राष्ट्र आधार नहीं है। राष्ट्रीय तथा लौ- किक नियमोंका धर्मसे सम्बन्ध नहीं रहा है। धर्मके मामलेमें प्रत्ये- व्यक्ति स्वतन्त्र है। जो चाहे जि- धर्मको ग्रहण करे राज्य कुछ भी चू-चां नहीं करता है।

चर्च

(ङ) मध्यकालमें राष्ट्रसे चर्चका महत्व अधिक था। पोप तथा पुरो-हितोंका दर्जा राजा तथा सामन्तोंसे ऊंचा था।

(ङ) आजकल राष्ट्र एक श- माना जाता है। शासनपद्धति उ- शरीर और जाति उसकी आत्मा राष्ट्रके सदृश चर्चकी उच्च स्थि- नहीं मानी जाती है। पुरोहि-

मध्यकालीन राष्ट्रीय विचार

वर्त्तमान राष्ट्रीय विचार

कुछ भी विशेष राजनीतिक अधिकार नहीं मिले हुए हैं। राष्ट्रके लिए प्रत्येक व्यक्ति समान है।

शिक्षा

(च) मध्यकालमें बालकोंकी शिक्षा चर्चोंके ही हाथमें थी। विद्या-विज्ञानमें चर्चके सिद्धान्त ही प्रामाणिक थे।

(च) आजकल धार्मिक शिक्षा देना ही एकमात्र चर्चका काम है। साधारण शिक्षा राष्ट्र तथा व्यक्तियोंके हाथमें है। विद्या-विज्ञानकी उन्नतिपर राष्ट्रका विशेष ध्यान है।

वैयक्तिक तथा राष्ट्रीय नियम

(छ) मध्यकालमें वैयक्तिक नियमों तथा राष्ट्रीय नियमोंमें कुछ भी भेद न था। राजकीय शक्ति वंशागत थी, ताल्लुकेदार ही सामन्त थे।

(छ) आजकल वैयक्तिक नियमों तथा राष्ट्रीय नियमोंमें भेद है। राजकीय शक्ति वंशागत नहीं है। राष्ट्रीय कार्योंको करनेवाले ही राष्ट्रीय शक्ति तथा राष्ट्रीय अधिकारको काममें ला सकते हैं।

राष्ट्रीय शक्तिका विभाग

(ज) मध्यकालमें फ़्युडल विधिसे राष्ट्रका शासन होता था। राष्ट्रीय प्रभुत्व-शक्ति ईश्वरसे लेकरके नागरिक पर्य्यन्त भिन्न भिन्न शासकोंमें विभक्त थी। ईश्वर अपनी शक्ति राजाको, राजा वह शक्ति सामन्त तथा अनुसामन्तोंको और वे

(ज) आजकल राष्ट्रोंकी शक्ति मध्यकालके सदृश बंटी हुई नहीं है। राष्ट्रोंका आकार पूर्वापेक्षया बहुत ही अधिक बढ़ गया है। राज्य-नियमों का प्रयोग संपूर्ण नागरिकों-पर एक सदृश है। राष्ट्रकी प्रभुत्व-शक्ति बहुत ही अधिक व्यवस्थित है।

मध्यकालीन राष्ट्रीय विचार।	वर्त्तमान राष्ट्रीय विचार।
भी नागरिकों तथा गोपोंको सुपुर्द करते थे और इस प्रकार शासन-का काम होता था।	

प्रतिनिधि तन्त्र

मध्यकालीन राष्ट्रीय विचार।	वर्त्तमान राष्ट्रीय विचार।
(झ) मध्यकालमें प्रतिनिधि निर्वाचनमें ताल्लुकेदारोंका विशेष भाग था। ताल्लुकेदार तथा पादरी लोगोंको ही राजनीतिक अधिकार प्राप्त करनेका विशेष अवसर था। राज्य-नियम भिन्न भिन्न ताल्लुकोंमें भिन्न भिन्न था।	(झ) आजकल संपूर्ण नागरिकों-का प्रतिनिधि-निर्वाचनमें समान अधिकार है। मुख्य मुख्य दलोंके पास ही राष्ट्रीयप्रभुत्व-शक्ति रहती है। नागरिक होनेका अधिकार सबको मिला हुआ है। प्रतिनिधित्व शासनपद्धति ही भिन्न भिन्न राष्ट्रोंमें प्रचलित है। राज्यनियम संपूर्ण ताल्लुकों तथा संपूर्ण नागरिकोंके लिये एक सदृश है।

समान स्वतन्त्रता

मध्यकालीन राष्ट्रीय विचार।	वर्त्तमान राष्ट्रीय विचार।
(ञ) ताल्लुकेदारोंके अधिकारोंकी रक्षा की जाती थी। राज्य उनके पक्षमें था। किसानोंको पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त न थी।	(ञ) आजकल राष्ट्रका प्रभुत्व सब नागरिकोंपर एक सदृश है। किसीको भी विशेष अधिकार नहीं मिले हुए हैं।

राष्ट्रीय हस्तक्षेप

मध्यकालीन राष्ट्रीय विचार।	वर्त्तमान राष्ट्रीय विचार।
(ट) मध्यकालमें देश प्रथा तथा रीतिरिवाजकी प्रबलता थी। न्यायालय विभागकी शक्ति बहुत अधिक न थी। न्याय तथा निर्णयका अधिकार कुछ कुछ लोगोंको भी मिला	(ट) आजकल देशप्रथा तथा रीतिरिवाजका ज़ोर कम है। शिक्षा तथा सम्पत्ति वृद्धिमें राष्ट्रका अधिक ध्यान है। राजनीतिकी बागडोर एकमात्र राष्ट्रके ही हाथमें

मध्यकालीन राष्ट्रीय विचार	वर्त्तमान राष्ट्रीय विचार
हुआ था । यही कारण है कि राज्य तथा शासन विभागकी शक्ति कम थी ।	है । जाति तथा समाजके हितमें शासनका प्रयोग है ।
(ठ) मध्यकालमें राष्ट्रका विकास ऐतिहासिक था । प्राकृतिक परिस्थिति ही राष्ट्रीय परिवर्तनोंका मुख्य कारण थी । राज्य-नियमोंका देशप्रथाके साथ घनिष्ट सम्बन्ध था ।	(ठ) आजकल राष्ट्रका विकास भिन्न भिन्न राषनीतिक सिद्धान्तोंसे सम्बद्ध है । राष्ट्रीय परिवर्तनोंमें बुद्धि तथा विचारोंका विशेष भाग है । देश प्रथाका महात्व कम हो गया है । राज्यनियम बनाना व्यवस्थापक सभाका काम है ।

§४६. *राष्ट्रविषयक सिद्धान्तोंका उदय ।*

राष्ट्रीय विचारों तथा राष्ट्रीय सिद्धान्तोंके संशोधनमें राजनीति शास्त्रका विशेष भाग है। यूरोपमें राजनीतिक परिवर्त्तनोंके पूर्व राजनीतिक सिद्धान्त ही प्रगट होते रहे हैं । परिवर्त्तनोंके आधारपर राष्ट्रीय सिद्धान्तोंका निर्माण बहुत कम स्थानोंमें हुआ है । मध्यकालमें प्राचीन राष्ट्रीय सिद्धान्तोंको नव्यरूप देनेका श्री गणेश सबसे पहले पहल मैकि-आवली, बोदिन तथा ह्यू गो ग्रोटियसने ही किया ।

मैकि-आवली

मैकि-आवली राष्ट्रको ब्रह्माकी अपूर्व उच्चतम सृष्टि समझता था। वह उसपर सब कुछ न्योछावर करनेके लिए तैयार था। राष्ट्रसे उसकी हार्दिक प्रीति थी। उसको प्रीतिमें सत्य, धर्म तथा सदाचारको भी वह बलि चढ़ा देना अनुचित न समझता था। उसके लिए राष्ट्र ही मनुष्य जातिका आदर्श

है। उसीकी पूर्णतामें मनुष्य जातिकी पूर्णता है। राज्य-नियमोंका पृथक् कुछ भी अस्तित्व नहीं है। वे तो राष्ट्रको शक्ति तथा समृद्धि बढ़ानेके ही साधन हैं। मैकि-आवली राष्ट्रका स्वरूप धार्मिक या सदाचाराय न समझ करके एक मात्र राजनीतिक समझता था। यही कारण है कि उसने राजनीतिक कार्योंका आधार एकमात्र उपयोगिताको ही रखा। राष्ट्रकी शक्ति तथा प्रभुत्वशक्तिको स्थिर रखनेके लिए राजनीतिज्ञोंको प्रत्येक प्रकारका बुरा भला काम करना चाहिए। उनको ऐसे उच्चतम मामलोंमें छल तथा कपटसे न झिझकना चाहिये और सदाचार तथा धर्मकी परवाह न करनी चाहिए।

मैकि-आवलीके उपरि लिखित विचारोंका राजनीति शास्त्रकी उन्नतिमें बड़ा भाग है। उसीने धर्म तथा राज्यनियमोंमें भेद स्थापित किया और राजनीति शास्त्रका धर्म शास्त्रके हस्तक्षेपोंसे सुरक्षित किया। उसके विचारोंका यूरोपीय राजनीतिपर बुरा प्रभाव पड़ा। अत्याचार पूर्वापेक्षया बढ़ गये। राज्योंको शक्ति अपरिमित हो गयी।

वोदिन — वोदिन राष्ट्रको एक बड़ा परिवार समझता था। कुलपतिके सदृश ही राजाकी प्रभुत्व-शक्तिको वह आवश्यक तथा स्वाभाविक समझता था। इससे राज्योंके स्वेच्छाचार बढ़े।

ह्यूगो ग्रोटियस — ह्यूगो ग्रोटियसने मैकि-आवली तथा वोदिनका अनुकरण न करके सिसरोका ही अनुकरण किया। प्राचीन राजनीतिज्ञोंके सदृश ही उसने राष्ट्रका मानुषिक स्वरूप प्रगट किया। यह होते हुए भी उसने राष्ट्रका आधार मनुष्य समाजपर न रख कर

व्यक्तिपर ही रखा । उसका कथन है कि राष्ट्र स्वतन्त्र पुरुषोंका एक पूर्ण संगठन है जो कि राज्य-नियमोंके बनाने और राष्ट्रीय समृद्धिको बढ़ानेके लिए बना है। राज्यनियमोंका बनाना उसके विचारमें मनुष्योंकी सम्मतिपर निर्भर है। इसी विचारको सामने रख कर अगले राजनीतिज्ञोंने सामाजिकप्रण सिद्धान्तको जन्म दिया।

प्राकृतिक नियम, सामाजिक प्रण तथा संमिलन।

वर्तमान कालिक राजनीतिज्ञोंने राष्ट्रीय विचारोंका आधार शुरू शुरूमें प्राकृतिक नियमको ही माना। किसीने राष्ट्रका उदय सामाजिक प्रणसे और किसीने संमिलनसे प्रगट किया। रूसोने राष्ट्रको मनुष्योंकी बहु-सम्मति तथा सामाजिक प्रणका परिणाम प्रगट करते हुए राष्ट्रकी स्थितिको ही विवादास्पद बना दिया। यदि राष्ट्र एक प्रकारका सामाजिक प्रण हो तो उसका अस्तित्व ही क्या रहा? क्यों न राष्ट्र भी सामाजिक प्रण होनेसे साधारण प्रणोंकी तरह ज़रूरतके अनुसार बदलता रहे? रूसोके सदृश ही हाब्ज़के विचार हैं। सैम्युल पुफ्फनडार्फ, जोन्दलाक, कान्ट तथा फिच् आदि राजनीतिज्ञ सामाजिक प्रणसिद्धान्तमें किसी न किसी हदतक बह ही गये। सत्य है, मनुष्य अपनी परिस्थितिका पुत्र है। यदि प्राचीन राजनीतिज्ञोंने राष्ट्रके पूर्ण स्वरूपके सम्मुख व्यक्तिगत स्वतन्त्रताको सर्वथा ही भुला दिया तो नव्यराजनीतिज्ञोंने प्राकृतिक नियमके फेरमें पड़कर राष्ट्रको सामाजिक प्रण बताते हुए वैयक्तिक स्वतन्त्रतापर राष्ट्रकी पवित्र मूर्त्तिको बलि चढ़ा दिया। परन्तु दोनों ही सत्य पथसे भटक गये।

राज्य तथा राष्ट्रका पारस्परिक संबन्ध ।

आज़ कल विचारकोंने प्राकृतिक नियम सिद्धान्त (the theory of natural law) के मर्मको समझ लिया है। संवत् १७६७ (सन् १७४०) से पूर्वतक राज्य स्वेच्छाचारी थे। यही कारण है कि उन दिनों शक्तिसिद्धान्त (the theory of force) ही विशेष तौरपर मुख्य रहा। उन दिनोंमें लोगोंका विश्वास था कि राज्यको शासनका काम ईश्वरने सुपुर्द किया है। कभी कभी वे लोग यह भी समझ बैठते थे कि राजा ही सारे देशका मालिक है। समय आया जब कि इस प्रकारके अन्धविश्वास दूर होगये। राज्यों को भी जनताके हित तथा जनताके नियमोंके अनुसार काम करनेके लिए बाधित होना पड़ा। कान्ट तथा विल्हलमवान हम्बोल्टने यह बातकी उद्घोषित की कि राज्यका मुख्य कर्त्तव्य यह है कि वह राष्ट्रीय नियमोंका भंग न करे। जर्मनीको स्वतन्त्र करनेकी फ़िक्रमें फ़िचने राज्यकी अपेक्षा राष्ट्रको उत्कृष्ट प्रकट किया। परन्तु अन्य जर्मन दार्शनिकोंने उसका साथ न दिया। राज्यके अत्याचारों तथा स्वेच्छाचारपूर्ण व्यवहारोंसे बचनेके उद्देश्यसे लोगोंने ऐसे नये २ विचारोंको प्रकट किया जिनके अनुसार राज्य एक प्रकारकी शासक संस्था ही रह जाती थी और नियामक तथा निर्णायकशक्तिसे उसका सम्बन्ध कट जाता था। कुछ लोग ऐसे भी थे जो राज्यकी दिव्य प्रतिमाको चूर चूर करना उचित न समझते थे और शिक्षा, आर्थिक कार्य, व्यापार व्यवसाय, जातीयताकी उन्नतिमें राज्यका हस्तक्षेप नितान्त आवश्यक मानते थे। वस्तुतः राष्ट्रशरीरीके स्थिरता तथा

उन्नति दो धर्म्म हैं। इन्हींके अनुसार राज्यनियमविज्ञान [Public Law] तथा राजनीतिशास्त्र [Politics] दो शास्त्र हैं। न्याय तथा राष्ट्रहितमें जो पारस्परिक सम्बन्ध है वही सम्बन्ध इन दोनों शास्त्रों तथा दोनों धर्मोंमें है। यही इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि राज्यका मुख्य कर्त्तव्य राष्ट्रीय नियमोंके अनुसार चलते हुए राष्ट्रका हित करना है। रोमन लोगोंने इसी बातको समझकरके अपने प्रधान शासकोंका मुख्य कर्त्तव्य राष्ट्रका हित और न्यायाधीशोंका कर्त्तव्य राजनियमोंकी रक्षा प्रकट किया था।

आजकल ऐतिहासिक संप्रदायके लोगोंने राष्ट्रके सात्मिकवादको एक नया रूप दिया है। इनसे पूर्व भी बहुतसे लोग ऐसा अनुभव कर चुके थे। प्रुशियाके फ्रेडरिक् दि ग्रेटने स्पष्ट शब्दोंमें एक स्थानपर लिखा है कि जिस प्रकार मनुष्य उत्पन्न होता है, कुछ समय तक जीवित रहता है और फिर बीमारी या बुढ़ापेसे मृत्युको प्राप्त होता है, उसी प्रकार राष्ट्र प्रगट होते हैं, बढ़ते हैं और अन्तमें नष्ट हो जाते हैं। चिरकाल तक राजनीतिज्ञोंका सात्मिकवादकी ओर ध्यान न गया। यही कारण है कि सात्मिकवाद ऐतिहासिक संप्रदायका आविष्कार समझा जाता है। प्राकृतिक नियमके अन्धभक्तोंने 'राष्ट्रकी' कतरव्योंतको एक प्रकारका खिलवाड़ समझ लिया था और इसी लिए देरतक अपने उच्च पदपर स्थित न रह सके। ऐतिहासिक संप्रदायवालोंने इससे विपरीत राष्ट्रको देशरक्षा तथा वंशानुक्रम [hereditary] से इस प्रकार घनिष्ठ तौरपर जोड़ दिया कि राजनीतिज्ञोंकी दृष्टिमें वे सिद्धान्तके साथ साथ स्वयं भी गिर गये।

वर्त्तमान जर्मन राजनीतिज्ञोंने राजनीतिशास्त्रको बहुत ही अधिक उन्नत किया। महाशय हैगलने अपने राज्यनियम सिद्धान्त [the theory of Law] नामक ग्रन्थमें राष्ट्रोंके उदयपर विस्तृत तौरपर लिखा और अन्तमें वह इस विचारपर पहुंचा कि जो कुछ मौजूद है वह सबका सब अविवेकका परिणाम नहीं कहा जा सकता है। यही कारण है कि उसने एकतन्त्र राज्यका पोषण किया और प्रतिनिधितन्त्र राज्यका विशेष तौरपर पक्ष न लिया। हैगल राष्ट्रका शरीर तथा चेतन न समझता था। वह इसको सामाजिक इच्छाका प्रतिबिम्ब या परिणाम मानता था। फ्रेडरिक जे स्टाल [Fr. je Stole] ने हैगलका विरोध किया और प्राकृतिक नियमवादियोंके विचारोंका भी पूरी तरहसे मर्दन किया इसने राजनीतिशास्त्रको कई कदम आगे बढ़ा दिया। आजकल इसके ग्रन्थोंका विशेष तौरपर मान नहीं है, क्योंकि इसके ग्रन्थोंमें स्थान स्थानपर ईसाई धर्म्मकी छाप पड़ी है।

वर्त्तमान जर्मन राजनीतिज्ञोंका विचार।

सौभाग्यसे अब जर्मनीमें दार्शनिकों तथा राजनीतिज्ञोंका पूर्ववत् विरोध नहीं रहा। संवत् १८९७ (सन् १८४०) में ही इस विरोधका अन्त हो गया। तबसे आजकल विचारक लोग कल्पना तथा इतिहास दोनोंका ही राजनीतिमें सहारा लेते हैं। आजकल कई तरीकोंसे राजनीतिमें विचार किया जाता है। यह इस बातका चिन्ह है कि लोगोंका ज्ञान पूर्वापेक्षा बहुत ही अधिक विस्तृत हो गया है।

जर्मनीमें दार्शनिकों तथा ऐतिहासिक संप्रदायवादियों-का संमिलन।

यूरोपमें जातीयताका भाव बहुतही अधिक बढ़गया है। राजनीतिज्ञोंके सम्मुख राष्ट्रका जातीय रूप ही विशेष तौरपर रहता है। इटली, फ्रांस, अमेरिका, इंग्लैण्ड, हालैण्ड आदि सभी देशोंके विचारक दिनपर दिन राजनीतिमें अधिक अधिक रुचि प्रगट कर रहे हैं। सौभाग्यकी बात है कि भारत वर्षमें श्रीप्रमथनाथ बनर्जी, श्रीकाशी प्रसाद जायसवाल, श्रीविनय कुमार सरकार, श्रीराधा कुमुद मुकुर्जी आदि अनेक महाशय भारतके प्राचीन राजनीतिशास्त्र तथा राजनीतिक दशाकी पर्य्यालोचनामें अग्रसर हुए हैं। इन लोगोंका श्रम बहुतही अधिक सराहनीय है।

सातवां परिच्छेद।

प्रभुत्व-शक्ति (Sovereignty)

§५०. *प्रभुत्वशक्तिका स्वरूप।*

नव्य समाज नाना विध संगठनोंसे परिपूर्ण है। श्रम मुद्रा, व्यापार, व्यवसायसे लेकर शिक्षण मुद्रण आदि सभी कामोंमें किसी न किसी प्रकारका संगठन अवश्य मौजूद है। श्रम समिति, व्यावसायिक समिति, ट्रस्ट, पूल, कटल, ब्रह्म समाज, देवसमाज, आर्य्यसमाज आदि इसीके उदाहरण हैं। राष्ट्र भी एक संगठन है। प्रश्न उठता है कि उपर्युक्त संगठनों से राष्ट्र रूपी संगठनका क्या भेद है? इस प्रश्नको सरल करनेसे पूर्व प्रभुत्व शक्ति (sovereignty) का निरूपण अत्यन्त आवश्यक प्रतीत होता है। इसी निरूपणसे यह भी स्पष्ट हो जायगा कि नागरिकोंका स्वराष्ट्रसे, राष्ट्रीय प्रभुत्व शक्ति का वैयक्तिक स्वतन्त्रतासे और एक राष्ट्रका दूसरे राष्ट्रसे पारस्परिक सम्बन्ध क्या है? राज्य नियमोंका स्वरूप दिखाने में भी इससे पर्य्याप्त सहायता मिलेगी।

प्रभुत्व शक्ति नव्य राजनीति शास्त्रका प्राण है। इसीपर राज्य नियमों तथा अन्तर्जातीय सम्बन्धोंका प्रचलित रहना निर्भर रहता है। यह पूर्वमें दिखाया जा चुका है कि 'स्थान विशेषके संगठित समाजका नाम राष्ट्र है'। इसीसे यह भी स्पष्ट है कि राष्ट्रकी उत्पत्ति तभी संभव है जब कि समाज

इतना संगठन हो कि वह राज्य कायम कर सके, कानूनोंको चला सके और अपने संगठनको देर तक स्थित रख सके। पराधीन समाजमें 'राष्ट्र' की स्थिति कहां? सबसे बड़ी बात तो यह है कि समाजमें ऐसे पुरुष होने चाहिये जो कि नागरिकोंको अपनी आज्ञाओंपर बलात् चला सकें। यही लोग राष्ट्रके शासक या प्रभु और इनकी आज्ञा ही राज्यनियम है। इनको प्रभुत्वशक्ति अपरिमित तथा निर्बाध होती है। यदि कोई संस्था इनकी प्रभुत्व शक्तिकी बाधक हो तो वस्तुतः राष्ट्रका प्रभु उसी संस्थाको और उसीकी संचालक शक्तिको राष्ट्रकी प्रभुत्वशक्ति समझना चाहिये। प्रभुत्वशक्तिके विचारसे राष्ट्रका स्वरूप निम्न प्रकारसे दिखाया जा सकता है[१]।

(क) अन्तरीय तौरपर—राष्ट्रकी प्रभुत्व शक्ति संपूर्ण नागरिकोंके सारेके सारे संगठनोंपर अपरिमित तथा निर्बाध होती है। अधिकारों तथा प्रणोंका स्रोत राष्ट्र ही है। यही कारण है कि राष्ट्रके विरुद्ध व्यक्तिगत अधिकारों तथा प्रणोंकी कुछ भी सत्ता नहीं है। यदि एक नागरिक दूसरे नागरिकके खास खास मामलोंमें हस्तक्षेप नहीं कर सकता तो इसका मुख्य कारण राष्ट्रकी प्रभुत्व शक्तिको ही समझना चाहिये। 'राज्य नियम अच्छा है या बुरा है' यह विचार राज्य नियम प्रतिपालनमें बाधक नहीं हो सकता। राष्ट्रकी

---

(१) Gettell Introtoduction Politcial Science. (1910). p p. 93-94
Leacock: Elements of political Science. (1913 p. p. 52-53.

इच्छापर चलनेमें प्रत्येक नागरिक बाधित है। अनन्त शक्ति होते हुए भी राष्ट्र अपनी सारीकी सारी शक्तिका प्रयोग नहीं करता है। अपनी बहुतसी शक्ति यह दूसरोंको भी दे देता है। इसका यह तात्पर्य नहीं कि वह लोग राष्ट्रद्वारा दी हुई शक्तिपर अपना किसी प्रकारका भी अधिकार प्राप्त कर सकते हैं।

जब कभी राष्ट्र अपनी शक्तियाँ दे देता है तो उसको राज्य नियमोंके अनुसार ही उन शक्तियोंको लौटाना पड़ता है। राष्ट्र शासकोंके ऊपर है। शासक वही काम कर सकते हैं जो कि राष्ट्र चाहता हो। राष्ट्र द्वारा दिये गये वैयक्तिक अधिकारोंमें जब किसी प्रकारकी अदल-बदलकी जरूरत होती है तो शासक लोग राष्ट्रको ही प्रेरित करते हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि अन्तरीय तौरपर राष्ट्रकी शक्ति अपरिमित तथा पूर्ण स्वतन्त्र है[२]।

(ख) बाह्य तौरपर—अन्य राष्ट्रोंके हस्तक्षेपसे राष्ट्रकी प्रभुत्व शक्तिका सुरक्षित रहना आवश्यक है। जहां यह बात नहीं है वहां राष्ट्रको पराधीन समझना चाहिये। बहुत बार अन्तर्जातीय नियमों तथा सन्धियोंके अनुसार राष्ट्र चलते हैं परन्तु इससे उसकी प्रभुत्व शक्तिपर किसी प्रकारकी भी बाधा नहीं पड़ती, क्योंकि उनके मानने या न माननेमें

(२) Gettell: Introduction to Political Science (1910) pp. 94–95.
Willoughby. the Native of the State. pp. 181–183.

भी राष्ट्र स्वतन्त्र हैं राष्ट्र उपनिवेशोंको पूर्ण स्वराज्य दे सकते हैं और अन्तःीय राष्ट्रोंको अमरीकाके सदृश अन्तरीय शासन में बहुत कुछ स्वाधीन कर सकते हैं। इस पर भी उनको प्रभुत्वशक्ति ज्योंकी त्यों बनी रहती है क्योंकि उपर्युक्त कार्यों के करने या न करनेमें कोई भी उनको बाध्य नहीं कर सकता।

राष्ट्रकी प्रभुत्व शक्ति विभक्त नहीं की जा सकती। प्रभुत्व शक्तिके काममें लानेके अधिकारको भिन्न भिन्न राजकीय विभागोंमें बांटते हुए भी राष्ट्रके हो सदृश प्रभुत्व शक्ति रूपी पिण्ड चूर चूर नहीं किया जा सकता। राष्ट्रकी सत्ता वहां ही है जहां प्रभुत्व शक्ति पूर्णरूपेण विद्यमान हो। यदि भिन्न २ राष्ट्रोंमें प्रभुत्व शक्ति बंटी हो तो वहां एकके स्थानपर बहुत राष्ट्र समझने चाहिये। राज्य नियमोंके अनुसार राष्ट्रको प्रभुत्व शक्ति पूर्ण, अपरिमित तथा अभेद्य है (३)

§५१. *प्रभुत्वशक्ति तथा राज्य-नियम।*

राष्ट्रकी प्रभुत्व शक्तिका प्रश्न बड़ा पेचीदा है। चिरकालसे इसपर विवाद चला आ रहा है और अभी तक ज्योंका त्यों बना है। प्रोफ़ेसर बर्गसके इस विचारको—कि मैं व्यक्ति या व्यक्ति संघपर राष्ट्रकी प्रभुत्व शक्तिको अपरिमित, स्वेच्छापूर्ण तथा निर्बाध समझता हूं—प्रायः राजनीतिज्ञ सहसा ही स्वीकार करनेसे हिचकते हैं। परन्तु इसमें हिचकनेकी कोई विशेष बात नहीं मालूम पड़ती, क्योंकि समा-

* Leacock, Elements of Political Science. P.P.52-55.

जके संगठनपर ही राष्ट्रका आधार है। यह संगठन तभी संभव है जब कि राष्ट्रका नियन्त्रण तथा व्यक्तियों द्वारा राष्ट्र की आज्ञाका प्रति पालन यह दोनों बातें पूर्ण रूपसे विद्यमान हों। यदि व्यक्ति राष्ट्रकी आज्ञापर न चलते हों तो राष्ट्रकी सत्ता नहीं मानी जा सकती। राष्ट्रकी स्थिति तभी तक है जब तक कि व्यक्ति राष्ट्रकी आज्ञापर चलते हैं। बहुतसे स्थानोंमें राष्ट्रकी प्रभुत्व शक्ति ही काममें लाते हैं। उनका नियन्त्रण न्याययुक्त हो या अन्याययुक्त हो, लोग सर्व सम्मतिसे या दल विशेषकी बहुसम्मतिसे चुने गये हों-यदि उनकी आज्ञाका प्रतिपालन होता है तो राष्ट्रकी स्थितिका अपलाप नहीं किया जा सकता। उनकी आज्ञाका नाम ही राज्यनियम है।

यह पूर्व ही लिखा जा चुका है कि राष्ट्रकी प्रभुत्व शक्ति का कोई भी प्रतिबन्ध नहीं हो सकता। आज कल प्रायः राष्ट्रकी नियामक सभामें ही सम्मिलित रूपसे राष्ट्रकी प्रभुत्व शक्तिका आधार है। वह प्रत्येक प्रतिबन्ध तथा बाधाको हटा सकती है। महाशय आस्टिनके राज्यनियम सम्बन्धी लक्षणसे यही बात और भी अधिक स्पष्ट हो जाती है। उसका कथन है कि 'यदि कोई अपूर्व शक्ति-संपन्न पुरुष स्वयं किसीके भी अधीन न होते हुए, अपनी आज्ञाओंपर किसी मनुष्य समाजको चलाता है तो वही पुरुष राजा या प्रभु और वही मनुष्य समाज राजनीतिक स्वतन्त्र समाज हुआ। इसीसे स्पष्ट है कि 'नियम तथा आज्ञा प्रतिपालन' यह दो ही राष्ट्रकी कसौटी हैं। आज्ञा प्रतिपालनके लिए निर्दिष्ट वाक्य ही राज्य नियम है। राष्ट्रने व्यक्तियोंको जो जो स्व

न्त्रता तथा अधिकार दिये हैं उनकी वहां वैयक्तिक स्वतन्त्रता तथा वैयक्तिक अधिकार समझने चाहिये। राज्य नियमोंके अनुसार इनसे भिन्न भिन्न राष्ट्रके विरुद्ध वयक्तिक स्वतन्त्रता तथा वयक्तिक अधिकार कोई वस्तु नहीं।"*

§५२. *प्रभुत्वशक्तिके चिन्ह तथा गुण*

समाजमें राष्ट्र रूपी सगठनसे बढ़ कर कोई संगठन नहीं। अन्य साधारण संगठनोंसे इसकी प्रभुत्वशक्ति बहुत बढ़ी चढ़ी है सबसे बड़ी बात तो यह है कि समाजके सम्पूर्ण संगठनोंकी प्रभुत्व शक्तिका स्रोत राष्ट्रकी प्रभुत्व-शक्ति ही है। राजनीतिज्ञ इसके निम्नलिखित चिन्ह तथा गुण प्रगट करते हैं।

(क) महत्व—संगठित समाज या जातियां अपने महत्व-का विशेष ध्यान रखती हैं। वह अपनी प्रभुत्वशक्तिका अपमान सहन नहीं कर सकतीं। राष्ट्रकी प्रभुत्वशक्ति, इज्जत तथा आज्ञाके विरुद्ध कार्य्योंको रोममें बड़ा भारी अपराध समझते हैं।

(ख) स्वातन्त्र्य—विदेशीय राष्ट्रोंसे राष्ट्रकी प्रभुत्व शक्तिका स्वतंत्र होना आवश्यक है। यदि भारत जैसे किसी राष्ट्रको दूसरोंकी प्रभुत्वशक्तिके सामने सिर झुकाना पड़े तो उसकी प्रभुत्वशक्तिको नष्ट और उसको पराधीन समझना चाहिये।

(ग) राज्य संशोधन—प्रतिनिधितन्त्र राज्योंमें प्रभुत्व शक्तिका स्रोत जनता होती है। यही कारण है कि राज्य

(3) Gettell Introduction to Political Science P. 95

संशोधनमें जनताकी प्रभुत्वशक्तिका प्रतिबन्ध रहित होना आवश्यक है। इस प्रकारका अधिकार किसी एक व्यक्ति या दलके पास न रहकर संपूर्ण संगठित समाजके पास रहता है। इच्छा न होते हुए और आत्म-हननकी आशंका रखते हुए भी बुरेसे बुरे राज्य नियमका प्रति पालन व्यक्तियोंके लिये जरूरी है। यदि लोग ऐसा न करें तो राष्ट्रकी शान्ति स्थिरता तथा एकताका देरतक कायम रहना असम्भव है।

राज्य संशोधन Reform तथा राज्याक्रान्ति Revolution में बड़ा भेद है। राज्य संशोधन तभीतक है जबतक कि (१) संपूर्ण परिवर्तन प्रचलित राज्य नियमों तथा शासनपद्धतिको धाराओंके अनुसार ही किये जावें और (२) प्राचीन शासनपद्धतिकी आकृति तथा आधारको सर्वथा ही न पलट देवें। यदि यह बात न हो और शासनपद्धतिकी आकृति तथा आधार ही कुछ संशोधनोंके कारण पलटा जाय तो इसको राज्यक्रान्ति (Revolution) समझना चाहिये।

यदि परिवर्जित परिस्थितिके अनुसार राज्यका संशोधन निरन्तर न होता रहे तो राष्ट्रका जीवन तथा प्राण स्वरक्षित नहीं रह सकता। भारतके सदृश यदि किसी राष्ट्रकी जनताको इस नैसर्गिक अधिकारसे वञ्चित रखा जाय तो इसका यह तात्पर्य है कि राज्य उन्नतिका विरोधी है और राज्यक्रान्तिका बीज बो रहा है। जनताको राज्यक्रान्तिका अधिकार है या नहीं? यह एक विकट प्रश्न है, क्योंकि प्रचलित राज्यनियमोंके साथ 'राज्यक्रान्तिके अधिकार'का नैसर्गिक विरोध है। राजनीतिज्ञ राज्यक्रान्ति करनेमें जनताका अधिकार न मानते हुए भी इसको एक अवश्यंभावी ...

हासिक घटना समझते हैं, जोकि संशोधन या परिवर्तनके विरोधी राज्योंके समूल नाश करनेके लिये उत्पन्न होती है और राष्ट्रका जीवन स्वास्थ्यप्रद परिस्थितिमें रखनेका यत्न करती है। शासकोंका कर्तव्य है कि जनताकी इच्छाओंके अनुसार राज्यमें उचित परिवर्तन करते हुए राज्यक्रान्तिको न उत्पन्न होने दें।

राष्ट्रको स्थितिके नाशका ही यदि सन्देह हो तो जनताको यह अधिकार है कि वह राज्यक्रान्ति कर दे। राज्य तो राष्ट्रका एक अंग है। यदि राष्ट्ररूपी शरीरके नाशको ही संभावना हो तो राज्यरूपी अंगको काटकर संशोधन करना आवश्यक है। सारांश यह है कि राज्यक्रान्ति आपद्धर्म्म है। राज्यनियम तथा राज्य, शान्तिके लिये हैं न कि आपत्तिके लिये। नीबूर (Niebuhr) ने ठीक कहा है कि "आपद्धर्म्म की सत्ताका अपमान करना भयंकरसे भयंकर आत्याचारोंके लिए दरवाजा खोलना है। जब एक जाति पैरोंतले रोंदी जारही हो और अमानुषिक अत्याचारोंसे पीडित हो, स्त्री तथा पुरुषके अधिकारोंका जहां कोई ख्याल न हो, ऐसी भयंकर आपत्तिमें अत्याचारी राज्यके विरुद्ध राज्यक्रान्ति करनेसे बढ़कर कोई पुण्य नहीं, और जो इस सिद्धान्तको नहीं मानता उससे बढ़कर कोई पापी नहीं"।

(घ) नियम निर्माण—साधारण तौरपर राष्ट्रकी प्रभुत्वशक्तिका मुख्य चिन्ह नियामक शक्ति ही है। जो नियम बनाता है प्रायः राष्ट्रकी प्रभुत्वशक्ति उसीके पास रहती है।

(ङ) मुख्य शक्ति—प्रभुत्वशक्ति राष्ट्रकी संपूर्ण शक्तियोंमें मुख्य शक्ति है। शासनपद्धति तथा नियम निर्माणमें ही आजकल

प्रभुत्वशक्ति मुख्य तौरपर काममें आती है। एकतन्त्र राज्यमें राजा ही इस शक्तिका प्रयोग करता है। जातिका इसमें कुछ भी भाग नहीं होता।

(च) अनुत्तर दायित्व—प्रत्येक मनुष्य अपने कामोंके लिए उत्तरदायी है। प्राकृतिक घटनाओंके सन्मुख प्रत्येकको सिर झुकाना ही पड़ता है। यह होते हुए भी ऐसा कोई न्यायाधीश नहीं नियत किया जा सकता जिसके सन्मुख राष्ट्रको अपने कामोंका उत्तर देनेके लिए उपस्थित होना पड़े। यदि किसी एक राष्ट्रको दूसरे राष्ट्रकी अनुमतिके अनुसार अपनी प्रभुत्वशक्तिका प्रयोग करना पड़े तो उसको पराधीन ही समझना चाहिये। सारांश यह है कि राष्ट्रकी प्रभुत्वशक्ति पूर्ण स्वतन्त्र है। वह किसी भी कामके लिए किसीके प्रति उत्तर दायी नहीं है।*

§५३. प्रभुत्वशक्ति सिद्धान्तका उदय।

प्रभुत्वशक्तिका स्वरूप, गुण तथा चिन्ह दिखाया जा चुका है। इसीको प्रभुत्वशक्ति सिद्धान्तका नाम भी दिया जाता है। इस सिद्धान्तका प्रारम्भ १६ वीं सदीसे माना जाता है, क्योंकि इसी समय प्राचीन राजनीतिक संस्थाओंका ह्रास, जातीय राष्ट्रों तथा जातीय विचारोंका उदय प्रारम्भ हुआ था। राष्ट्रका वर्त्तमान प्रचलित विचार सामने रखते हुए यह कहा जा सकता है कि मध्यकालमें राष्ट्रोंकी सत्ता विद्यमान न थी, क्योंकि परिवारपर आश्रित एकता उस समय

* The Theory of the State by Bluntchli. Third Edition. P P. 506–510.

लुप्त हो चुकी थी और जातीय आधारपर नया संगठन गर्भावस्थामें था। वैयक्तिक परार्धानता तथा पारस्परिक प्रण ही संगठनका आधार था। रोमन साम्राज्यको सार्वभौम माननेसे और गृह्य तथा धार्मिक जीवनमें पोपका प्रभुत्व स्वीकार करनेसे यूरोपमें मध्यकालके अन्दर स्वाधीन तथा समान-अधिकार-युक्त राष्ट्रोंका उदय न हुआ। इसीके साथ ही साथ फ़्यूडलिज़्मके कारण भिन्न भिन्न व्यक्तियोंमें विभक्त राजनीतिक अधिकार, और जनता तथा राजनीतिज्ञोंका किसी एक अनन्तशक्ति संपन्न प्रकृतिके जटिल सार्वभौम नियमोंमें विश्वास, प्रभुत्वशक्तिकी अपरिमितशक्तियुक्त, सर्व बाधाओंसे स्वतन्त्र, अनुत्तरदायी नवीन दिव्य प्रतिमाको चिरकाल तक लोगोंके सामने न रख सका।

मध्यकालके अन्तमें यूरोपीय समाज गर्भावस्थासे निकलकर नये रूपमें प्रगट हुआ। धार्मिक युद्ध crusades तथा पारस्परिक संघर्षसे कुलीन लोग निःशक्त हो गये। व्यापार तथा नगरोंके बढ़नेसे अन्य बहुतसे लोग ताल्लुकेदारोंकी अपेक्षा अधिक समृद्ध हो गये। कुलीनों तथा ताल्लुकेदारोंकी दुर्बलतासे भिन्न भिन्न राजाओंने लाभ उठाकर अपूर्वशक्ति प्राप्त की। परन्तु कुछ ही समयके बाद यूरोपीय जनताने यह रहस्य जान लिया कि राजा प्रजाका स्वामी नहीं है। राष्ट्र ही शक्तिका स्रोत है। राष्ट्रकी कृपासे ही राजा शक्तिसंपन्न है। फ्रान्समें एकतन्त्र राज्यने नवीन रूप धारण किया। उसको न्याय संगत तथा ख्वाभाविक सिद्ध करनेके लिए बोदिनने सबसे पहले प्रभुत्वशक्ति सिद्धान्तका आविष्कार किया। उसने यह लिखा कि राष्ट्र ही नागरिकोंका

स्वामी है । उसकी प्रभुत्वशक्ति अपरिमित, पूर्ण, अभेद्य तथा स्वतन्त्र है । बोदिनके बाद राष्ट्रोंकी पृथक् सत्ता मानी जाने लगी । ग्रोटियसने अपने महाग्रन्थमें राष्ट्रका पृथक् अस्तित्व स्वीकार किया और प्रत्येक राष्ट्रोंको स्वतन्त्र तथा समान अधिकार वाला माना । इसी समयसे अन्तर्जातीय नियमोंने अपना रूप प्रगट किया । १९ वीं सदीके प्रारम्भमें जौन आस्टिनने अपने राजनीतिक विचारों तथा अध्ययनके कारण विशेष महत्व प्राप्त किया । इंग्लैण्ड तथा अमरीकाके अधिकांश विचारकोंपर उसकी छाप पड़ी । प्राकृतिक या नैसर्गिक नियमों (Natural laws) परसे विचारकोंकी श्रद्धा उठ गयी । प्रभुत्वशक्तिने अपना नवीन दिव्यरूप दिखाया । यही प्रभुत्वशक्ति सिद्धान्तका संक्षिप्त इतिहास है ।*

§५४ *प्रभुत्वशक्ति सिद्धान्तकी आलोचना*

प्रभुत्वशक्तिके उपर्युक्त स्वरूप तथा चिन्हको बहुतसे राजनीतिज्ञ स्वीकार नहीं करते । उनका ख्याल है कि राष्ट्रका यह अधिकार नहीं कि वह वैयक्तिक धर्म्म तथा वैयक्तिक जीवनमें हस्तक्षेप करे । सत्य है ! । परन्तु सबसे बड़ी कठिनाई तो यह है कि वैयक्तिक धर्म्म तथा वैयक्तिक जीवनका क्षेत्र इतना स्पष्ट नहीं कि आंख मूंदकर राष्ट्रकी प्रभुत्व-

---

*The Theory of the State by Bluntchli, Third Edition, P p. 493—496

Gettel: Introduction to Political Science, P P 95-97

Austin: Lectures on Jurisprudence.

शक्ति कुण्ठित की जासके। वैयक्तिक धर्म्म तथा वैयक्तिक जीवनका तात्पर्य क्या है? इसका निर्णय कौन करे? यदि इसके निर्णयमें प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्र किया जाय और उसी निर्णयके अनुसार प्रभुत्वशक्ति परिमित की जाय तो राष्ट्रकी शान्ति, स्थिरता, तथा सत्ता ही लुप्त हो सकती है। व्यक्तियोंकी इच्छाओं तथा विचारोंको पृथक पृथक रूपसे राष्ट्रका प्रभुत्वशक्तिका प्रतिबन्धक या बाधक माननेसे राज्य तथा राज्यनियमका अभाव होना और अराजकताका फैलना स्वाभाविक है। यदि इसका निर्णय जनताकी बहुसम्मतिपर छोड़ा जाय और जो निर्णय हो उसीपर व्यक्तियोंको चलनेके लिए बाध्य किया जाय तो राष्ट्रकी प्रभुत्वशक्तिका अपरिमित तथा प्रतिबन्ध रहित होना सिद्ध ही होगया। इस प्रकार उपर्युक्त आक्षेपका कोई मूल्य नहीं रहता।

राज्यनियमोंके अनुसार राष्ट्रकी प्रभुत्वशक्ति अपरिमित तथा अबाध्य है। वह कहां हस्तक्षेप करे और कहां न हस्तक्षेप करे, किन किन मामलोंमें नागरिकोंको स्वतन्त्रता दे, यह प्रभुत्वशक्तिके प्रयोग करनेवालोंपर निर्भर है। महाशय ब्लुन्टश्लीका मन्तव्य है कि "राष्ट्र सर्वशक्तिमान नहीं—क्योंकि बाह्य रूपसे अन्य राष्ट्रोंके सम्बन्धसे उसकी शक्ति प्रतिबद्ध है और अन्तरीय रूपसे उसकी आकृति ही ऐसी है और उसके अंगरूप व्यक्तियोंके अधिकार ही ऐसे हैं कि उसकी प्रभुत्वशक्ति अपरिमित नहीं कही जासकती।" यह नहीं माना जासकता, क्योंकि राजनियमोंके अनुसार राष्ट्रकी प्रभुत्वशक्ति अपरिमित ही है। वास्तवमें क्या होता है यह दूसरी

बात है । बैन्थमने यह कहकर कि 'विदेशीय राष्ट्रको संधियोंके द्वारा प्रत्येक राष्ट्रकी प्रभुत्वशक्ति प्रतिबद्ध है'—ब्लुन्टश्लीके सदृश ही भूलकी। असली बात तो यह है कि जिस प्रकार रेखागणितमें बिन्दुको लम्बाई चौड़ाईसे शून्य माना है यद्यपि प्रयोगस्थलमें ऐसा नहीं होता, उसी प्रकार राजनीति शास्त्रमें 'प्रभुत्वशक्ति अपरिमित स्वतन्त्र तथा प्रतिबन्धरहित मानी गयी है ।

प्रभुत्वशक्ति-सिद्धान्तपर सबसे अधिक विचारपूर्ण आक्षेप सर हैनीमेनका है। मेन सात वर्षों तक लगातार भारतवर्षमें रहा। नियामक सभाका सभ्य होनेसे उसको भारतकी प्राचीन शासनपद्धतिका पूर्ण तौरपर ज्ञान होगया। भारतमें प्राचीनकालसे ब्रिटिश राज्य पर्यन्त राज्यनियम नहीं बनाये जाते थे। देशप्रथा तथा प्राचीन राज्यनियम ही शासनके आधार थे । स्वेच्छाचारीसे स्वेच्छाचारी भारतीय राजा नये नये मनमाने ढंगके कानून बनाकर जनतापर अत्याचार करना न जानते थे। रणजीत सिंह जैसे प्रबल निरंकुश स्वेच्छाचारी राजाके विषयमें मेनने लिखा है कि वह छोटेसे छोटे अपराधपर लोगोंको मृत्यु दण्ड दे देता था। यह होते हुए भी उसने एक भी ऐसी आज्ञा नहीं निकाली जिसे हम राज्यनियम कह सकें। जो कानून चिरकालसे पञ्जाबमें प्रचलित थे उन्हींके अनुसार न्यायाधीश अपराधका निर्णय करते थे। सारांश यह है कि भारतमें राष्ट्रकी प्रभुत्वशक्ति इस हद्दतक स्वेच्छापूर्ण तथा अपरिमित कभी भी न हुई कि वह प्राचीन प्रथाओं तथा प्राचीन राज्यनियमोंका कतरव्योंत कर सके। अधिक क्या

यूरोपीय राष्ट्रोंमें अभी तक पुरानी प्रथाएं, पुराने राज्यनियम तथा अधिकारपत्र राष्ट्रकी प्रभुत्वशक्तिको परिमित कर रहे हैं। इन सब बातोंको सामने रखते हुए मेनका विचार है कि राष्ट्रकी प्रभुत्वशक्तिको अपरिमित, प्रतिबन्धरहित तथा स्वतन्त्र मानना सत्यका अपलाप करना है।

मेनके आक्षेपकी प्रबलताका अनुमान इसीसे किया जासकता है आस्टिन तकको यह कहना पड़ा कि 'जो जो बातें पुराने समयसे अबतक प्रचलित हैं और न्यायाधीशोंको जिनका ख्याल रखकर फैसला करना पड़ता है—वे सब एक प्रकारसे राष्ट्रकी प्रभुत्वशक्तिके विरुद्ध न होनेसे ही प्रचलित हैं। राष्ट्र उनको पसन्द करता है इसलिए उनका अस्तित्व है। पुराने नियमोंका प्रचलित होना पार्लमेन्टकी प्रभुत्वशक्तिको परिमित या प्रतिबन्ध युक्त नहीं बना सकता। क्योंकि पार्लमेण्ट इनमें यथेच्छ परिवर्त्तन कर सकती है और अबतक करती भी रही है।' पञ्जाबके महाराज रणजीत सिंहका दृष्टान्त प्रभुत्वशक्ति सिद्धान्तके खण्डनमें असमर्थ है। क्योंकि रणजीत सिंह पञ्जाबके प्राचीन नियमों तथा देश प्रथाओंको मनमाने तौरपर बदल सकता था। यदि वह ऐसा करनेसे डरता था तो इसका मूल कारण उसका धार्मिक विश्वास ही था।

बहुतसे राजनीतिज्ञोंका विचार है कि आस्टिनका उपर्युक्त प्रभुत्वशक्ति सिद्धान्त वर्तमान राष्ट्रोंके लिए ही सत्य है। प्राचीन तथा मध्यकालीन राष्ट्रोंके लिए वह ठीक नहीं है। इस विचारको सर जेम्स स्टीफ़नने यहां तक बढ़ाया है कि प्रभुत्वशक्ति सिद्धान्तको रेखा तथा बिन्दुके लक्षणके

सदृश ही कल्पित मानाहै। उनका कथन है कि जिस प्रकार-पूर्ण परिधि, बाधा रहित गति, या लम्बाई चौड़ाई रहित बिन्दु, विचारको सुगमताके लिये मान लिया गया है उसी प्रकार प्रभुत्वशक्तिकी अपरिमित ? स्वतंत्र तथा प्रतिबन्ध कल्पना रहित की गयी है। वास्तविक जगत्‌में प्रभुत्वशक्ति अपने संपूर्णगुणों तथा चिन्होंके साथ कहींपर भी नहीं दिखायी पड़ती है। इस संसारमें न कोई पूर्ण स्वतंत्र, प्रतिबन्ध रहित, अपरिमितशक्ति सम्पन्न, स्वेच्छाचारी प्रभुत्व और न कोई ऐसी प्रभुत्वशक्ति ही है जो कि निर्बाध तथा अपरिमित हो।

कई एक लेखकोंने मेनके आक्षेपसे बचनेके लिए राष्ट्र तथा राज्यनियमके लक्षणको बदल दिया है। दृष्टान्त स्वरूप डाकृर वुड्रो विल्सनने लिखा है कि ' स्थिर विचारों तथा स्थिर स्वभावोंका वह भाग राज्यनियम हैं जिसको राजकीय शक्ति तथा राजनीतिक अधिकारसे प्रचलित किया गया हो। नये नये राज्यनियमोंको बनाना इसी क्रमका एक भाग हैं। राज्यनियम संगठित समाजकी इच्छाके ही परिणाम हैं। राज्यनियमोंको एकमात्र राजकीय या नियामक शक्तिका चिन्ह समझना भूल करना होगा, क्योंकि सदाचारके नियम तथा न्यायाधीशोंके द्वारा नियमोंकी व्याख्या भी राज्यनियमका रूप धारण कर सकती है। राष्ट्रकी आज्ञा ही राज्यनियम है' यह सूत्र पूर्ण रूपसे सभ्य 'राष्ट्रोंमें लग सकता है। हमारी समझमें विल्सनका लक्षण भी इसीके अंतर्गत हो जाता है, क्योंकि जो बातें वह अपने नये लक्षणसे सिद्ध करना चाहते हैं वह इस लक्षणसे भी सिद्ध हो जाती हैं।

§५५ सामयिक राष्ट्रोंमें राष्ट्रकी प्रभुत्वशक्तिका स्थान।

सामयिक राष्ट्रोंकी शासनपद्धतियोंसे भिन्न भिन्न राष्ट्रों की प्रभुत्वशक्तिका स्थान सुगमतासे ही जाना जा सकता है। दृष्टान्त स्वरूप ब्रिटिश साम्राज्यको ही लीजिये। उसकी प्रभुत्व शक्तिका केन्द्र पार्लयामेन्ट है (राजा, लार्ड्ज़ तथा कामन्ज़के सम्मिलित रूपका नाम ही पार्लमेन्ट है)।

आंग्ल पार्लमेन्टकी शक्ति अपरिमित तथा प्रतिबन्ध रहित है। यह प्रत्येक प्रकारका राज्यनियम बना सकती है। कोई भी ब्रिटिश न्यायालय पार्लमेन्टद्वारा पास किये गये राज्यनियमको रद्द नहीं कर सकता है। देश प्रथा, प्राक्कालीन राज्यनियम, लिखित स्वाधिकार पत्र (मैग्नाकार्टा) आदि कोई भी पार्लमेन्टकी अपरिमित शक्तिको कम नहीं कर सकते। पार्लमेन्टके सन्मुख वैयक्तिक स्वतन्त्रताका पृथक अस्तित्व नहीं। किसी भी उपनिवेश या स्थानीय राज्यका ऐसा स्वराज्य नहीं, जिसको कि ब्रिटिश पार्लमेन्ट मिटा न सकती हो।

ब्रिटिश शासनपद्धति सरल है। अतः वहां प्रभुत्वशक्तिका प्रश्न बहुत टेढ़ा है परन्तु अमरीकन शासन पद्धतिमें यह बात नहीं। उसमें प्रभुत्वशक्तिका स्थान गुप्त है। अमरीकन राष्ट्रात्मक शासनपद्धति (Fedsral Government) में संगठित राष्ट्रोंकी नियामक तथा शासक शक्तियां परिमित हैं, क्योंकि ब्रिटिश पार्लमेन्टके सदृश अमरीकन कांग्रेस मनमाना कानून नहीं बना सकती। अमरीकन न्यायालय प्रत्येक राज्यनियमपर विचार कर सकते हैं और

यदि वह अमरीकन शासनपद्धतिकी नियत धाराओंके विपरीत हो तो उसको रद्द भी कर सकते हैं। दृष्टान्तस्वरूप मुख्यराज्यका नियत कर सम्बन्धी राज्यनियम अपने अनुसार चलनेके लिए किसी भी अमरीकनको बाध्य नहीं कर सकता। सारांश यह है कि अमरीकामें प्रधान, कांग्रेस तथा राष्ट्रीय राज्योंमेंसे किसीके पास भी पूर्णरूपसे राष्ट्रकी प्रभुत्वशक्ति नहीं है। परन्तु गम्भीर विचार करनेपर अमरीकाकी प्रभुत्वशक्तिका छिपा हुआ स्थान भी जाना जा सकता है।

वास्तविक बात तो यह है कि अमरीकाकी प्रभुत्वशक्ति उस सभाके पास है जो कि अमरीकन शासनपद्धतिकी नियत स्थिर धाराओंको बदल सकती है। यद्यपि इस सभाकी सत्ता पूर्ण रूपसे प्रत्यक्ष नहीं है तथापि इसकी प्रभुत्वशक्तिका अपलाप नहीं किया जा सकता। कांग्रेसके दो तिहाई सभ्य या तीन चौथाई नियामकों द्वारा किये गये विशेष सभाके सभ्य अमरीकन शासनपद्धतिकी नियत धाराओंको बदल सकते हैं और अमरीकन न्यायालय उनकी सम्मतियोंपर किसी प्रकारकी भी बाधा नहीं डाल सकते इसी विशेष सभामें अमरीकाकी प्रभुत्वशक्ति है और वह अपरिमित है। इसी प्रकार फ्रांसमें प्रधान सिनेट तथा प्रतिनिधि सभामेंसे किसीके पास भी राष्ट्रकी प्रभुत्वशक्ति नहीं है। फ्रांसकी शासनपद्धतिकी नियत धाराओंके अनुसार इन सभोंकी शक्ति परिमित है। वस्तुतः फ्रांसकी प्रभुत्वशक्ति सीनेट तथा प्रतिनिधि सभाकी सम्मिलित बैठकमें (जो कि जातीय सभाके नामसे पुकारी जाती है।) यही

जातीयसभा फ्रांसकी प्रभुत्वशक्तिका केन्द्र है। इसकी शक्ति अपरिमित है।

§ ५६ राजनीतिक प्रभुत्वका सिद्धान्त ।

प्रभुत्वशक्तिका स्वरूप तथा स्थान राज्यनियमानुसार क्या है इसपर प्रकाश डाला जा चुका है। अब यह दिखानेका यत्न किया जावेगा कि आधुनिक राष्ट्रोंमें वस्तुतः प्रभुत्वशक्ति किसके पास रहती है। स्वेच्छाचारी राज्योंमें राजा ही सर्वशक्तिमान् तथा राष्ट्रका प्रभु होता है। परन्तु प्रायः यह देखनेमें आया है कि राजा भोगविलासमें मस्त होनेसे अपनाकाम मन्त्रियोंपर छोड़ देता है और इस प्रकार मन्त्री ही राष्ट्रका प्रभु तथा संचालक बन जाता है। कभी कभी पुरोहित लोग भी अपनी धार्मिक शक्तिके बलपर राजाको कठपुतला बना देते हैं और राष्ट्रको प्रभुत्व-शक्तिको स्वयं ही काममें लाते हैं। प्रतिनिधितन्त्रराज्योंमें देखनेमें तो प्रतिनिधि-योंका राज्य होता है परन्तु वस्तुतः उनके पास निर्वाचनके सिवाय और कुछ भी नहीं होता है। निर्वाचित होनेके बाद प्रतिनिधि स्वेच्छाचारी हो जाते हैं और प्रायः मनमाने ढंगपर चलने लगते हैं। सबसे बड़ी बात तो यह है कि प्रतिनिधि निर्वाचनमें धनशक्तिका प्रयोग होनेसे धनिक या कुलीन लोग ही प्रतिनिधि चुने जाते हैं। इससे राष्ट्रकी प्रभुत्वशक्ति चिर-काल तक एक ही दल या एक ही श्रेणीके लोगोंके पास रहती है। आधुनिक राष्ट्रोंमें पूजीपतियोंको विशेष शक्ति प्राप्त है। इससे राष्ट्रकी प्रभुत्वशक्ति श्रमियोंके स्वार्थमें न प्रयुक्त होकर राष्ट्रोंके धनशोषणमें ख़र्च की जा रही है। साम्राज्य

वादकी ओर क्यों यूरोपीय राष्ट्र झुक रहे हैं इसका रहस्य भी इसीमें छिपा है। प्रोफेसर डीसी* ने कहा है कि 'राज्यनियमोंके अनुसार जो राजा समझा जाता है प्रायः वह किसी दूसरेका कठपुतला होता है। जैसे दूसरा उसको नचाये वैसे ही उसको नाचना पड़ता है। प्रोफेसर सिज्विकने† ऐसे राजाके पता लगानेका यत्न किया है जो कि राज्यनियमोंके द्वारा राजा होते हुए भी वास्तवमें भी राजा हो। उनका कथन है कि 'वह स्वेच्छाचारी प्रधान (Irresponsible Dictator) जो कि जनसभासे निर्वाचित हो और पुनर्निर्वाचनका अनिच्छुक हो, उसीको राज्यनियम-प्रतिपादित तथा वास्तविक राजा या प्रभु समझना चाहिये। परन्तु यदि वह पुनर्निर्वाचनका इच्छुक हो तो उसको जनसभाकी इच्छाका विशेष तौरपर ध्यान रखना पड़ेगा। इस हालतमें उसको मुख्य शासक या प्रभु समझना गलती करना होगा'। इस प्रकार स्पष्ट‡ हैं कि राज्यनियमोंके अनुसार एक व्यक्ति या सभाके पास प्रभुत्वशक्तिके होते हुए भी वास्तवमें वह राष्ट्रका प्रभु नहीं होता। कहीं पुरोहित, कहीं सेनापति या पूंजीपति, कहीं कुलीन या दर्बारी और कहीं पुरोहित या राजधानीके लोग ही राष्ट्रके वास्तविक प्रभु होते हैं, जब कि राज्यनियमोंके अनुसार कोई दूसरा ही व्यक्ति प्रभुपदपर शोभायमान होता है। पिछली सदीसे यूरोपीय राष्ट्र प्रतिनिधितंत्र राज्य पद्धतिमें दिन पर दिन प्रविष्ट होते गये। रूसो तथा फरांसीसी

* A. V. Dicey, Law of the Consti tution.

† Sidgwick, Elements of Politics, chop. XXXI.

‡ Leacock, Elements of Political Science. p.p. 63-

राज्यक्रांतिके बाद यह विचार लोगोंमें फैल गया कि राजनीतिक प्रभुत्व वस्तुतः जनताके पास रहता है * । उनका कथन है कि 'प्रभुत्व उसीका होता है जो कि शक्तिशाली है । जो आज्ञाका प्रतिपालन करा सके और राष्ट्रको नियन्त्रित रखे उसीको राष्ट्रका प्रभु समझना चाहिये । अति प्राचीनकालमें राजा ही राष्ट्रका प्रभु था । कालान्तरमें संगठन, चातुर्य तथा सैनिकबलसे कुछ लोग राष्ट्रके स्वामी बन बैठे । आजकल सब साधारणमें राजनीतिक जीवन तथा धनके बढ़नेसे जनताका बहुभाग ही राष्ट्रका स्वामी है । यह निर्वाचनके द्वारा ही काममें लाया जाता है । सारांश यह है कि प्रभुत्वशक्तिका वास्तविक स्रोत तथा आगार जनता है † ।

परन्तु यह विचार सुगमतासे नहीं माना जा सकता । प्रश्न जो कुछ है वह यही है कि 'जनता'का अर्थ ही स्पष्ट नहीं । जनताका क्या तात्पय है ? यदि इसका तात्पर्य राष्ट्रके अंगभूत व्यक्तियोंसे लिया जाता हो तो इसका दूसरा मतलब यह हुआ कि राष्ट्र शरीरोंकी शक्ति राष्ट्र शरीरीके चूर्णीभूत पृथक् पृथक् अणुओंमें रहती है । इससे तो राष्ट्रका अस्तित्व ही लुप्त हो जाता है । सभी राष्ट्रोंमें संगठित सभायें हैं जो कि राष्ट्रीय शक्तिकी अधिष्ठात्री हैं । व्यक्तियोंके पास पृथक् पृथक् तौरपर कुछ भी राष्ट्रीय शक्ति नहीं । जिस प्रकार जीवित शरीरसे पृथक् पृथक् किये अंग

* Bluntschli, the Theory of the State, third Edition. p. 497.

† Gettell, Introduction to Political Science. p. 99. Sec 49

निर्जीव तथा निःशक्त हो जाते हैं उसी प्रकार राष्ट्र शरीरके अंगभूत व्यक्तियोंका पृथक् अस्तित्व कुछ भी नहीं। उसमें शक्ति तथा जीवनका मानना भयंकर भूल करना होगा *।

'प्रभुत्व उसीका होता है जो कि शक्तिशाली है। जो आज्ञाका प्रतिपालन करा सके और राष्ट्रको नियन्त्रित रखे, उसीको राष्ट्रका प्रभु समझना चाहिये' इस आधारपर जनताका राजनीतिक प्रभुत्व पु... करना निरर्थक है। इससे यह पता नहीं चलता कि कौन कौनसे तथा कितने मनुष्योंके पास किसी राष्ट्रमें राजनीतिक प्रभुत्व रहता है। कौन शक्तियुक्त है, यदि यह जाननेका यत्न किया जावे तो हो सकता है कि जनता शक्तियुक्त न निकले। स्त्री तथा बालक लड़ाईमें असमर्थ हैं मनुष्योंमें भी संगठित दल ज्यादा शक्तिशाली होता है क्योंकि युद्धमें वही जीतता है जो किसी सेनापतिके नीचे काम करनेको तैयार रहता है और आंख मूंदकर उसीकी आज्ञापर चलता है। नियन्त्रणरहित जनता संगठित दलके सन्मुख निःशक्त होती है। यही कारण है कि शक्ति राजनीतिक प्रभुत्वका आधार नहीं हो सकती †।

यदि जनताके राजनीतिक प्रभुत्वका चिह्न निर्वाचक ... समझे जावें तो भी उलझन नहीं सुलझती। क्योंकि निर्वाचकलोग प्रायः कुल आबादीका ⅕ से 1/10 भाग होते हैं। ... लोगोंको जनताकी इच्छाका सूचक समझना भयंकर भूल होगी। सबसे बड़ी बात तो यह है कि निर्वाचकलो...

* Bluntschli, The theory of the State, third Editi... p. 497.

† Gettell : Introduction to Political Science. p.p. 92-1...

प्रतिनिधि चुननेके सिवाय और कुछ भी नहीं कर सकते। प्रतिनिधिगण निर्वाचित होते ही उनके प्रभुत्वसे निकलकर स्वतन्त्र हो जाते हैं। केवल उन्हीं देशोंमें निर्वाचकोंका राजनीतिक प्रभुत्व माना जा सकता है जहां कि जनसम्मति विधि (initiative and referendum) का प्रचार है। आम तौरपर यह भी देखा गया है कि पुरोहितों, पादरियों, कुलीनों, पूंजीपतियों आदिसे प्रभावित होकर निर्वाचक निर्वाचनका काम करते हैं। इससे निर्वाचकोंका राजनीतिक प्रभुत्व नाममात्रका ही रह जाता है। कभी कभी निर्वाचक साधारण जनताके विचारोंसे प्रभावित होकर भी लोगोंको निर्वाचित करते हैं। सारांश यह है कि प्रतिनिधितन्त्रराज्योंमें राजनीतिक प्रभुत्व निर्वाचकोंके पास सदा नहीं रहता। इसलिए उनको राजनीतिक प्रभुत्वका आधार मानना गल्ती करना है *।

जनतामें भी राजनीतिक प्रभुत्व न माननेका एक यह कारण है कि इससे राजनीतिक प्रभुत्वका राज्य-नियमानुकूल होना कठिन है। "राज्यद्वारा संगठित समाज ही राष्ट्र है। राज्य ही राष्ट्रके लिए नियमको बनाता है और चलाता है" इस विचारसे ही यह परिणाम निकलता है कि राज्यनियमोंका उल्लंघन कर प्रभुत्वशक्तिको काममें लाना 'विद्रोह या ग़दर' (Revolt) है। राज्यनियमोंके अनुसार चलते हुए ही जनता प्रभुत्व-शक्तिका प्रयोग कर सकती है, परन्तु इससे जनतामें राज-नीतिक प्रभुत्व कहां रहा? जब जनताको भी राज्यनियमोंका

* Leacock: Elements of Political Science, p.p. 65-66.

ख्याल रखना पड़ा तो उसका राजनीतिक प्रभुत्व पूर्णरूपेण कैसे माना जा सकता है? यही कारण है कि राजनीतिज्ञ जनताकी प्रभुत्वशक्तिका तात्पर्य्य यही लेते हैं कि राज्य शान्तिकालमें जनताकी सम्मतिके अनुसार ही काम करनेका यत्न करें। यदि जनताका राजासे मतभेद हो और राज्य अपने ढंगपरही काम करनेपर उतारू हो तो 'राज्यक्रान्तिकी शक्ति' ही जनताकी प्रभुत्वशक्ति है *।

प्रोफ़ेसर रीशे (Ritchie) तथा अन्य नीतिज्ञोंने इसी 'राज्यक्रान्तिकी शक्ति' को आधार बनाकर जनताकी प्रभुत्व-शक्तिको ही पुष्ट किया है। प्रोफ़ेसर रीशे एक स्थानपर लिखते हैं कि जनताकी सम्मतियों तथा विचारोंमेंही राष्ट्रका प्रभुत्व है। रूसपर यदि ज़ारका राज्य था तो केवल इसीलिए कि लोगोंकी बहुसंख्या उसको ईश्वरका अवतार समझती थी। जनताकी सम्मति रूसके ज़ारके शासनमें उसी प्रकार कारण थी जिस प्रकार कि स्विस् राष्ट्रात्मक राज्यके शासनमें कारण है †। इसी प्रकार मैकक्नीने लिखा है कि जनतामें ही राष्ट्रकी वास्तविक प्रभुत्वशक्ति है। शासनका ढंग तथा शासकका स्वरूप इसमें बाधक नहीं ‡।

'राज्यक्रान्तिकी शक्ति' भी जनताके पास यदि होतो तो उसका राजनीतिक प्रभुत्व किसी हद्दतक स्वीकार किया जा सकता। भारतकी जनता तथा रूसकी जनता चिरकाल-से प्रतिनिधितंत्र तथा उत्तरदायी राज्य चाहती थी। बड़ी

* Gettell : Introduction to Political Science, p. 100.

† Ritchie, D.G., Principles of State Interference (1891)

‡ M.' Kechnie : the State and the Individual'.

कठिनाइयोंके बाद रूसकी जनता स्वतंत्र हुई । भारतकी जनता अभीतक स्वेच्छाचारी अनुत्तरदायी राज्यमें जकड़ी है। स्वेच्छाचारी राज्य सैकड़ों प्रकारके क्रूर तथा कठोर कानून-बनाकर स्वतंत्रता-प्रिय लोगोंको नष्ट करते हैं और जनताको 'राज्यक्रान्ति' करनेसे रोकते हैं। इसीकारण जनतामें राजनीतिक प्रभुत्व नहीं माना जा सकता । जो संगठित हैं और शक्तिशाली हैं उन्हींका राजनीतिक प्रभुत्व है ।

जनतामें राजनीतिक प्रभुत्व क्यों माना गया ? इसका इतिहास रहस्यपूर्ण है। स्वेच्छाचारी राज्योंके अत्याचार तथा क्रूर व्यवहार ही इसके तहमें हैं। राज्यके संशोधन या पलटनेके लिए जनताको साधन बनना आवश्यक है । राज्यों-के स्वेच्छाचार तथा अत्याचार तभी तक हैं जबतक कि जनता संगठित होकर राज्यक्रान्ति नहीं करती। फ़रांसीसी राज्यक्रान्तिमें जनताके प्रभुत्वशक्ति विषयक विचारने अपूर्व चमत्कार दिखाया। फ़रांसीसी जातीय सभाने राज्यका तख्ता पलटनेके लिए (१७९२ की २० अप्रेल को) रूसोके सिद्धान्तको पुष्ट करते हुए कहा कि 'प्रत्येक जातिको अपने अपने कानून बनाने तथा बदलनेका अधिकार है । यह सारी जनताके सिवाय और किसीका अधिकार नहीं'। १८४८ की बात है कि फ्रान्सकी जनताने परिमित शक्तियुक्त एक-तन्त्र राज्यको पलटकर प्रतिनिधितंत्र राज्यकी स्थापना की । उस समय जो उद्घोषणा की गयी उसके ये शब्द हैं—"प्रत्येक युवा फरांसीसी फ्रांसका नागरिक है। प्रत्येक नागरिक निर्वाचक और प्रत्येक निर्वाचक राष्ट्रका राजा या प्रभु है। सब नागरिकोंका समान अधिकार है । कोई एक नागरिक

दूसरे नागरिकको यह नहीं कह सकता कि 'तुम्हारी अपेक्षा राष्ट्रपर मेरा ज्यादा प्रभुत्व है' । अपनी शक्तिको समझो और काममें लाओ । अपनी प्रभुत्वशक्तिके उचित अधिकारी बनो* "। जबसे राजनीतिज्ञोंने जनतामें प्रभुत्वशक्तिको मान कर राज्यक्रान्ति करवाना शुरू किया तबसे राज्योंका स्वेच्छाचार बहुत कम हो गया । जनताकी सम्मतियोंके अनुसार ही राज्यनियम बनाना तथा शासन करना आजकल राज्योंका मुख्य उद्देश्य है । स्थानीय राज्य, जनसम्मतिविधि, निर्वाचनका सबको अधिकार देना, प्रतिनिधियों द्वारा काम कराना, इत्यादि अनेकों तरीके हैं जिनसे यूरोपीय राज्य राज्य-क्रान्तियोंसे अपने आपको बचाते हैं † । राज्यनियमोंके अनुसार जनताके पास राजनीतिक प्रभुत्व हो और चाहे न हो, परन्तु इसमें कुछ भी संदेह नहीं है कि राजनीतिज्ञोंने 'जनतामें प्रभुत्वशक्ति' मानकर बहुत काम किया । जनतामें राजनीतिक जीवनका जागृत होना भी बहुत कुछ इसीसे सम्बद्ध है । आजकल प्रभुत्वशक्ति तथा जनताकी सम्मतिमें पूर्ववत् भेद नहीं रहा । यही कारण है कि दोनोंकी भिन्नताका पता लगाना दिनपर दिन कठिन होता जाता है ‡ ।

---

* Bluntschli : The Theory of the State. Third Edition

† Willoughby, the Nature of the State, P. 302.

‡ Gettell : Introduction to Political Science. P. 101.

आठवां परिच्छेद

वैयक्तिक स्वतंत्रता

§५७ *राष्ट्रका व्यक्तिके साथ सम्बन्ध ।*

भिन्न २ संघों तथा समूहोंके साथ व्यक्तिका सम्बन्ध क्या होना चाहिये इसपर चिरकालसे विवाद चला आरहाहै। व्यक्ति तथा संघमें किसको मुख्य रखना चाहिये, इसीपर राजनीतज्ञोंका भयंकर मतभेद है। बहुतसे राजनीतिज्ञ 'राष्ट्र' को रुग्ण समाजका परिणाम समझते हैं। उनका मत है कि शान्तिस्थापन तथा नियंत्रणके अतिरिक्त राष्ट्रको वैयक्तिक मामलोंमें हस्तक्षेप न करना चाहिये। व्यक्तियोंको फूलने फलने और अपनी शक्तिको बढ़ानेमें पूरी स्वतन्त्रता मिलनी चाहिये। इसके विपरीत बहुतसे राजनीतिज्ञोंका ख्याल है कि राष्ट्रको समाजका हित सामने रखते हुए अपनी शक्तिको पूर्णरूपसे काममें लाना चाहिये और वैयक्तिक स्वतन्त्रताका कुछ भी ख्याल न रखना चाहिये।

राष्ट्रीय कर्मण्यता तथा वैयक्तिक स्वतन्त्रताकी टक्करमें उचित क्या है? इसपर आगे चल कर एक पृथक् खण्डमें प्रकाश डाला जायगा। पूर्व परिच्छेदमें 'प्रभुत्वशक्ति' का अपरिमित, निर्बाध तथा स्वतन्त्रतामय स्वरूप दिखाया जाचुका है। व्यक्तियोंको सामने रखते हुए, यही कहना पड़ता

है कि राष्ट्रका मुख्य उद्देश उस परिस्थितिको तय्यार करना है जिसमें व्यक्ति (पूर्ण स्वतंत्रताका) अनुभव करते हुए पूरे तौरपर फूलें फलें। प्रश्न जो कुछ है वह यही है कि राष्ट्रकी अपरिमित प्रभुत्वशक्तिके अन्दर व्यक्ति पूर्णस्वतन्त्रताका अनुभव कर ही कैसे सकते हैं? प्रभुत्वशक्ति तथा वैयक्तिक स्वतन्त्रताका नैसर्गिक विरोध है। यदि राष्ट्रकी प्रभुत्वशक्ति अपरिमित हो तो वैयक्तिक स्वतन्त्रता वस्तु ही क्या रही? यदि ऐसा न होकर, वैयक्तिक स्वतन्त्रता निरंकुश तथा अबाध्य हो तो राष्ट्रीय प्रभुत्वशक्ति कोई चीज़ नहीं रहती। सारांश यह है कि वैयक्तिक स्वतन्त्रताका अराजकताके साथ और राष्ट्रकी अपरिमित प्रभुत्वशक्तिका स्वेच्छाचार तथा स्वतंत्रताके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। भिन्न भिन्न राष्ट्रोंने समय समयपर इन दो विरोधी शक्तियोंमें संतुलन स्थापित करनेका यत्न किया परंतु सफलता अबतक न मिली। वास्तविक बात तो यह है कि वैयक्तिक स्वतन्त्रताका अपरिमित प्रभुत्वशक्तिके साथ ऐसा नैसर्गिक विरोध नहीं है जैसा कि समझा जाता है। गम्भीर तौरपर विचार करनेसे यह स्पष्ट हो सकता है कि वैयक्तिक स्वतन्त्रता तभी सुरक्षित रह सकती है जब कि प्रभुत्वशक्ति अपरिमित हो। अपरिमित प्रभुत्वशक्तिपर भी वैयक्तिक स्वतन्त्रता निर्भर रहती है।

§५८ नागरिक स्वतन्त्रताका स्वरूप।

अभी एक सदीकी बात है कि राजनीतिज्ञ स्वाभाविक स्वतन्त्रता * तथा नैसर्गिक अधिकारके † विशेष तौरपर

* स्वाभाविक स्वतन्त्रता=Natural Liberty.

† नैसर्गिक अधिकार=Natural Rights

पक्षपाती थे। जीवन, स्वतन्त्रता, संपत्ति, भोगविलास आदिमें व्यक्तियोंका नैसर्गिक अधिकार समझा जाताथा। राज्यके उदयसे पूर्व व्यक्ति पूर्ण तौरपर स्वतन्त्र थे, यह मानकर संपूर्ण विचार प्रारम्भ किये जाते थे। इसमें जो कुछ त्रुटि थी वह यही थी कि नैसर्गिक अवस्थामें भी व्यक्ति पूरे तौरपर स्वतन्त्रत थे, क्योंकि नैसर्गिक अवस्थामें स्वतन्त्रता संभव ही नहीं है। यदि प्रयेक व्यक्ति अपने काममें पूर्ण स्वतन्त्र हो तो जिस मामलेमें व्यक्तियोंका विरोध उठ खड़ा हो उसका निर्णय, शक्ति-सिद्धान्तके सिवाय और कौन तरीका है जिससे किया जासके। शक्ति-सिद्धान्तके प्रयोगसे वैयक्तिक स्वतन्त्रताका नष्ट होना आवश्यक है। यही सिद्धान्त है जिसका लगातार प्रयोग समाजको भयंकर दासताकी जंजीरोंमें बांध सकता है और किसी एक व्यक्तिको पूर्ण स्वेच्छाचारी, निरंकुश तथा अत्याचारी बना सकता है।

दूसरोंको कमसे कम नुकसान पहुंचाते हुए अपनी इच्छाओंको पूराकरनेमें ही वैयक्तिक स्वतन्त्रताका आधार है। ऐसी हा(हालतों में समाजका प्रत्येक व्यक्ति अधिकसे अधिक स्वतन्त्रताका अनुभव कर सकता है। यह तभी संभव है जब कि कोई अपरिमित शक्तियुक्त प्रभु या राजा ऐसे नियम बनाये और उनको प्रचलित करे जिससे वैयक्तिक स्वतन्त्रता एक दूसरेको नुकसान न पहुंचा सके। इसी कारणसे राष्ट्रकी प्रभुत्वशक्तिका निर्बाध, निरंकुश तथा अपरिमित शक्तियुक्त होना आवश्यक है।

समाजकी बहुसंख्याकी स्वतन्त्रताको सुरक्षित रखनेके लिये राष्ट्र भिन्न भिन्न अपराधियोंको मृत्युदण्ड देता है।

राज्यकर लेनेका मूलतत्व बहुत कुछ इसीके साथ घनिष्ठ तौर पर जुड़ा हुआ है। राज्यका संचालन तथा राष्ट्रका नियंत्रण तभी संभव है जब कि राज्यके पास धन हो। यह धन राज्य-करके द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। सारांश यह है कि वैयक्तिक स्वतन्त्रता राष्ट्रकी अपरिमित प्रभुत्वशक्ति पर ही निर्भर रहती है। अराजकता इसी लिये बुरी समझी जाती है कि इसमें वैयक्तिक स्वतन्त्रता सुरक्षित न रह सकेगी।

§५९ स्वतन्त्रता शब्दका तात्पर्य ।

'स्वतन्त्रता' तथा 'स्वतन्त्र' शब्दोंका प्रयोग भिन्न भिन्न स्थलोंपर भिन्न भिन्न अर्थोंमें किया जाता है। प्रोफेसर रीशे[1] का कथन है कि इंग्लैण्डमें बहुत पुराने समयमें स्वतन्त्र शब्दका व्यवहार 'स्वेच्छाचार'के अर्थमें किया जाता था। बेकन तथा राजा जेम्स स्वतन्त्र राज्य (Free monarchy) शब्दका अर्थ स्वेच्छाचारी राजाका राज्य, लेते थे। इस प्रकार भिन्न २ दलों श्रेणियों, संभूय समुत्थानों और मिश्रित पूंजीवाली कम्पनियों की स्वतन्त्रताका अर्थ उनके खास खास प्रकारके अधिकारों से ही सम्बद्ध है जो कि उनको राज्यके द्वारा मिलते हैं। बहुत बार 'स्वतन्त्रता' शब्द उलटे अर्थोंमें ही प्रयुक्त होता है। यूरोपीय राज्य पराधीन देशोंपर स्वतन्त्र व्यापारकी नीति को बहुत बार इसलिये प्रयुक्त करते हैं कि उनके व्यापार व्यवसायको नष्ट करें। कभी कभी प्रणकी स्वतन्त्रता (Freedom of contract) का परिणाम एक दलके लोगोंके

1. Ritchia, Natural Rights, chap. vii

अनुचित पराधीनता होता है। यह भी बहुत संभव है कि राज्यद्वारा लोगोंको धार्मिक स्वतन्त्रता प्राप्त हो और उस स्वतन्त्रताका फल यह हो कि भिन्न २ श्रेणीके लोगोंपर पुरोहितों तथा ब्राह्मणोंके अत्याचार उग्र रूप धारण कर लें। यही बात नैसर्गिक स्वतन्त्रता (Natural Liberty) के साथ है। रूसोने लिखा है कि सामाजिक प्रण (Social contract)से लोगोंने अपनी नैसर्गिक स्वतन्त्रताको खोदिया। उन्होंने अपने उस अपरिमित अधिकारको खो दिया जिसके द्वारा वे मनमाने तौरपर चीजोंको प्राप्त कर सकते थे। अराजक वादियोंके विचार भी बहुत कुछ इसी 'स्वतन्त्रताके' अर्थको न समझनेके ही परिणाम हैं।

यदि ससारमें एक ही सर्वशक्तिमान् मनुष्य होता तो 'स्वतन्त्रता' शब्दका अर्थ पूर्ववत् किया जा सकता। नैसर्गिक स्वतन्त्रतामें प्रत्येक व्यक्तिको सर्व प्रकारके अधिकार होंगे और वह मनमाने तौरपर सम्पूर्ण काम कर सकेगा। यदि यह माना जाय तो इसका यह मतलब होगा कि एक ही पदाथपर मनुष्योंको बहुसंख्याका समान तौरपर अधिकार हो सकता है। परन्तु यह कब संभव है? लीबर (Lieber) ने ठीक कहा है कि 'बाहरकी तथा अन्य किसी प्रकारकी बाधाके बिना मनमाने तौरपर काम कर सकनेका नाम ही स्वतन्त्रता है।.........इस अपरिमित तथा निर्बाध अर्थमें यदि स्वतन्त्रता शब्द लिया जाय तो उस अपरिमित शक्तिसंपन्न ईश्वरके सिवाय और कोई स्वतन्त्र नहीं

2. Social Contract, Bk i chap' viii-

कहा जासकता।' यही कारण है कि राजनीतिज्ञ स्व-न्त्रता शब्दको इस अर्थमें नहीं लेते हैं। पूर्वमें लिखा जाचु है कि दूसरोंको कमसे कम नुकसान पहुंचाते हुए अ इच्छाओंको पूरा कर सकनेके अर्थमें ही स्वतन्त्रता शब्द व्यवहार उचित है। संवत् १८४६ (१७८९) में फ्रांसके अ स्वतन्त्रताकी उद्घोषणा (Declaratiou of the Rights Man) करते समय राजनीतिज्ञोंने यह स्पष्ट कहा था। "दूसरोंको नुकसान न पहुंचाते हुए प्रत्येक प्रकारके काम कर सकनेका नाम ही स्वतन्त्रता है" यही बात ह स्पेन्सरने कही है कि 'प्रत्येक मनुष्य काम करनेमें वहां स्वतन्त्र है जहांतक कि वह दूसरोंकी स्वतन्त्रताका न नहीं करता है।"

'स्वतन्त्रता' शब्दके उपरिलिखित अर्थका रा प्रभुत्वशक्तिके साथ कोई विरोध नहीं पड़ता, क्योंकि रा प्रभुत्वशक्तिके अपरिमित तथा निर्बाध होनेपर ही उस प्र की स्वतन्त्रता संभव है। व्यक्तियोंको दूसरोंपर अत्या तथा अन्याय करनेसे राष्ट्र ही रोकता है। स्वतन्त्र नाग तथा अपरिमित शक्तियुक्त प्रभुत्व शक्तिका पारस्परिक सम क्या है, इसकी व्याख्या करते समय इसी बातको ध्या रखना पड़ेगा। प्रत्येक व्यक्ति यदि मनमाने तौरपर क करना चाहे और दूसरोंके अत्याचारों तथा अन्यायोंसे आपको बचाना चाहे तो राष्ट्रकी प्रभुत्वशक्तिके आ उसका सिर झुकाना आवश्यक है। परन्तु इसका मतलब नहीं है कि राष्ट्र ही प्रत्येक व्यक्तिके कामों उद्देश्योंको नियत करे। राष्ट्रका जो कुछ कर्तव्य

यही है कि राष्ट्र प्रत्येक व्यक्तिको पारस्परिक अन्याय तथा अत्याचारसे बचाये। आम तौरपर यह प्रश्न किया जाता है कि 'राष्ट्र जनताका हित यदि किसी बातमें देखे तो उस बातके करनेपर जनताको क्या बाधित न करे? इसका उत्तर एक पृथक् भागमें ही दिया जायगा अतः यह प्रकरण यहांपर ही छोड़ दिया जाता है।

§६० *स्वतन्त्रता शब्दका विशेष अर्थ।*

राजनीतिक ग्रन्थोंमें, भिन्न भिन्न स्थलोंपर 'स्वतन्त्रता' शब्दका भिन्न भिन्न अर्थ लिया जाता है। 'जातीय स्वाधीनता' के अर्थमें भी इसका प्रयोग प्रायः देखा गया है। हमलोग 'स्वतन्त्रता' चाहते हैं इसका अर्थ यह है कि हमलोग ब्रिटिश राज्यके नीचे न रहकर भारतीय प्रतिनिधितन्त्र राज्यके नीचे रहना चाहते हैं। कभी कभी लोग कहते हैं कि अमरीका, फ्रांस तथा ग्रेटब्रिटन स्वतन्त्र हैं। उनको स्वतन्त्रता प्राप्त है। यहां स्वतन्त्रताका तात्पर्य उत्तरदायी राज्य है जो कि राज्यनियमोंके अनुसार उनको मिला हुआ है। जहां किसी एक दल या श्रेणीके लोगोंकी प्रधानता होती है वहांपर भी स्वतन्त्रता शब्दका व्यवहार देखा गया है (Constitutional liberty)। अंग्रेजीमें स्वतन्त्रता (liberty) शब्दके प्रयोगमें जो गड़बड़ है वह हिन्दीमें भी उत्पन्न हो रही है। इसका मुख्य कारण यह है कि अंग्रेज जातिके राजनीतिक विचारोंसे ही भारतीय जनता दिनपर दिन प्रभावित हो रही है। हिन्दीमें राजनीतिक शब्दोंकी कमी है। अंग्रेजी शब्दोंका तात्पर्य्य देनेवाले संस्कृतके शब्दोंके द्वारा ही यह

कमी भी पूरी की जाती है। संस्कृतके प्रत्येक शब् चुनावमें अंग्रेजी भावकी मुख्यता होनेसे उसके :दोषभी उस समा जाते हैं। अंग्रेजी शब्द जिन स्थलोंमें प्रायः अस्पष्ट संस्कृतके शब्द भी वहां अस्पष्ट ही हैं।

अंग्रेज लेखक बहुत बार राष्ट्र तथा राज्यमें कोई नहीं समझते हैं। यही कारण है कि बहुत बार वे स्टेट तथा गवर्नमेण्ट शब्दका प्रयोग एक ही अर्थमें कर देते अंग्रेजी ग्रंथोंका सहारा लेकर ही हिन्दी ग्रन्थ लिखे जा हैं। यही कारण है कि उनमें भी बहुत बार राष्ट्र त राज्यका भेद मिटा दिया जाता है। ऐसा बहुत कुछ स्वा विक भी है, क्योंकि राष्ट्रकी इच्छाएं राज्य द्वारा ही प्रका होती हैं। राज्य राष्ट्रका मुख है। जिस प्रकार 'देवद यह कहा' इस वाक्यमें देवदत्त तथा देवदत्तके मुखमें भेद नहीं माना जाता, उसी प्रकार 'राष्ट्रने या राज्यने किया' इस वाक्यमें राष्ट्र तथा राज्यमें कोई भेद नहीं मा जा सकता है।

§६१ वैयक्तिक स्वतन्त्रताका संरक्षण।

राष्ट्र वैयक्तिक स्वतन्त्रताको दो ओरसे बचाता है। तो राज्यके अत्याचारों तथा अनधिकार हस्तक्षेपोंसे दूसरे, व्यक्तियोंके पारस्परिक द्रोहों तथा लड़ाइयोंसे। पूर्व ही लिखा जा चुका है कि राज्यका आधार राष्ट्र राष्ट्र ही राज्यको बनाता तथा बिगाड़ता है। यही का है कि राज्यके अत्याचारोंसे व्यक्तियोंका बचाना राष्ट्र काम हैं, वैयक्तिक मामलोंमें राष्ट्र प्रत्यक्ष तौरपर भाग

लेता है।
व्यक्ति तथ
स्वयं नहीं
करता है।
नियमोंको
इसी प्रका
कर व्यक्ति
तथा व्यि
राष्ट्र ही क
टारा कर
स्थिति हो
सभी
राज्यनिय
योंको ऐसे
रोंसे अपने
संगठित
हैं जो, च
पद्धतिकी
आधारपर
कार्य्य क्षेत्र
धाराओंके
द्वारा वे
अत्याचारे
पद्धति सम
अधिकार

लेता है। उसने राज्यको ही यह काम सुपुर्द किया है। राष्ट्र व्यक्ति तथा व्यक्ति-समूहोंके आक्रमणसे किसी भी मनुष्यको स्वयं नहीं बचाता है। यह काम सीधे तौरपर राज्य ही करता है। व्यक्तियोंका यह अधिकार नहीं है कि राज्यके नियमोंको तोड़कर राज्यके अधिकारोंको नुकसान पहुंचावें। इसी प्रकार राज्य भी राज्यनियमोंको रद्दीकी टोकरीमें रखकर व्यक्तियोंके अधिकारोंको नहीं कुचल सकते हैं। राज्य तथा व्यक्तियोंके अधिकार विषयक झगड़ोंका निपटारा राष्ट्र ही करता है। व्यक्तियोंके पारस्परिक झगड़ोंका निपटारा करनेके समय राज्यकी स्थिति एक निर्णेताकी ही स्थिति होती है।

सभी सभ्य देशोंमें वैयक्तिक सम्बन्धोंको स्थिर रखनेवाले राज्यनियम लगभग समान ही हैं। यूरोपीय राष्ट्रोंमें व्यक्तियोंको ऐसे अधिकार प्राप्त हैं जिनके सहारे वे राज्यके अत्याचारोंसे अपने आपको किसी हद्द तक बचा सकते हैं। पूर्ण तौरपर संगठित सभी सभ्य समाजोंमें कुछ ऐसे सिद्धान्त प्रचलित हैं जो, चाहे लिखित हों या चाहे लिखित न हों, शासन पद्धतिकी धाराओंके। नामसे पुकारे जाते हैं। इन्हीं धाराओंके आधारपर राष्ट्रका संगठन, राज्यका निर्माण, तथा राज्यके कार्य्य क्षेत्र राज्यके अधिकार नियत किये जाते हैं। इन्हीं धाराओंके अनुसार व्यक्तियोंको वे अधिकार प्राप्त हैं जिनके द्वारा वे अपने आपको राज्यके अनुचित हस्तक्षेपों तथा अत्याचारोंसे बचा सकते हैं। राज्यसंशोधन तथा शासन-पद्धति सम्बन्धी परिवर्त्तनमें व्यक्तियोंका ही मुख्य तौरपर अधिकार है। राज्य इसी अधिकारके भयसे व्यक्तियोंको

बहुत नहीं सताते हैं। परन्तु जिन देशोंमें व्यक्तियोंको ऐसा कोई भी अधिकार नहीं प्राप्त है वहां राज्यकी कृपा ही वैयक्तिक स्वतन्त्रताको बचा सकती है। ऐसे देशोंमें राज्य चाहे तो व्यक्तियोंके प्रत्येक अधिकारको निर्दयतासे कुचल कर पूर्ण तौरपर स्वेच्छाचारी, निरंकुश तथा अत्याचारी बन सकता है।

इंग्लैण्डमें नियामक सभाकी शक्ति अपरिमित है। नियामक सभाके विरुद्ध वैयक्तिक स्वतन्त्रताका वहां कोई अर्थ नहीं, वही व्यक्तियोंको मनमाने तौरपर स्वतन्त्रता प्रदान करती है। नियामक सभा राष्ट्रकी शासनपद्धतिको पलट सकती है। परन्तु इसके कार्य्योंपर कोई बाधा नहीं है। न्यायाधीशोंको नियत करना तथा निर्णायकविभागका निर्माण भी इसीके ही हाथोंमें है। फ्रान्स तथा इंग्लैण्डकी नियामक सभाओंने वैयक्तिक स्वतन्त्रता सम्बन्धी बहुतसे राज्यनियम बनाये हैं, परन्तु इनको जब वह चाहे मटियामेट भी कर सकती है। इंग्लैण्डमें निर्णायक-विभाग शासन-विभागसे सर्वथा स्वतन्त्र है। आम तौरपर निर्णायकविभाग ही आंग्लोंको शासकोंके अत्याचारोंसे बचाता है। भारतवर्षमें न तो अपनी नियामक सभा है और न कोई ऐसा निर्णायकविभाग है जो भारतीयोंको शासकोंके स्वेच्छाचारसे बचा सके। अमरीकामें तो शासनपद्धतिको धाराएं नियत हैं। कोई भी राज्य उनका अतिक्रमण नहीं कर सकता है। यहांपर ही बस नहीं। वहां निर्णायकविभाग नियामकविभागसे ऊंचा समझा जाता है। नियामकविभागके नियमादि शासनपद्धतिकी धाराओंके अनुकूल हों तो

निर्णायकविभाग उनको मनमाने तौरपर रद्द कर सकता है। इन सब भेदोंके होते हुए भी यूरोपीय राष्ट्रोंके अन्दर प्रायः व्यक्तियोंको एक सदृश ही स्वतन्त्रता प्राप्त है। फरक जो कुछ है वह केवल राज्यनियमोंका ही फरक है। वैयक्तिक स्वतन्त्रताका राज्यनियमोंके साथ बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं है, क्योंकि आम तौरपर यह भी देखा गया है कि राज्य-नियमोंके अनुसार अधिकसे अधिक स्वतन्त्रता प्राप्त करके भी व्यक्ति राज्यके अत्याचारोंसे पीड़ित होते हैं। इंग्लैंडमें राज्यनियमोंके अनुसार व्यक्तियोंको परिमित स्वतन्त्रता ही मिली हुई है। यह होते हुए भी वहां लोग अन्य राष्ट्रोंकी अपेक्षा अधिक स्वतन्त्र हैं।

§६२. वैयक्तिक स्वतन्त्रताका क्षेत्र।

व्यक्तियोंको पारस्परिक अत्याचारोंसे बचाने वाले राज्य-नियम चिरकालसे भिन्न भिन्न देशोंमें प्रचलित थे। यह होना स्वाभाविक ही है, क्योंकि राष्ट्रका उदय भी तो इसी बात-से हुआ था। समयान्तरमें ये राज्यनियम स्थिर किये गये। राज्योंने इनके सञ्चालनमें अधिक दृढ़तासे काम लिया और राष्ट्रमें प्रत्येक व्यक्तिको समान अधिकार दिये।

(१) राज्य-नियमोंका स्थिर होना (२) उनको दृढ़ता-पूर्वक चलाना (३) और राज्यका प्रत्येक व्यक्तिको एक दूसरेके समान समझना-यही तीनों बातें सामाजिक संगठन-की पूर्णताके चिन्ह हैं। वैयक्तिक स्वतन्त्रताका पूरे तौर पर संरक्षित रहना भी इन्हींकी पूर्णतापर निर्भर है।

राज्यके हस्तक्षेपोंसे वैयक्तिक स्वतन्त्रताको बचानेका यत्न कुछ ही समयसे शुरू हुआ है। अति प्राचीनकालमें राष्ट्रकी प्रभुत्वशक्ति राज्योंके ही पास थी। देवतन्त्र तथा स्वेच्छातन्त्र राज्योंमें प्रत्येक प्रकारकी वैयक्तिक कर्मण्यता राष्ट्रीय नियन्त्रणमें थी। मध्यकालमें ताल्लुकेदार लोग राष्ट्रके मालिक बन बैठे। धीरे धीरे उन्हींकी कृपापर वैयक्तिक स्वतन्त्रता निर्भर होने लगी। राज्यकी शक्तियाँ तो इसी जमानेमें परिमित की गयी हैं। राज्य-नियमोंके अनुसार राज्यकी शक्तियोंको बाधित कर वैयक्तिक स्वतन्त्रताको सुरक्षित करना बिल्कुल नवीन घटना है। आजकल वैयक्तिक स्वतन्त्रता निम्नलिखित बातोंमें मानी जाती है।

(१) व्यक्तिका दास न बनाया जा सकना।

(२) राज्य-नियमोंके सम्मुख प्रत्येक व्यक्तिका समान होना।

(३) व्यक्तियोंकी संपत्तिकी रक्षा करना।

(४) विचार तथा सम्मति प्रगट करनेमें व्यक्तियोंको स्वतन्त्रता देना।

(५) आत्मिक विश्वासोंके अनुसार चलनेमें प्रत्येक व्यक्तिका स्वतन्त्र होना। धार्मिक स्वतन्त्रता इसीका एक फल है।

असली बात तो यह है कि यदि छोटे मोटे भेदोंका ख्याल न किया जाय तो यह कहा जा सकता है कि स्वतन्त्रताके मामलेमें प्रत्येक यूरोपीय मनुष्य एक दूसरेके समान है।

§६३. राजनीतिक स्वतन्त्रता।

राज्यकी प्रभुत्वशक्ति तथा वैयक्तिक स्वतन्त्रताका एक दूसरेसे न टकराना सुगम काम नहीं है। राष्ट्रकी यही विकट समस्या है। इसीके सरल होनेपर राष्ट्रमें शान्ति तथा उसकी स्थिति निर्भर रहती है। आदर्श राष्ट्र वही है जिसमें व्यक्तियोंकी स्वतन्त्रता स्वरक्षित हो, वैयक्तिक स्वार्थोंको पूरा होनेका काफी अवसर हो और साथ ही राज्यका नियन्त्रण भी कच्चा या अधूरा न हो। अर्थात् राज्य व्यक्तियोंको राज्य-नियमोंके अनुसार पूरी तरहसे चला सके। राष्ट्रकी स्थितिके लिये यह भी नितान्त आवश्यक है कि राज्य तथा नागरिकोंमें मतभेद बना रहे (?)। बहुत से राजनीतिक तरीके आज कल इसी लिये निकाले गये हैं कि वैयक्तिक स्वतन्त्रता तथा राज्यके अधिकारोंका पारस्परिक संतुलन चिरकाल तक बना रहे। परन्तु अभी तक सफलता नहीं प्राप्त हुई है। इनका परिणाम अभी तक यही हुआ है कि या तो राज्यका स्वेच्छाचार बढ़ गया या अराजकता ही उत्पन्न हो गयी।

अभी तक सबसे अधिक कामयाब तरीका यही है कि राष्ट्रीय प्रभुत्वशक्ति तथा वैयक्तिक स्वतन्त्रताका आधार एक ही संस्था रखीजाय। प्रतिनिधितन्त्र शासन-पद्धतिमें यही गुण विद्यमान है। इसके अनुसार जनता ही राज्य तथा राज्यनियमको बनाती है और साथ ही वैयक्तिक स्वतन्त्रताका भी ख्याल रखती है। प्रतिनिधितन्त्र राज्यमें भाग लेनेका नाम ही राजनीतिक स्वतन्त्रता है। यह साधारण स्वतन्त्रतासे सर्वथा भिन्न है।

राजनीतिक स्वतन्त्रताने अर्वाचीन राजनीति शास्त्रको बहुत ही अधिक उन्नत किया है। रोमने यूरोपको बाह्य शत्रुओंसे बचाये रखा और उसमेंकी आन्तरीय शान्तिको भी नष्ट न होने दिया। प्रतिनिधि तन्त्र शासन प्रणालीका ज्ञान न होनेसे और स्थानीय राज्य तथा निर्वाचन सम्बन्धी संस्थाओंके विद्यमान न होनेसे वैयक्तिक स्वतन्त्रता स्वरक्षित न थी और राज्य तथा व्यक्तियोंका पारस्परिक सम्बन्ध भी स्थिर न था। ट्यूटन लोगोंका यूरोप पर आक्रमण होते ही सारे यूरोपमें अराजकता फैल गयी तथा राजाओंका स्वेच्छाचार भी बढ़ गया, कहींपर एकको प्रधानता थी और कहीं पर दूसरे की। १६ वीं सदीमें राज्यकी शक्ति बहुत ही अधिक बढ़ गयी। राजा तथा प्रजाका विरोध भी धीरे धीरे शुरू हो गया। यही कारण है कि उस जमानेके भयंकर विप्लवमें वैयक्तिक स्वतन्त्रताका प्रश्न हल न हो सका।

यूरोपमें १६ वीं सदीके बाद जनतामें राजनीतिक जागृति शुरू हो गयी। लोग राज्यमें भाग लेनेके लिये दिनपर दिन उत्सुक होते गये। इंग्लैण्डमें तथा उसके बाद यूरोपमें लोगोंने प्रतिनिधि तन्त्र राज्यको स्थापित किया।

कुछ ही वर्ष हुए कि राजनीतिज्ञोंको यह मालूम पड़ा कि प्रतिनिधितन्त्र राज्यमें भी वैयक्तिक स्वतन्त्रता पूरी तरहसे स्वरक्षित नहीं रह सकती। इसीको स्वरक्षित रखनेके लिये 'शक्ति संविभाग सिद्धान्त' के अनुसार भिन्न भिन्न राष्ट्रोंकी शासन पद्धतियोंके बनानेका यत्न किया गया।

आज कल शीघ्र निर्वाचन, जन सम्मति विधि, स्थानीय स्वराज्य आदि अनेक विधियोंसे यूरोपीय जनता राज्यमें

अपना हाथ दिन पर दिन बढ़ाती जाती है। राज्यनियमोंके लिखित तथा स्पष्ट हो जानेसे वैयक्तिक स्वतन्त्रता बहुत कुछ सुरक्षित हो गयी है और राष्ट्रका संगठन भी किसी हद्द तक स्थिर ही हो गया है। अर्वाचीन राष्ट्र स्वतन्त्रता तथा प्रभुत्वशक्तिका संतुलन ऊपर लिखे तरीकोंसे ही करते हैं।

वैयक्तिक तथा राजनीतिक स्वतन्त्रताका क्षेत्र दिनपर दिन बढ़ता जा रहा है। राज्य मनुष्यमात्रकी रक्षा एक सदृश करता है। यूरोपीय राष्ट्रोंमें प्रत्येक गोरा मनुष्य नागरिक बन सकता है। निस्सन्देह एशियाके निवासियोंके साथ गोरे राष्ट्रोंका बर्त्ताव न्याययुक्त नहीं है।

राजनीतिक कार्य्यक्षमताके लिये यह नितान्त आवश्यक है कि सारीकी सारी जनता साधे तौरपर राजनीतिमें भाग न ले सके। जिनको राजनीतिक अधिकार प्राप्त हो उनकी शक्तिका भी भिन्न भिन्न दलोंमें बंट जाना प्रायः राष्ट्रकी उन्नतिमें बड़ा भारी भाग लेता है।

सारांश यह है कि राज्य नियमोंके सम्मुख प्रत्येक व्यक्तिके समान होते हुए भी राजनीतिक कार्य्यक्षमताके लिये यह आवश्यक है कि परिमित लोगोंको ही राजनीतिक अधिकार मिले।

नवां परिच्छेद।

नियम

§ ६४. *नियम शब्दका अर्थ।*

नियम शब्दका प्रयोग भिन्न भिन्न अर्थोंमें किया जाता है। कभी कभी यह 'प्राकृतिक नियम या सांसारिक नियम' के सदृश भिन्न भिन्न प्रकारकी घटनाओं तथा उनके परिणामोंको प्रगट करनेका काम करता है। मनुष्योंके सञ्चालनके लिये जिन जिन बातोंका निश्चय किया जाता है, वे भी नियमके नामसे पुकारी जाती हैं। सदाचार तथा धर्म्म सम्बन्धी नियम उसीके उदाहरण हैं। समाज तथा राज्य भी बहुतसे नियम बनाते हैं जिनपर प्रत्येक व्यक्तिको चलना पड़ता है। राजनीति शास्त्रका राज्य-नियमके साथ ही विशेष तौरपर सम्बन्ध है। महाशय हालैण्डके विचारमें 'राज्यनियम वे नियम हैं जिनको राष्ट्र बनाता है और जिनपर चलनेके लिये राष्ट्र व्यक्तियोंको बाध्य करता है'।

राजनीति शास्त्रमें 'नियम' का तात्पर्य सर्वथा स्पष्ट है। आजकल राष्ट्र नियम-निर्माणके द्वारा ही अपनी प्रभुत्वशक्तिको प्रगट करता है। यही कारण है कि नियम-निर्माणमें राष्ट्र

की शक्ति अपरिमित तथा निर्बाध है। इसीके साथ साथ यह भी स्पष्ट है कि राष्ट्रके सिवाय कोई दूसरा मनुष्य या संगठन राज्यनियमोंको नहीं बना सकता। इसमें सन्देह भी नहीं है कि बहुतसे विचारक इस बातको नहीं मानते हैं। संसारके सभी न्यायालय राष्ट्रीय नियमोंके सदृश ही देश-प्रथा, रीति-रिवाज आदिको भी न्याय करते समय प्रामाणिक मानते हैं, यही कारण है कि वे लोग राष्ट्रके सदृश ही देश-प्रथा तथा रीति-रिवाजको भी राज्य-नियमका स्रोत समझते हैं। परन्तु हमारे विचारमें यह बात ठीक नहीं है। राष्ट्रकी स्वीकृतिसे ही रीति-रिवाज तथा देश-प्रथा प्रामाणिक मानी जाती है। वे स्वतः प्रमाण नहीं है। अपितु, परतः प्रमाण हैं। महाशय हालण्डने ठीक कहा है कि 'संपूर्ण राज्यनियमोंका स्रोत एक मात्र राष्ट्र ही है। वही भिन्न भिन्न प्रकारके नियमोंको राजनीतिक रूप देता है।

समाजके अन्य नियमोंसे राज्यनियम इसीलिए विशेष हैं, क्योंकि उनका सञ्चालन राज्य द्वारा होता है। राज्य उनपर चलनेके लिये प्रत्येक व्यक्तिको बाधित करता है। राज्यके भिन्न भिन्न विभागोंको आज्ञाओंको भी राज्य-नियमही समझना चाहिये, क्योंकि राष्ट्रकी प्रभुत्वशक्तिका कुछ भाग उनका प्राप्त है। यदि वह अपनी सीमा तथा शक्तिसे बाहर आज्ञाओंको निकालें तो वे राज्यनियम नहीं समझी जा सकती। सारांश यह है कि अपनी प्रभुत्व शक्तिकी सीमाका उल्लंघन न करते हुए भिन्न भिन्न विभागों-के निर्देश तथा आज्ञाएं राज्य-नियमका रूप धारण कर लेती हैं। राष्ट्रीय नियमोंके सदृश ही इनकी स्थिति होती है।

§ ६५. नियमका स्रोत ।

राष्ट्रके सदृश ही राष्ट्रीय नियमोंका विकास है। राष्ट्रीय नियम कैसे बने? यह इतिहासके द्वारा बड़ी सुगमतासे जाना जा सकता है। दृष्टान्त स्वरूपः—

(१) रीतिरिवाज—प्राचीनकालमें रीतिरिवाजको विशेष तौर पर मुख्यता मिली हुई थी। इसका एक कारण तो यह था कि प्राचीन पुरुषोंमें भक्ति तथा श्रद्धाका अंश विशेष तौरपर बढ़ा हुआ था। उनके पूर्वज जो कुछ काम कर गये उसको उन्होंने आदरकी दृष्टिसे देखना शुरू किया और उसीके अनुसार चलना आरम्भ किया। धीरे धीरे इस प्रकारके रीति-रिवाजोंने राज्यनियमका रूप धारण किया। न्यायालयोंने भी राज्यनियमोंके सदृश ही रीति-रिवाज़ोंको आदरकी दृष्टिसे देखना शुरू किया। इसीका दूसरा कारण यह था कि प्राचीन पुरुष शान्ति तथा स्थिरताके प्रेमी थे। नये नये राज्य-नियमोंको बनाकर अशान्ति बढ़ाना तथा झगड़ोंको उत्पन्न करना उनको पसन्द न था। लाचार होकर वे लोग पुराने समयसे चले आये नियमोंको ही आदरकी दृष्टिसे देखते थे और सामाजिक परिवर्त्तनोंके साथ ही साथ रीति-रिवाज़ोंको भी राज्य-नियमोंके उच्च पदपर पहुंचा देते थे।

आजकल समय बहुत ही बदल गया है। वैज्ञानिक उन्नतियोंके सहारे लोगोंने प्रकृतिपर किसी हद्द तक प्रभुत्व प्राप्त किया है। रेलों, तारों तथा वाष्पीययानोंके आविष्कारसे मनुष्यों तथा राष्ट्रोंका पारस्परिक सम्बन्ध घनिष्ठ हो गया है। इसीके साथ साथ प्राचीन धर्म्मों तथा मतोंपरसे लोगोंकी भक्ति भी उठ गयी है। एक तन्त्र राज्य

पुराने रीति—रिवाज तथा स्मृति ग्रन्थोंको घृणाकी दृष्टिसे देखते हुए लोग प्रतिनिधितन्त्र राज्यकी ओर झुक रहे हैं और राज्यनियमोंको समयके अनुकूल बनाते रहना ही उचित समझते हैं। वर्त्तमान कालकी नियामक या व्यवस्थापक सभाओंकी उन्नति तथा महत्वका रहस्य भी इसीमें छिपा है।

(२) नियमोंकी व्याख्या—पुराने राज्यनियमों और रीतिरिवाजोंके सदृश ही भिन्न भिन्न न्यायाधीशोंकी व्याख्याएँ भी राज्यनियमोंका ही रूप धारण कर लेती हैं। यह प्रायः देखा गया है कि बहुत सोच विचारके बाद बनाये हुए भी राज्य-नियम खास खास स्थानोंपर अपनी स्पष्टता छोड़ देते हैं। न्यायाधीशोंको राज्यनियमोंका तात्पर्य्य निकालना पड़ता है और उसी तात्पर्य्यके अनुसार निर्णय करना पड़ता है। समयान्तरमें छोटे छोटे न्यायालयों तथा न्यायाधीशोंको इस प्रकारकी व्याख्याएँ तथा राज्यनियमोंके तात्पर्य्योंके अनुसार ही काम करना पड़ता है।

(३) वैज्ञानिक टीकाएं—राज्यनियमों तथा रीति रिवाजोंकी भिन्न भिन्न व्याख्याएं तथा टीकाएं आजकल एक ग्रन्थके रूपमें छाप दी जाती हैं। न्यायाधीशोंको उन टीकाओंका विशेष तौरपर ख्याल रखना पड़ता है। यही कारण है कि उनको उन टीकाओंके अध्ययनमें अपना बहुत-सा समय खर्च करना पड़ता है। नये नये राज्यनियमोंको बनानेमें और पुराने राज्यनियमोंके संशोधनमें इनका भाग बहुत ही ध्यान देनेके योग्य है। इनके कारण राज्यनियमोंकी त्रुटियां दिनपर दिन दूर की जारही हैं।

(४) राज्य-नियमनिर्माण—नये नये राज्यनियमोंको व्यवस्थापक सभाओंके द्वारा बनानेका तरीका सर्वथा नवीन है। यूरोपमें ही यह शुरू हुआ था। आजकल भारतवर्षमें नये नये अत्याचारोंके करने तथा वैयक्तिक स्वतन्त्रताको पानीमें मिलानेके लिये यही तरीका काममें लाया जाता है। रौलट एक्टका बनना तथा इंडेमनिटी बिलका पास होना इसीका ज्वलन्त उदाहरण है। परन्तु यूरोपमें इसीसे वैयक्तिक स्वतन्त्रता दिनपर दिन बढ़ी है। नये नये राज्यनियमोंको बनाकर लोगोंने निर्वाचनका अधिकार गरीबों तथा मेहनती मजदूरों तकको दे दिया है। राजनीतिज्ञ लोग यूरोपमें इसका विकास दो क्रमोंके द्वारा प्रगट करते हैं।

(क) नियामक संस्थाका स्वरूप—शुरू शुरूमें यूरोपके अन्य शासक तथा पादरी लोग ही नये नये राज्यनियमोंको बनाते थे। राष्ट्रीय शक्ति तथा ईश्वरका प्रतिनिधि अपने आपको प्रगट करते हुए राजा तथा आर्चविशप ही भिन्न भिन्न प्रकारके राज्यनियमोंको बनाते थे। रोम साम्राज्यमें सम्राट् ही मुख्य नियमनिर्माता था। जातीय राष्ट्रोंके उदय होते ही छोटे छोटे राजाओंने यही काम करना शुरू किया। देखते देखते ही बहुत सी गिल्डोंके प्रधानोंने भी राज्यनियम बनानेमें भाग लेना शुरू किया। जहां गिल्डों को संस्था मौजूद न थी और जो राष्ट्र अभीतक पूर्वदशामें ही मौजूद थे वहाँ भी छोटी छोटी जन-सभाएं बन गयी थीं जो कि राज्यनियमोंके बनानेमें भाग लेती थीं। ग्रीस, रोम की सभायें और ट्यूटन लोगोंकी मूट इसीके उदाहरण हैं। इंग्लैण्डकी व्यवस्थापक सभाका आधार भी इसी प्रकारकी मूटके साथ जुड़ा हुआ है।

(ख) नियमका स्वरूप—प्रारंभमें राज्य राष्ट्रीय नियमोंको ही बनाते थे। परन्तु स्थानीय निर्णयोंमें पुराने राज्यनियम तथा रीतिरिवाजोंका ही विशेष तौरपर भाग था। प्रतिनिधि तन्त्र राज्यके उदय होनेके बाद लोगोंमें राजनीतिक जीवन उन्नत हुआ। उन्होंने नियम-निर्माणको अपने हाथोंमें किया। आजकल नियामक संस्थायें ही राज्य-नियमके स्रोत हैं। नये नये नियमोंके द्वारा रीति-रिवाजोंकी सत्ता ही मिटा दी गयी है। यह प्रवृति इस हद्द तक बढ़ी है कि बहुत बार राष्ट्रकी शान्तिके भंग हो जानेकी ही संभावना हो जाती है।

साम्यवादी लोग इन नियामक संस्थाओंको अपने काबूमें कर; दलोंकी धन सम्बन्धी असमताको मिटाना चाहते हैं। कोई समय था जब कि यही नियामक संस्था इंग्लैण्डमें धार्मिक अत्याचारोंका साधन थी। क्या यह संभव नहीं कि साम्यवादी लोग इसीको अपना साधन बनाकर धनिकोंकी संस्थाको ही मटियामेट कर दें? उनका ख्याल है कि भारतको स्वतन्त्रताका अपहरण इंग्लैण्डकी नियामक सभामें पूंजीपतियों तथा धनाढ्योंकी प्रबलताके कारण ही हुआ है। देखें संसारकी भिन्न भिन्न नियामक सभाएं आगे चलकर क्या रूप धारण करती हैं।

§६६ आधुनिक नियमोंका आधार।

यूरोपमें पांचवी सदीके अन्दर रोमन तथा ट्यूटॉनिक राजनीतिके परस्पर मिलनेसे आधुनिक राज्य-नियमोंका प्रादुर्भाव हुआ। शुरू शुरूमें ट्यूटन लोगोंके राज्य-नियम रोमन

लोगोंसे सर्वथा भिन्न थे। रोमनलोग शासकोंको आज्ञा ही राज्य-नियम समझते थे परन्तु ट्यूटन लोगोंमें यह बा था। उनमें भारतीयोंके सदृश देश-प्रथा तथा रीति-रिवा ही प्रधानतः थी। रोमन राज्य नियम राष्ट्रीय थे परन्तु टानिक राज्य-नियम व्यक्तिगत थे। यही कारण है कि राज्य-नियम राष्ट्रके प्रत्येक व्यक्ति तथा प्रत्येक दलके समान थे परन्तु ट्यूटानिक राज्य-नियम भिन्न२ दलोंके भिन्न भिन्न थे। ट्यूटन लोग जहां गये वहां अपने नियम भी साथ लेते गये।

रोमन लोगों तथा ट्यूटन लोगोंके परस्पर मिल बड़ी गड़बड़ी हुई। परस्पर विरोधी नियम एक ही राष्ट्र लित हुए। उनके गिल्ड तथा पुरोहित पादरी लोग अपने नियमोंके द्वारा ही अपना शासन तथा निर्णय करते थे। रोमन लोगोंमें यह बात न थी। वहां भिन्न भिन्न दलों श्रेणियोंके लिये भी एक ही सदृश नियम थे। धीर ट्यूटानिक राज्यनियमोंपर रोमनलोगोंका प्रभाव पड़ा। सा धर्मोंके सहारे रोमन राज्य-नियम यूरोपमें प्रचलित गये। असभ्यलोगोंके शासकोंने बहुत समय पहले ही सिद्धान्तोंपर अपने कानूनोंको बनाया और एकत्र वि विसिगाथ्सके राज्य-नियम इसीके उदाहरण हैं। यह ही ग्यारहवीं सदी तक यूरोपके शासनका आधार था।

इटैलियन नगरोंने ग्यारहवीं सदीके अन्तमें बहुत की। उनका व्यापार दूर दूर तक फैल गया। व्यवसाय विशेष उन्नति की। व्यापार-व्यवसायकी वृद्धिके साथ साथ उनमें लोकतन्त्र राज्य स्थापित हुआ। भिन्न भिन्न स

वाले देशों पर साम्राज्यके होनेसे और एक नयी परिस्थितिमें काम करनेसे प्रचलित राज्य-नियमोंको बदलना उनके लिये आवश्यक हो गया। बालोन्या (Bologna) विश्वविद्यालयमें ही सबसे पहिले रोमन राज्य नियमोंका अध्ययन शुरू हुआ। यहांसे इटैलियन नगरोंमें और फिर स्पेन, पुर्तगाल तथा हालैण्डमें इसका प्रचार हुआ। इंग्लैण्ड भी इसमें अन्य देशोंसे पीछे न रहा। रोममें पढ़नेके लिये जाकर अंग्रेज लोग रोमन राज्य-नियमों तथा उनके आधारभूत सिद्धान्तोंको अपने साथ लाने लगे। आंग्ल राजाओंने भी उनको सहारा दिया। इसका मुख्य कारण यह था कि रोमन सिद्धान्तोंके अनुसार राज्य-नियमोंका संशोधन करनेमें राजाकी शक्ति बहुत ही अधिक बढ़ जाती थी।

इस स्थानपर चर्चके प्रभावको भी न भूलना चाहिये। चर्चोंके अपने ही नियम तथा अपने ही न्यायाधीश थे। शिक्षणमें एक मात्र एकाधिकार होनेसे, शासकोंके सलाहकार तथा राज्य-नियमोंके ज्ञाता इन्हींके प्रभावमें होते थे। लैटिनके प्रचारने भी रोमन राज्य-नियमों तथा रोमन सिद्धान्तोंको इंग्लैण्डमें विशेष तौर पर प्रचलित किया।

सबसे बड़ी बात तो यह थी कि फ्यूडलिज्मसे छुटकारा पाते ही रोमन राज्य-नियमोंका अवलम्बन करनेके सिवाय और कोई भी संगठनका तरीका यूरोपीय राष्ट्रोंको न सूझा। राजाका संपूर्ण राष्ट्रीय शक्तिको अपने हाथोंमें करने, अपनी ही आज्ञाको राज्य-नियमका रूप देने और वकीलों, बैरिस्टरोंपर रोमन सभ्यताका भरपूर प्रभाव होनेका भी यही परिणाम हुआ कि रोमन राज्य-नियम तथा रोमन सिद्धान्त

ही यूरोपके संगठनके आधार बने। संवत् १८६१ (सन् १८०४) के नैपोलियनके कोडको भी न भूलना चाहिये। रोमन राज्य नियम, फ्रांसीसी रीति रिवाज, और फरांसीसी राज्यक्रान्तिके नियम तथा सिद्धान्तोंको मिलाकर यह कोड बनाया गया था। सारे यूरोप और स्पेनिश अमेरिकामें यह कोड प्रचलित हुआ।

इंग्लैण्डने अपना नया रास्ता ही लिया। इंग्लैण्डके राज्य-नियमोंका आधार ट्यूटानिक रीति-रिवाज ही है। इसका यह मतलब नहीं कि इंग्लैण्ड रोमन राज्य-नियम तथा सिद्धान्तोंसे सर्वथा ही बचा हुआ है। पूरी चार सदियों तक इंग्लैण्ड रोमका ही एक प्रान्त था। रोमन राज्य-नियम ही उसके शासन तथा न्यायका आधार थे। मध्य-कालमें इंग्लैण्डके पादरी रोमके अन्दर पढ़नेके लिये जाते और वहांसे रोमन विचारोंको अपने साथ ले आते थे। यह सब होते हुए भी इंग्लैण्डके राज्य-नियमोंमें ट्यूटानिक रीति-रिवाज़ोंका मुख्य भाग है। संयुक्त प्रान्त अमेरिका इंग्लैण्डका ही एक उपनिवेश था, यद्यपि आज कल वह स्वतन्त्र है तो भी उसकी सभ्यता अंग्रेजोंकी ही सभ्यता है। वहांके राज्य-नियम इंग्लैण्डके राज्य-नियमके ही प्रतिबिम्ब हैं। उनपर ट्यूटानिक जातिकी छाप बनी है।

इंग्लैण्डके राज्यनियमोंमें दो समय विशेष परिवर्तन हुए। एक तो उस समय जबकि चर्च राज्य पृथक् न रहकर राष्ट्रीय राज्यमें ही मिल गया और दूसरा उस समय जबकि प्यूरिटन लोगोंने अपने विचारोंको राज्य-नियमोंके अदल बदलमें आधार बनाया। इन सब परिवर्त्तनोंके होते हुए भी

इंग्लैण्डके राज्य-नियमोंका आधार ट्यूटानिक रीति-रिवाज़ों-पर ज्योंका त्यों बना रहा । आधारमें फरक न पड़ा ।

सारांश यह है कि राष्ट्रीय नियमोंमें ट्यूटानिक सिद्धान्त और साधारण नियमोंमें रोमन सिद्धान्त ही मुख्य रहे । स्थानीय स्वराज्य तथा पञ्चायती राज्य यूरोपमें न शुरू होता यदि ट्यूटन लोग अपना सब कुछ खो देते और रोमन रंगमें पूरे तौरपर रंगजाते, परन्तु उन्होंने ऐसा न किया । उन्होंने अपनी राजनीति तथा शासन प्रणालीको रोमन सिद्धान्तोंके सहारे उन्नत किया । उनने अपनी ही नाव पर अपनी ही ईंटोको रोमन चूनेसे जोड़कर बहुत ही खूबसूरत महल खड़ा किया । नागरिक प्रबन्ध तथा औपनिवेशिक शासनकी उन्नति भी रोमन सिद्धान्तोंके सहारे ही की गयी । ट्यूटन लोग इन्हीं बातोंमें रोमनलोगोंसे बहुत पीछे थे । नगरके प्रबन्धमें रोमन लोग बहुत आगे बढ़ चुके थे । मध्यकालमें ज्योंही यूरोपीय नगरोंने अपना सिर ऊपर उठाया-रोमन शासनप्रणाली उनमें प्रचलित हो गयी । उपनिवेशोंके बढ़नेपर यूरोपीय राष्ट्रोंको पुनः रोमकी शासन प्रणालीका सहारा लेना पड़ा ।

§६७ अधिकार

राज्यनियम राष्ट्रीय इच्छाओंके ही प्रतिबिम्ब हैं । राष्ट्र स्पष्ट तौरपर यह प्रगट कर देता है कि वह किन किन वैयक्तिक अधिकारोंकी रक्षा करेगा और किन किन नियमोंपर चलनेके लिये उनको बाधित करेगा । इस विषय पर विचार करनेके लिये निम्नलिखित बातोंको सामने रखना चाहिये ।

(क) कौन कौन मनुष्य राज्यके अधिकारोंसे लाभ उठा

रहे हैं और किन किन मनुष्योंको इस प्रकारके अधिकार प्राप्त हैं?

(ख) कहां कहांपर राज्याधिकारका मुख्यतः प्रयोग किया जाता है?

(ग) किस प्रकारके मनुष्य क्षमाके योग्य हैं?

(घ) क्षमा करना या अपराध माफ करना किसका कर्त्तव्य है?

गम्भीर विचार करनेपर यह मालूम पड़ता है कि—

(१) व्यक्तिः—मनुष्य, मनुष्यसंघ तथा संचित संपत्ति उस समय कृत्रिम पुरुष (Artificial persons) के नामसे पुकारी जाती हैं जब कि उनको राजनीतिक अधिकार प्राप्त होते हैं या राज्यके द्वारा विशेष तौरपर उनकी रक्षा की जाती है।

(२) वस्तुः—स्थिर संपत्ति तथा वैयक्तिक जायदादोंको ही पदार्थ समझना चाहिये। राज्य ऐसे ही पदार्थोंकी रक्षा करता है। इनकी रक्षामें वह अपने राज्याधिकारको काममें लाता है।

(३) खास खास मामलों तथा घटनाओंमें राज्य अपराध माफ कर देता है। पागलों तथा रोगियोंके मामलेमें इसी प्रकारकी बातें आम तौरपर की जाती हैं।

§६८ *राज्यनियमका विभाग*

राज्यनियमका वर्गीकरण भिन्न भिन्न लेखकोंने भिन्न भिन्न आधारपर किया है। निम्नलिखित वर्गीकरण सबसे श्रेष्ठ है।

(ख) स्वराष्ट्रकी सेनाएँ जब किसी दूसरे राष्ट्रमें होती हैं तो वे उस राष्ट्रके नियमोंके अनुसार चलनेके लिये बाधित नहीं की जा सकतीं। इसमें सन्देह भी नहीं है कि बिना आज्ञाके किसी भी राष्ट्रकी सेना किसी दूसरे राष्ट्रके अन्दरसे नहीं गुजर सकती।

(ग) विदेशीय दूतोंपर कोई भी राष्ट्र अपने राज्यनियमोंके अनुसार मुकद्दमा आदि नहीं चला सकता है।

(घ) खास खास सन्धियोंके द्वारा यूरोपीय राष्ट्रके लोगोंने एशियाटिक राष्ट्रोंके अन्दर रहते हुए उनके शासनसे अपने आपको बचा लिया है। टर्की, चीन, तथा शाममें देशी रियासतें यूरोपीयोंके अपराधका निर्णय नहीं कर सकती हैं। चीनको इस मामलेमें विशेष शिकायत है। परन्तु यूरोपीय राष्ट्रोंको इस बातकी क्या परवाह? यूरोपीय लोग चीनमें बहुतसे अनुचित काम करते हैं परन्तु चीनका राज्य उनको दण्ड देनेमें असमर्थ है। सबसे अधिक अन्यायकी बात तो यह है कि चीनियोंको यूरोपीय राष्ट्रोंमें ऐसा कोई भी अधिकार नहीं प्राप्त है।

§७५ (५) राजनीतिके सम्बन्धमें।

भिन्न राष्ट्रोंमें अपने दूतोंका रखना अति प्राचीनकालसे प्रचलित है। यूनान, मिश्र तथा भारतके दूत भिन्न भिन्न राष्ट्रोंमें रहते थे। मेगस्थनीज़का चन्द्रगुप्तके दरबारमें रहना और भारतका विस्तृत तौरपर एक पुस्तकमें वर्णन करना एक प्रसिद्ध घटना है। मध्यकालमें यूरोपके अन्दर दूसरे राष्ट्रोंमें दूत जाते थे परन्तु चिरकालतक न रहते थे। आज-

कल राष्ट्रोंका पारस्परिक सम्बन्ध बहुत ही अधिक घनिष्ठ हो गया है। व्यापार व्यवसाय सम्बन्धी झगड़े भिन्न भिन्न राष्ट्रोंमें सदाही होते रहते हैं। यही कारण है कि आजकल सभ्य राष्ट्र अपने अपने राजदूतोंको भिन्न भिन्न राष्ट्रोंमें स्थिर तौरपर रखते हैं। परस्पर बातचीतकी भाषा शुरू शुरूमें लैटिन थी और फिर उसके स्थानमें फरासीसी हो गयी थी। आजकल भिन्न भिन्न राष्ट्र अपनी ही भाषाको काममें लाते हैं।

राजदूत अपने राष्ट्रको परराष्ट्रके राजनीतिक विचारों तथा राजनीतिक घटनाओंकी सूचना देते हैं, अपने राष्ट्रके नागरिकों तथा यात्रियोंके अधिकारोंका ख्याल रखते हैं और समय समयपर उनके अपराधोंका निर्णय भी करते हैं। एशियाटिक राष्ट्रोंमें इन राजदूतोंके अधिकार बहुत ही अधिक हैं। भारतकी रियासतोंको कठपुतलीकी तरह नचाना और मनमाने ढंगपर उनसे काम लेना अंग्रेज राजदूतोंका आम तौरपर काम है। सन्धिके अनुसार यद्यपि उनको इस प्रकारके अधिकार नहीं मिले हुए हैं तो भी देशी राजाओंको उनसे पूरे तौरपर दबना पड़ता है। न दबें तो करें क्या! उनके पास अपने अधिकार तथा अपनी स्वतन्त्रताकी रक्षा करने तककी शक्ति नहीं है। वे अंग्रेज प्रभुओंकी दया तथा कृपासे ही अपने जीवन तथा मानको बचा सकते हैं।

राजदूतोंको हटाकर दूसरे राजदूतोंको बुलानेमें प्रत्येक स्वतन्त्र राष्ट्रका अधिकार है। जिस राष्ट्रके राजदूत हटाये जाते हैं वे इसमें अपना अपमान भी नहीं समझते हैं क्योंकि इस प्रकारको घटनाका यही अर्थ लिया जाता है कि जिस राष्ट्रने राजदूतको हटाया है वह सम्बन्ध तोड़ना नहीं

चाहता है अपितु सम्बन्ध स्थिर रखना चाहता है। उसने ऐसा काम भी इसलिये किया है कि अनुकूल राजदूतके होनेसे वह सम्बन्ध दृढ़ रख सके।

परन्तु यदि कोई राष्ट्र राजदूतको अपने यहांसे हटावे और दूसरे राजदूतको न आने दे तो इसका तात्पर्य 'युद्ध' से लिया जाता है। युद्धकी उद्घोषणासे पूर्व प्रायः राष्ट्र अपने अपने राजदूतोंको स्वयं ही बुला लेते हैं।

युद्ध समाप्त होनेपर भिन्न भिन्न राष्ट्र एक दूसरेसे सन्धि करते हैं। संयुक्त प्रान्त अमरीकामें सीनेट्की शक्ति अपूर्व है। सीनेट् ही सन्धियोंको स्वीकृत करती है। सन्धिके अनेक भेद हैं। भूमिका अपहरण, अधिकारका अपहरण, सीमा-निश्चय आदि भिन्न भिन्न प्रकारको सन्धियोंके मुख्य आधार होते हैं।

सन्धि विषयक बातोंको तय करनेके लिये भिन्न भिन्न राष्ट्र भिन्न भिन्न योग्य व्यक्तियोंको ही नियत करते हैं। कभी विदेशीय मन्त्री भी इसी कामके लिए भेज दिया जाता है। आम तौरपर उदासीन राष्ट्रोंमें भी सन्धियोंकी शर्तें तय की जाती हैं। इस महायुद्धमें तो प्रायः मित्रराष्ट्रोंने अपने अपने राष्ट्रोंको ही सन्धिकी शर्तोंको तय करनेके लिये चुना है। राष्ट्रोंकी समानताको दिखानेके लिये जो सन्धि-पत्र जिस राष्ट्रके सम्बन्धमें होता है शुरू शुरूमें उसपर उसी राष्ट्रका नाम लिखा जाता है।

अन्तर्जातीय झगड़ोंमें प्रायः राष्ट्रोंको अपनी शिकायतोंका कारण स्पष्ट तौरपर देना पड़ता है। यदि इसपर भी झगड़ा तय न हुआ तो पुनः युद्ध शुरू हो जाता है। सीधा-

रण झगड़े तो किसी उदासीन राष्ट्रको मध्यस्थ बनाकर तय कर लिये जाते हैं। मध्यस्थ राष्ट्रका निर्णय राष्ट्रोंको मानना पड़ता है।

हेगकी समितिने भी छोटे मोटे झगड़ोंको निपटानेका काम बहुत ही अच्छी तरहसे किया है। संवत् १९५६ (सन् १८९९) में रूसके ज़ारके आमंत्रणपर २६ राष्ट्रोंके प्रतिनिधि हेग नामक स्थान पर एकत्र हुए। इन्होंने जल तथा स्थल युद्धकी कठिनाइयोंको कम करने तथा युद्धसामग्रीको घटानेका इरादा किया। अन्तिम   तभी हो सकता था जब कि सब राष्ट्र स्वीकृत करते। परन्तु यह न हुआ। कुछ छोटी मोटी बातें सभी राष्ट्रोंने तय कीं और उनपर अपने अपने हस्ताक्षर भी कर दिये। जर्मनीके विरुद्ध होनेसे युद्ध सामग्री विषयक कुछ भी निर्णय न हुआ। संवत् १९६४ (सन् १९०७) में राष्ट्रोंकी द्वितीय समिति हेगमें बैठी। युद्ध कालमें शत्रुराष्ट्रमें पड़ी वैयक्तिक सम्पत्तिके साथ क्या व्यवहार होना चाहिये इसका निर्णय किया गया। बहु सम्मतिसे ही इस स्थानपर काम किया गया। युद्धोंके घटाने तथा उत्पन्न न होने देनेके तरीकों पर विचार हुआ। यह सब होते हुए भी राष्ट्रोंके लाभ तथा स्वार्थने उस भयंकर युद्धको संसारके सम्मुख रखा जिसकी किसीको भी आशा न थी। एशियाटिक राष्ट्रोंके साथ यूरोपीय राष्ट्रोंका दुर्व्यवहार तथा बचे बचाये स्वाधीन एशियाटिक राष्ट्रोंको निगलनेकी प्रबल इच्छा अभी और कई एक भयंकर युद्धोंको स्थान देगी।

यदि चीनके साथ जापानका व्यवहार अनुचित है तो

यूरोपीय राष्ट्रोंकी स्वार्थपूर्ण इच्छा तो और भी भयंकर है । शुरू शुरूमें यूरोपीय राष्ट्रोंने भारतवर्षको बांटना चाहा परन्तु इंग्लैण्ड अकेला ही हड़प कर गया । अब चीनको खानेके लिए जापान, अमरीका तथा इंग्लैण्डकी प्रबल इच्छा है । यूरोपीय गोरराष्ट्र अभी युद्धसे थके हैं । ज्योंही उनकी थकावट दूर हुई त्योंही ये पुनः युद्धपर उतारू हो जायंगे । राजनीतिज्ञोंका विचार है कि भावी युद्ध एशियामें ही होगा ।

महायुद्धके खातमे पर डाक्टर वुड्रो विल्सनकी उद्घोषणाओंके अनुसार काम न कर रूम (टर्की) का अंगभंग करना, जर्मनीको लज्जाजनक शर्त्तोंसे बांधना और आष्ट्रिया हंग्रीके सन्मुख राष्ट्रनाशक शर्तोंको रखना, इस बातका साक्षी है कि अभी यूरोपीय राष्ट्रोंके स्वार्थ तथा दुर्व्यवहार भयंकरसे भयंकर युद्धोंको संसारके सन्मुख रखेंगे ।

सबसे अधिक दुःखकी बात तो यह है कि इंग्लैण्ड अपनी सामुद्रिक शक्तिके बलपर पराजित राष्ट्रोंको भूखों मार डालनेका भय दिखाता है और जबरन् सन्धिपत्रपर हस्ताक्षर करवानेके लिये बाधित कर रहा है, परन्तु इसका फल यही है कि कुछ समय तक युद्ध रुका रहेगा । ज्योंही पराजित राष्ट्र शक्तिशाली हुए त्योंही वे इंग्लैण्डसे इन शर्मनाक शर्त्तोंपर हस्ताक्षर करवानेका बदला चुकानेका यत्न करेंगे । सारांश यह है कि अभी सभ्यराष्ट्र उस स्वार्थरहित अवस्थाको प्राप्त नहीं कर सके हैं, जिसमें है कि युद्धोंके समूल नाशकी कल्पना की जा सके ।

§७६ (६) युद्धके विषयमें अन्तर्जातीय राज्यनियम ।

अन्तर्जातीय सम्बन्धोंका स्थिर रखना तथा राष्ट्रोंके

पारस्परिक झगड़ोंका शान्त करना किसी भी सङ्गठनके हाथमें न होनेसे राष्ट्रोंका पारस्परिक युद्ध अनिवार्य्य हो गया है। युद्ध शुरू करनेसे पूर्व शत्रुराष्ट्र एक दूसरे राष्ट्रके नागरिकोंको विशेष विशेष अधिकारोंसे वञ्चित कर देते हैं। घेरा डालकर व्यापार व्यवसायको धक्का पहुंचाना और अन्न आदि भोज्य पदार्थोंको न पहुंचने देना इत्यादि काम अपनी अपनी शक्तिके अनुसार प्रत्येक राष्ट्र करता है। शत्रुराष्ट्रके जहाज़ोंको पकड़ कर और शत्रु राष्ट्र निवासियोंको कैदकर एक दूसरेको नुकसान पहुंचानेका यत्न किया जाता है। इन सब उपरिलिखित साधनोंसे भी यदि राष्ट्रकी क्रोधाग्नि न शान्त हो तो अपनी सेनाओंके द्वारा एक दूसरेपर आक्रमण किया जाता है। घरेलू झगड़ोंमें भी वर्त्तमान राज्य युद्धके नियमोंको ही काममें लाते हैं। पञ्जाबके अन्दर अंग्रेजी राज्यने प्रजापर घोर अत्याचार किया। निःशस्त्र प्रजापर मेशीनगन द्वारा भयंकर गोलियां चलायी गयीं और गुजरांवालाके शान्त नागरिकोंपर आकाशसे बम्ब गिराये गये। इसके बाद कई लोगोंको फांसी दी गयी और बहुतोंको काले पानीकी भी सजा हुई। लोगोंका अपराध यह था कि उन्होंने रोलैट एक्टके पास होने पर अपने असन्तोषको जाहिर करनेके लिए एक सभा कर डाली, अस्तु।

जिन जिन देशोंमें जनता राज्यके भयंकर अत्याचारोंसे अपने आपको छुड़ानेके लिये गदर कर देती है और गदरमें सफल होकर एक नया राज्य स्थापित करती है, उनको भिन्न भिन्न जातियोंसे अपने राज्यको स्वीकृत

करवाना पड़ता है। बहुत बार इसमें बड़ी बड़ी कठिनाइयां झेलनी पड़ती हैं। पूर्व राज्यके मित्र राष्ट्र नवीन राज्यको स्वीकृत नहीं करते हैं। उनके सम्मुख नयेसे नये झमेले पेश करते हैं।

युद्ध उद्घोषित करनेका अधिकार भिन्न भिन्न राष्ट्रोंमें भिन्न भिन्न प्रकारसे काममें लाया जाता है। संरक्षणसे सम्बद्ध युद्धोंमें प्रायः शासक विभाग स्वतन्त्र हैं। आक्रमण करते समय उनको नियामक विभागकी स्वीकृति लेनी पड़ती है। मध्यकालमें दूरवर्ती राष्ट्रोंके साथ युद्ध या सन्धि करनेका अधिकार भिन्न भिन्न कम्पनियों तथा औपनिवेशिक राज्योंको प्राप्त था। आजकल यह बात नहीं रही। युद्ध छिड़ते ही राष्ट्रोंका पारस्परिक सम्बन्ध टूट जाता है। शत्रुराष्ट्रके नागरिक एक दूसरेको शत्रु समझने लगते हैं। व्यापार बन्द हो जाता है। ठेका सम्बन्धी काम जहांके तहां पड़े रह जाते हैं। युद्धोंके नियम युद्धोंके तरीकोंके साथ बदलते रहते हैं। अधिक तर झुकाव यहीहै कि कैदियोंके साथ बुरा व्यवहार न किया जाय। अमानुषिकता तथा क्रूरताको दूर रख कर काम किया जाय। यह होते हुए भी मानुषी हृदय शत्रुता तथा क्रोधमें जो न करे वही थोड़ा है। जर्मनी तथा मित्र राष्ट्रोंने एक दूसरे राष्ट्रके निवासियों तथा कैदियोंके साथ जो क्रूर व्यवहार किये वे इतिहासके पन्नोंमें सदा अंकित रहेंगे। इस महायुद्धमें स्मरणीय ऐतिहासिक पदार्थ नष्ट किये गये और अच्छे अच्छे देखने योग्य मकान ख़ाकमें मिला दिये गये।

युद्धके तरीकों पर राजनीतिज्ञों का भयंकर मतभेद है। यह होते हुए भी संवत् १९३१ (सन् १८७४) की ब्रूसल्स कान्फ्रेन्समें गुरिल्ला सैनिकोंको रखना और प्रत्येक नागरिकका युद्धके लिए तैयार करना राष्ट्रोंके लिए अनुचित ठहराया गया। कैदियों को मार डालना, विषैली गोलियों को छोड़ना तथा शत्रुराष्ट्रकी भूमिको उजाड़ना वर्त्तमान-युद्ध-प्रणालीके अनुसार अनुचित है। संवत् १९२१ (सन् १८६४) की जिनोवा समितिने घायलोंको सेवा करनेवाली तथा इलाज करनेवाली समितियों के लोगोंपर प्रत्येक प्रकारका आक्रमण तथा प्रहार रोक दिया।

युद्धके समयमें सम्पत्ति सम्बन्धी अन्तर्जातीय नियम निम्नलिखित हैं—

(१) भूमिविषयक:—सैनिक कार्य्यों में आनेके योग्य राष्ट्रीय संपत्तिको शत्रु लोग नष्ट कर सकते हैं। शिक्षा, धार्मिक कृत्य तथा राष्ट्रीय कार्य्यों से सम्बन्ध रखनेवाली सम्पत्तिका संरक्षण आवश्यक है। कोई भी शत्रु उसको नहीं छू सकता।

(२) वैयक्तिक संपत्ति विषयक-वैयक्तिक सम्पत्ति दो प्रकारकी होती है। एक तो स्थिर और दूसरी पौरुषेय। स्थिर सम्पत्ति युद्धके समयमें नहीं छीनी जा सकती है। पौरुषेय संपत्ति जरूरतके अनुसार ली जा सकती है, परन्तु उसके बदलेमें धन आदिका देना जरूरी है। लूट सर्वथा बन्द है।

(३) समुद्र विषयक-प्रत्येक प्रकारका जहाज पकड़ा जा सकता है। जहाजके मामलेमें व्यक्तियोंका या कम्पनियोंका विचार नहीं किया जा सकता। इसमें सन्देह भी नहीं है कि उन

सीन राष्ट्रोंके समुद्रमें किसीके भी जहाजको कोई भी हाथ नहीं लगा सकता है।

पकड़े हुए जहाजोंकी सम्पत्तिपर उसी राष्ट्रका हक़ होता है जो कि उसको पकड़ता है। वह उसको चाहे बेचे, चाहे जलाये। कोई भी इस मामलेमें कुछ बोल नहीं सकता है। संवत् १८६६ (सन् १८०६) में लन्दनके अन्दर इस विषयमें अन्तर्जातीय सभा हुई और कुछ नियम भी बनाये गये। परन्तु अभी तक इस मामलेमें अन्धाधुन्धी पूर्ववत प्रचलित है। शत्रु राष्ट्र जैसा क्रूर व्यवहार चाहे करे कोई चूं चां करनेवाला नहीं है।

§७७ (७) उदासीनताके विषयमें अन्तर्जातीय राज्यनियम।

भिन्न भिन्न राष्ट्रोंके पारस्परिक युद्धमें जो राष्ट्र कुछ भी भाग नहीं लेते हैं वे उदासीन राष्ट्रके नामसे पुकारे जाते हैं। बहुत बार पारस्परिक युद्धसे बचनेके लिये राष्ट्र उदासीन बनाये भी जाते हैं। महायुद्धसे पूर्व बैल्जियम तथा स्विजलैण्डकी यही स्थिति थी। जिन चीज़ोंपर या स्थानोंपर संसारके भिन्न भिन्न राष्ट्रोंका स्वार्थ समान तौरपर होता है, वे 'उदासीन' कर दिये जाते हैं। स्वेजनहर सभी राष्ट्रोंके लिये एक सदृश खुली हुई है।

मध्यकालमें यूरोपके अन्दर 'उदासीनता' विषयक कुछ भी नियम न प्रचलित थे। व्यापारके बढ़नेपर और राष्ट्रोंके पारस्परिक सम्बन्धके घनिष्ट होनेपर इस बातकी विशेष तौरपर जरूरत पड़ी। विक्रम १८ वीं सदीके मध्यमें इस बातकी भूमिका बंधनी शुरू हुई। इंग्लैण्डको द्वीपी स्थिति और

संयुक्त प्रान्त अमरीकाका यूरोपीय युद्धोंसे पृथक रहना इत्यादि बातोंने यूरोपमें उदासीनता विषयक राज-नियमोंको प्रचलित किया ।

लड़ाकू राष्ट्रोंको उदासीन राष्ट्रोंके साथ व्यवहार करते हुए आजकल निम्नलिखित बातें ख्यालमें रखनी पड़ती हैं।

(१) उदासीन राष्ट्रोंकी भूमि, समुद्र, तथा आकाशमें युद्ध न करना ।

(२) उदासीन राष्ट्रोंकी भूमिमें युद्धकी तैयारी न करना । उदासीन राष्ट्र के समुद्रमेंसे जहाज़ोंको ले जा सकते हैं और आकाशमेंसे विमानोंको उड़ा सकते हैं परन्तु किसी प्रकारका भी युद्ध नहीं किया जासकता।

(३) उदासीन राष्ट्रोंके उन नियमोंको माननेके लिये लड़ाकू राष्ट्र बाधित हैं जो वे अपने देशकी रक्षाके लिये बनावें । उदासीन राष्ट्र अपने बन्दरगाहोंको लड़ाकू राष्ट्रोंके लिये बन्दकर सकते हैं । परन्तु इसमें सन्देह भी नहीं है कि उनको लड़ाकू राष्ट्रोंके साथ एक सदृश व्यवहार करना चाहिये।

निम्न लिखित मामलोंमें उदासीन राष्ट्रोंको लड़ाकू राष्ट्रोंका ख्याल रखना पड़ता है ।

(१) किसी भी लड़ाकू राष्ट्रको युद्ध सामग्री सम्बन्धी सहायता न देना ।

(२) किसी भी शत्रुराष्ट्रको विशेष अधिकार न देना जो कि दूसरे शत्रुराष्ट्रको न प्राप्त हों ।

(३) लड़ाकू राष्ट्रोंको धन सम्बन्धी सहायता न देना।

(४) लड़ाकू राष्ट्रोंके गुप्तचरों तथा दूतोंको अपने देशमें न आने देना ।

(५) अपने देशके रहनेवालोंको किसी भी लड़ाकू राष्ट्रकी सहायताके लिये न जाने देना । एक दो व्यक्ति युद्धमें जा सकते हैं परन्तु हजारोंको संख्यामें ऐसा नहीं किया जासकता ।

(६) उदासीनता सम्बन्धी नियमोंके टूटनेसे यदि किसी शत्रुराष्ट्रको नुकसान पहुंचा हो तो उस नुकसानको पूरा करना ।

§७८ *व्यापार सम्बन्धी उदासीनताके विषयमें ।*

युद्धके समयमें व्यापारके अन्दर बहुत कुछ स्वतन्त्रता रखी जाती है । जहां तक होता है इसमें बहुत रुकावटें नहीं डाली जाती हैं । परन्तु इसमें भी सन्देह नहीं है कि घेरेकी हालतमें प्रत्येक जहाजके पदार्थोंका, जहाजकी मिलकियतका तथा अन्य बहुतसी बातोंका ज्ञान जब शत्रु प्राप्त कर लेता है तभी उसको स्वतन्त्र तौरपर पदार्थ ले जानेकी आज्ञा देता है ।

मध्यकालमें समुद्रके द्वारा व्यापार करना सुगम काम न था । प्रत्येक राष्ट्र दूसरे राष्ट्रके जहाजोंको लूट सकता था । यही कारण था कि उस जमानेमें दूर दूरके देशोंके साथ व्यापार करनेके लिये बड़ी बड़ी कम्पनियां खड़ी की गयी थीं और उनको युद्ध आदि उद्घोषित करनेका अधिकार दे दिया गया था । हालैण्डने ही इस प्रकारकी लूटमारको रोका और सामुद्रिक व्यापारको उन्नत किया । संवत् १९१३ (सन् १८५६) में पैरिसके अन्दर जो सभा हुई उसमें निम्नलिखित बातें तय की गयीं ।

(१) युद्ध सम्बन्धी सामग्रीको लेजानेवाले जहाजों-

को छोड़कर युद्धकालमें उदासीन राष्ट्रोंके जहाज़ोंको कोई भी नहीं पकड़ सकता है ।

(२) जिस जहाजपर उदासीन राष्ट्रका झण्डा होगा वह न पकड़ा जायगा ।

हेगकी द्वितीय सभामें 'युद्धके अन्दर वैयक्तिक संपत्तिको लेजानेवाले जहाजोंको न पकड़ा जाय, यह प्रस्ताव पेश हुआ परन्तु इंग्लैण्डके मञ्जूर न करनेसे पास न हो सका। आजकल विशेष विवाद इसी बातपर है कि 'युद्धकी सामग्री' में कौन कौनसे पदार्थ समझे जायं और कौन कौनसे पदार्थ न समझे जायं। इसका मुख्य कारण यह है कि बहुतसे ऐसे पदार्थ हैं जो कि युद्धके कार्यमें भी आते हैं और अन्य साधारण कामोंमें भी आते हैं। युद्धके समयमें प्रायः ऐसे ही मामलोंमें छोटेमोटे झगड़े आते हैं और पुनः शान्त हो जाते हैं ।

ग्यारहवाँ परिच्छेद ।

राष्ट्र तथा राज्यका स्वरूप ।

§७९ *राष्ट्रका स्वरूप ।*

राष्ट्रोंका वर्गीकरण करना सुगम काम नहीं है। भूमि, जनसंख्या, एकता तथा संगठनका सभी राष्ट्रोंमें होना जरूरी है। सभी राष्ट्र प्रभुत्वशक्तिसंपन्न होनेसे समान हैं, यह होते हुए भी उनमें कुछ भेद है।

भूमि तथा जनसंख्याके विचारसे राष्ट्रोंका वर्गीकरण संभव है परन्तु राजनीतिशास्त्रमें इसका कुछ भी महत्व नहीं। यह होते हुए भी नगर-राज्य जाति-राज्य, तथा सार्वभौम-राज्यका व्यवहार होता है। राष्ट्रोंके स्वरूप तथा विस्तारका उनकी शक्तिके साथ विशेष सम्बन्ध है। सिद्धान्तमें चाहे सभी राष्ट्र क्यों न समान हों परन्तु वस्तुतः यह बात नहीं है। बड़े राष्ट्रोंकी शक्ति छोटे राष्ट्रोंसे बहुत ही अधिक है। एक यही बात राष्ट्रोंमें समता सिद्धान्तका लोप कर रही है। अन्य बातोंका कहना ही क्या है?

एकताके आधारपर तो राज्यका वर्गीकरण हो ही नहीं सकता है, क्योंकि इसका सभी राष्ट्रोंमें होना परम आवश्यक है। एक संगठन हो ऐसी बात है जिसमें राष्ट्रोंका पारस्परिक भेद है। जितने राष्ट्र हैं उतनेही प्रकारका उनका संगठन है।

राष्ट्रके स्वरूपका प्राचीनकालमें भी वर्गीकरण किया गया। परन्तु चूंकि प्राचीन राजनीतिज्ञोंका ध्यान राष्ट्रके स्वरूपपर पूर्ण तौरपर न था इसीलिये उनके वर्गीकरणका आधार बदल गया। रोमसाम्राज्यके छिन्न भिन्न हो जानेके बाद यूरोपकी काया पलटी। जातीय राष्ट्रोंका उदय हुआ। माटस्क्यू रूसो तथा ब्लुण्ट्श्लीने समय समयपर राष्ट्रीय स्वरूपका नये सिरेसे निरीक्षण और वर्गीकरण किया। प्राचीन तथा नवीन वर्गीकरणमें कितना भेद है अब इसीपर क्रमशः प्रकाश डाला जायगा।

१. राष्ट्रीय स्वरूपका पुरातन वर्गीकरण।

आजसे दो सहस्रवर्ष पूर्व अरस्तूने राष्ट्रीय स्वरूपका वर्गीकरण किया था। प्रत्येक राष्ट्रमें एक मुख्य अंग होता है जिसमें राष्ट्रीय शक्ति सञ्चित रहती है और वहांसे ही अन्य अंगोंमें बहती है। उस मुख्य अंगमें कितने जन सम्मिलित हैं इसीको लक्ष्य करके अरस्तूने राष्ट्रीय स्वरूपका वर्गीकरण किया था। साथही उसने संपूर्ण राष्ट्रोंको स्वाभाविक तथा अस्वाभाविक, इन दो विभागोंमें विभक्त कर दिया। राष्ट्रका मुख्यांग यदि अपनी शक्तिको राष्ट्रहितमें प्रयुक्त करे तो स्वाभाविक राष्ट्र और यदि राष्ट्र अहितमें प्रयुक्त करे तो अस्वाभाविक राष्ट्र होता है। राजा, कुलीन तथा प्रजामेंसे प्रभुत्व शक्तिका सञ्चय तथा स्रोत किसमें है इस विचारसे स्वाभाविक तथा अस्वाभाविक राष्ट्र त्रिविध हैं।

स्वाभाविकराष्ट्र	अस्वाभाविकराष्ट्र
(१) राजात्मक राज्य (Monarchy)	स्वेच्छाचारी राज्य (Despotism)
(२) कुलीनात्मक राज्य (Aristocracy)	धनिक राज्य (Oligarchy)
(३) प्रजात्मक राज्य (Democracy)	असभ्यमजन राज्य (Ochlocracy)

प्रभुत्वशक्ति कितनी संख्यामें है इसीको ध्यानमें रख करके राष्ट्रीय स्वरूपका उपरिलिखित वर्गीकरण किया गया है। परन्तु एकमात्र संख्याके विचारसे यदि इसमें 'गुण' का ध्यान न किया जावे तो कोई भी वर्गीकरण पूर्ण नहीं हो सकता है। यही नहीं, उपरिलिखित वर्गीकरणमें देवात्मकराष्ट्र (Ideocracy of theocracy) सर्वथा हो सम्मिलित नहीं हो सकते हैं क्योंकि उनमें प्रभुत्वशक्तिका स्रोत किसी जनसमाजको न मानकरके ईश्वर या बहुदेव ही माने जाते हैं।

बहुतसे राजनीतिज्ञोंकी सम्मतिमें 'संमिश्रितराष्ट्र' को भी अरस्तूके वर्गीकरणमें स्थान मिलना चाहिए। सिसरोने रोमन-राष्ट्रको संमिश्रितराष्ट्र प्रगट किया था, क्योंकि उसमें प्रभुत्व-शक्ति राजा, कुलीन तथा नागरिकोंमें संमिलित रूपसे विभक्त थी। मध्यकालमें राजनीतिज्ञोंने इंग्लैण्डको संमिश्रितराष्ट्र प्रगट करना प्रारम्भ किया। इसमें मुख्य कारण यही था कि वहां प्रभुत्वशक्ति 'राज, लार्डसभा तथा प्रतिनि-धिसभा' तीनोंमें ही विद्यमान थी। जो कुछ हो, संमिश्रित राष्ट्रकी पृथक् सत्ता हम किसी भी प्रकारसे नहीं कर सकते हैं। इससे 'राष्ट्रीयजीवन' का नाश होना स्वाभाविक है। राष्ट्रीय अंगोंमें परस्पर निरपेक्ष तौरपर प्रभुत्वशक्तिको स्थापित करनेवाला कोई भी वर्गीकरण प्रामाणिक नहीं हो सकता है। राष्ट्रका कोई अंग गौण तथा कोई अंग मुख्य हो सकता है, परन्तु सभी अंग परस्पर संबद्ध तथा प्रभुत्व-शक्तिसे संचालित रहते हैं। अर्थात् राष्ट्रका मुख्य अंग राष्ट्रीय शक्तिका स्रोत होता है। उसको भिन्न भिन्न अंगोंमें विभक्त करना कठिन है, अन्यथा राष्ट्रीय जीवनका नाश स्वाभाविक

१६

ही है। यही कारण है कि संमिश्रित राष्ट्रको कोई पृथक् सत्ता नहीं है।

महाशय मान्टस्क्यूने अरस्तूके वर्गीकरणको संख्याके स्थानपर सदाचारीय सिद्धान्तों द्वारा प्रगट किया है। उसके विचारमें एक सत्तात्मकराज्यका मान्य (१) स्वेच्छाचारी राज्यका भय, प्रजासत्तात्मक राज्यका सदाचार तथा कुलीनराज्यक मध्यता (moderation) विशेष चिन्ह होता है। इसके सदृश ही श्लीयर माचर (Schieirmacher) ने 'राजनीतिकविकास' के अनुसार अरस्तूके वर्गीकरणकी व्याख्या की है। उसकी सम्मतिमें 'राष्ट्र' का स्वतः उदय शासक शासितोंके पारस्परिक भेदसे है। इसका प्रथम क्रम अल्प राष्ट्रीय होता है। परन्तु ज्योंही अन्यजनोंमें राजनीतिक जागृति होती है त्यों ही इसका प्रथम क्रम नष्ट होकरके द्वितीय क्रमको स्थान दे देता है। शासक शासितोंमें जहां भेद अतिशय अल्प हो वहां प्रजात्मकराज्य होता है। प्रजात्मकराज्य की सत्ता संपूर्ण जनताकी राजनीतिक जागृतिपर आश्रित है। परन्तु जिस देशमें प्रजाके कुछ ही व्यक्तियोंमें राजनीतिक जागृति हो वहां प्रजात्मकके स्थानपर कुलीनात्मक राज्य होता है। राष्ट्रका तृतीय रूप एकसत्तात्मक राज्य है। इसमें संपूर्ण जाति शासित तथा एकही व्यक्ति शासक होता है।

मान्टस्क्यू तथा श्लीयरमैकरकी उपरिलिखित व्याख्या सर्वथा स्वीकार्य नहीं है, क्योंकि सदाचारके सिद्धान्तोंका भिन्न भिन्न देशीय शासन पद्धतियोंके साथ कोई अतिशय घनिष्ट सम्बन्ध नहीं है। मान्टस्क्यू द्वारा निर्दिष्ट चिन्ह भिन्न भिन्न शासनपद्धतियोंके साथ समवाय सम्बन्धसे रहते हैं, यह

कहना साहस मात्र होगा । इसी प्रकार श्लीयरमाचर द्वारा प्रतिपादित 'राष्ट्रों' में राजनीतिक विकासका क्रम त्रुटिपूर्ण होनेसे हेय है । प्राचीनकालमें 'राजनीतिक विकास' का क्रम वही था जो कि उसने प्रगट किया है, परन्तु आजकल तो राष्ट्रोंकी प्रवृत्ति राज्यात्मकराज्यसे प्रजात्मकराज्यकी ओर ही है ।

संख्याके अनुसार राष्ट्रके मुख्यांगका वर्गीकरण किया जा चुका है और साथ ही यह भी लिखा जा चुका है कि उसमें 'देवात्मकराष्ट्र' को अवश्य ही सम्मिलित करना चाहिये । देवात्मकराष्ट्रका स्वाभाविक रूप ईश्वरात्मक तथा अस्वाभाविक रूप प्रतिमात्मक होता है । संपूर्ण वर्गीकरण-की संक्षिप्त व्याख्या इस प्रकार है ।

(क) देवात्मकराज्यः—ऐसे राज्योंमें जनता ईश्वर या देव-विशेषको ही अपना मुख्य शासक समझती है ।

(ख) राजात्मकराज्यः—ऐसे राज्योंमें जनता ईश्वर या देव विशेषके स्थानपर किसी एक व्यक्तिको ही अपना मुख्य शासक समझती है ।

(ग) कुलीनात्मकराज्यः—कुलीनात्मकराज्योंमें जनताके कुछ उच्चकुलोंके व्यक्ति मुख्य शासकका पद ग्रहण करते हैं और शेष जनता 'शासित' का रूप प्राप्त करती है ।

(ग) प्रजात्मकराज्यः—प्रजात्मकराज्योंमें समष्टि रूपसे प्रजा ही मुख्य शासक होती है और व्यष्टि रूपसे वही 'शासित' का रूप धारण करती है ।

२. राष्ट्रीय स्वरूपका मान्टस्क्यू रूसो तथा ब्लुन्ट्शलीकृत वर्गीकरण ।

मान्टस्क्यू अर्वाचीन राजनीतिका पिता समझा जाता

है। उसीने सवत् १८०५ (सन् १७४८) राज्योंका एक तन्त्र राज्य, स्वेच्छाचारी राज्य, तथा लोकतन्त्र राज्यके रूपमें विभाग किया। उसके विचारमें लोकतन्त्र राज्य वह राज्य था जिसमें जनता प्रबन्ध रूपमें या निर्वाचकोंके द्वारा प्रभुत्व-शक्तिका प्रयोग करता हो। इसी प्रकार स्वेच्छाचारी राज्यमें बिना राज्यनियमोंके सहारे और एक तंत्र राज्यमें एक ही व्यक्ति लोकनियमोंके सहारे शासनका काम करता है। रूसोको यह वर्गीकरण पसन्द न था, यही कारण है कि उसने एकतन्त्रराज्य, कुलीन तन्त्रराज्य तथा लोकतन्त्रराज्य-में राज्यका वर्गीकरण किया। इसके सदृश ही उसने संमिश्रित राष्ट्रकी भी आवश्यकता प्रगट की। परन्तु उसमें क्या दोष है इसपर पूर्व उपप्रकरणमें प्रकाश डाला जाचुका है। रूसोके बाद ब्लुन्टश्लीने राजनीति शास्त्रको बहुत ही अधिक उन्नत किया। उसने जो द्वैधात्मक राज्यकी कल्पना की उसको अर्वाचीन राजनीतिज्ञ नहीं मानते हैं। वान माहलका वर्गीकरण तो शुरूसे ही सर्वप्रिय न हुआ।

अर्वाचीन लेखकोंका ध्यान राष्ट्रोंकी वास्तविक दशापर है। यही कारण है कि संगठनको आधार बनाकर ही वे राष्ट्रोंका वर्गीकरण करते हैं। विषयके महत्व पूर्ण होनेसे अब उसीपर प्रकाश डाला जायगा।

८०. ...यका स्वरूप

इतिहासको देखनेसे मालूम पड़ता है भिन्न भिन्न राष्ट्र समय समयमें भिन्न भिन्न राज्यपद्धति द्वारा शासित होते रहे हैं। संक्षेपमें उनका परिगणन इस प्रकार किया जा सकता है।

(१) शासनकी स्थिरता तथा संगठनकी पूर्णताको सामने रखते हुए संपूर्ण राज्य स्वेच्छाचारी राज्य तथा लोकतन्त्रराज्यमें विभक्त किये जा सकते हैं।

(क) स्वेच्छाचारी राज्यः—इस ढंगके राज्यका यह तात्पर्य्य है कि राज्य कुछ स्वेच्छाचारी व्यक्तियोंके हाथमें है। राज्य-नियमोंके बनानेमें जनताका कुछ भी भाग नहीं है और न वह राज्यको ही अपनी इच्छाके अनुसार चलनेपर बाधित कर सकती है। लड़ाईसे पहिले रूम (टर्की) तथा रूसमें इसी ढंगका शासन था। भारतमें अबतक यही हाल है।

(ख) लोकतन्त्रराज्यः—इसका तात्पर्य्य यह है कि जनताकी बहुसंख्या ही राज्यको अपने ढंगपर चलावे। निर्वाचनका अधिकार अधिकसे अधिक संख्या तक विस्तृत हो। इंग्लैण्ड, अमरीका, जर्मनी, फ्रान्स, स्विट्जर्लैंड, अर्जन्टाइन रिपब्लिक् आदि इसी ढंगके राज्यके उदाहरण हैं।

(२) शासकोंकी नियुक्ति तथा निर्वाचनको सामने रखते हुए राज्योंका वर्गीकरण निम्नलिखित प्रकार किया जा सकता है।

(क) वंश-प्रधान राज्यः—विशेष विशेष वंशके व्यक्ति ही जब किसी राष्ट्रमें राज्यकार्य चलाते हैं तो उनका राज्य वंश-प्रधान-राज्यके नामसे पुकारा जाता है। वंशप्रधान-राज्यके दो भेद हैं। एकमें तो स्त्रियोंको भी राज्यकार्य करनेका मौका मिलता है और दूसरेमें नहीं। इसके अतिरिक्त भिन्न भिन्न वंश-प्रधान राज्योंमें व्यक्तियोंके शासक पदपर नियुक्त होनेका भिन्न भिन्न क्रम है

(i) पुरुषराज्यः—ऐसे राज्योंमें पुरुषोंको ही राज्यपद

मिलता है। मृतपुरुषके वंशमें जो सबसे बड़ा हो यदि वह अपुत्र हो तो जो सबसे अधिक समीपका हो वही राज्यकी गद्दीपर बैठाया जाता है।

(ii) स्त्रीराज्यः—ऐसे राज्योंमें पुरुषोंके सदृश ही स्त्रियां भी राजगद्दीपर बैठा दी जाती हैं। इंग्लैएडमें जरूरत पड़ने पर स्त्रियोंको भी राज्यकार्य सुपुर्द कर दिया जाता है।

(iii) नियुक्ति स्वातन्त्र्यः—बहुतसे राज्योंमें शासकोंका यह अधिकार है कि वे अपना उत्तराधिकारी शाहीवंशमेंसे किसी एक व्यक्तिको चुनें।

(ख) निर्वाचितराज्यः—निर्वाचितराज्य वे हैं जिनमें शासकोंकी नियुक्ति निर्वाचनके द्वारा होती है। निर्वाचन प्रत्यक्ष तथा परोक्षके भेदसे दो प्रकारका है।

(i) प्रत्यक्ष निर्वाचनः—प्रत्यक्ष निर्वाचनमें जनता स्वयं उपस्थित होकर प्रत्यक्ष तौरपर शासकोंका निर्वाचन करती है।

(ii) परोक्ष निर्वाचनः—परोक्ष निर्वाचनमें जनता प्रतिनिधियोंके द्वारा ही शासकोंका निर्वाचन करती है।

अर्वाचीन लोकतन्त्रराज्योंमें निर्वाचनके दोनों ही प्रकार प्रचलित हैं। राज्य सेवकोंकी नियुक्तिमें परीक्षा तथा चुनावके द्वारा प्रायः काम लिया जाता है।

शक्तिके विभागके सिद्धान्तको सामने रखते हुए अर्वाचीन राष्ट्र निम्नलिखित दो भागोंमें विभक्त किये जा सकते हैं:-

(१) एकात्मक तथा द्वित्वराज्यः-इसमें राज्यके भिन्न भिन्न अंगोंका पारस्परिक संबन्ध ही सामने रखा जाता है।

(२) सचिवतन्त्र तथा असचिवतन्त्र राज्यः—नियामक विभाग

तथा शासक विभागके संबन्धपर ही इस विभागका आधार है।

(१) एकात्मक तथा द्वित्वराज्य।

(क) एकात्मकराज्यः—एकात्मक राज्योंमें राज्यशक्ति एक ही संस्था या एक ही व्यक्तिके पास होती है। अन्य सब गौण राजकीय संस्थायें उसीसे शक्ति प्राप्त कर काम करती हैं और यदि वे शक्ति न दें तो उनको काम छोड़ना पड़ता है। सुगमताके लिए मुख्य राज्य स्थानीय राज्य तथा मांडलिक राज्यको पृथक् पृथक् काम सुपुर्द कर सकता है और उनको कुछ कुछ अधिकार भी दे सकता है। परन्तु यदि वह उनको अधिकार देना या उनका पृथक् अस्तित्व उचित न समझे तो वह उनको नष्ट भी कर सकता है और उनके अधिकारोंका अपहरण भी कर सकता है। आम-तौरपर निम्नलिखित हालतोंमें ही एकात्मक राज्य उत्तम विधिपर काम करता है।

(१) यदि राष्ट्रके सभी अंग भौगोलिक तथा ऐतिहासिक दृष्टिसे एकसूत्रमें बंधे हों।

(२) यदि राष्ट्रकी जनसंख्यामें भिन्न भिन्न परस्पर-विरोधी जनताके मनुष्य हों और आपसमें मिलकर काम करनेके लिये तैयार न हों।

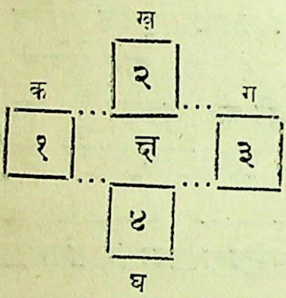
(३) यदि राष्ट्रकी जनता राजनीतिमें भाग न लेती हो और स्थानीय स्वराज्यके योग्य न हो।

(ख) द्वित्वराज्यः—द्वित्वराज्य उन्हीं राष्ट्रोंमें होता है जहां राष्ट्रके भिन्न भिन्न अंग शक्तिसंपन्न हों और उनमें चिरकालसे राजनीतिक जीवन विद्यमान हो। द्वित्वराज्यके दो भेद हैं:—

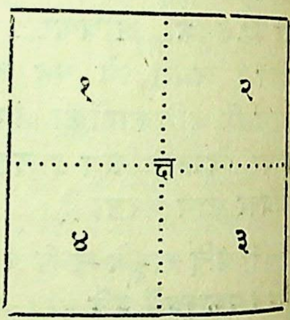
(i) अपूर्ण संघराज्य (Confederate):-इस ढंगके राज्यमें बहुतसे भिन्न भिन्न राष्ट्र जरूरत पड़नेपर एक दूसरे राष्ट्रसे अपूर्ण संघराज्यके रूपमें मिल जाते हैं।

(ii) संघराज (Federal):-इस ढंगके राज्यमें राष्ट्र तो एक ही होता है परन्तु वह राज्यके भिन्न भिन्न कार्यों तथा अधिकारोंको मुख्य राज्य तथा राष्ट्रीयराज्यके रूपमें विभक्त कर देता है।

अपूर्ण संघराज्य तथा संघराज्यका भेद निम्नलिखित चित्रके द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।



अपूर्ण-संघ-राज्य
(Consederation)



पूर्ण-संघ-राज्य
(Federation)

उपरि लिखित अपूर्ण संघराज्यमें (क. ख. ग. घ.) चार प्रभुत्व-शक्ति-संपन्न राष्ट्र हैं जिनके (१. २. ३; ४) चार ही अपने अपने राज्य हैं। उनका क्ष नामक एक ख्यराज्य है। इसी प्रकार उपर्युक्त संघराष्ट्रमें एक ही राष्ट्र है और एक ही मुख्य राज्य है। मुख्यराज्यके साथही साथ (१. २. ३. ४.) छोटे छोटे राष्ट्रीय राज्य हैं। अपूर्ण संघराज्यमें प्रभुत्वशक्ति

प्रत्येक राष्ट्रमें पृथक् पृथक् है। परन्तु संघराज्यमें यह बात नहीं है। उसकी प्रभुत्वशक्ति मुख्य राज्यके ही बीचमें है। उसके राष्ट्रीय राज्य उसीसे शक्ति तथा अधिकार प्राप्तकर काम करते हैं।

अपूर्ण संघराज्य चिरकाल तक स्थिर नहीं रहता। राष्ट्रोंके ऐतिहासिक विकासका यह एक क्रम है। या तो उसके राष्ट्र पुनः एक दूसरेसे पृथक् हो जाते हैं या फिर यदि यह बात न हुई तो वे संघराज्यके रूपमें परिवर्त्तित हो जाते हैं। आजकल अपूर्ण संघराज्यका एक भी अच्छा उदाहरण नहीं मिलता है। स्विस, जर्मन तथा अमरीकन राज्य अपूर्ण संघराज्यके उदाहरण समझे जा सकते है।

(२) सचिवतन्त्र तथा असचिवतन्त्र राज्य।

(क) सचिवतन्त्र राज्यः—सचिवतन्त्र राज्य वे हैं जिनमें शासक विभाग नियामक विभागके अधीन होता है। सचिव मंडलके द्वारा ही ऐसे राज्योंमें काम होता है। यही कारण है कि उनका नाम सचिवतन्त्र राज्य रखा गया। ऐसे राज्योंमें नियामक सभाओंकी स्वीकृति तथा अनुमतिके अनुसार ही सचिवमंडल काम करता है। आज कल सभी राष्ट्रोंमें दो सभाओंके द्वारा काम होता है। प्रायः राज्यशक्ति दो सभाओंमेंसे द्वितीय सभाके पास रहती है। जनताके प्रतिनिधि भी इसी सभामें बैठते हैं। इंग्लैड, इटली तथा नीदर्लैंडमें सचिवतन्त्र राज्य है। फ्रान्सने भी अपनी शासनपद्धतिका निर्माण इग्लैंडकी विधिपर किया है अतः उसको भी इसी श्रेणीमें रखना चाहिये।

(ख) असचिवतन्त्र राज्य:—असचिवतन्त्र राज्यको प्रधानतन्त्र राज्यके नामसे भी पुकारते हैं। इसमें मुख्य शासक तथा शासक विभाग नियामक सभाके अधीन नहीं होता। शासक विभागकी इतनी अधिक शक्ति होती है कि वह नियामक विभागकी ज्यादतियोंसे अपने आपको बचा सकता है। नियामक विभाग जो कुछ कर सकता है वह यही है कि दोषारोपणके द्वारा शासक विभागके किसी व्यक्तिको हटा दे। जर्मनी तथा अमरीकामें इसी ढंगका राज्य है।

§८१—अर्वाचीन राष्ट्रोंका वर्गीकरण।

उपर्युक्त वर्गीकरणके अनुसार यदि अर्वाचीन राष्ट्रोंका वर्गीकरण किया जाय तो राष्ट्रोंका पारस्परिक वैषम्य प्रत्यक्ष हो जाता है। पहला वर्गीकरण स्वेच्छाचारी शासकतन्त्र तथा लोकतन्त्र राज्यका था। यद्यपि भारतमें इंग्लैंड जैसे लोकतन्त्र राज्यका राज्य है तो भी भारतीयोंकी दृष्टिसे भारतका शासन स्वेच्छाचारी शासकतन्त्र है। भारतीय अपनी इच्छाके अनुसार राज्यको चलनेके लिए बाधित नहीं कर सकते। लड़ाईसे पहले ऐसा ही शासन रूम, रूस तथा ईरानमें प्रचलित था। चीन भी चिरकाल तक ऐसे ही शासनसे शासित रहा। परन्तु अब रूस, ईरान और चीनमें लोकतन्त्र राज्य है। तीनों ही देशोंको खतरा है कि उनमें भारतकी तरह यूरोपीय राष्ट्रोंका स्वेच्छाचारी शासकतन्त्र राज्य स्थापित न हो जाय।

इंग्लैण्ड, आंग्ल उपनिवेश, जर्मनी, इटली, स्पेन, नीदरलैंड तथा आस्ट्रिया हंगरीमें लोकतन्त्र शासन ही प्रचलित

है। यद्यपि इनमेंसे बहुतोंमें नाम मात्रकोही एक सम्राट् मुख्य शासकके तौरपर बैठाया हुआ है। अमरीका, स्विट्जलैंड तथा फ्रान्समें मुख्य शासक चुना जाता है। उनमें वंश-प्रधान राज्यका सर्वथा अभाव ही है। आज कल जर्मनी भी राज्यक्रान्ति करके इसी श्रेणीमें आ मिला है।

एकात्मक तथा द्वित्वराज्यके वर्गीकरणको सामने रखते हुए अर्वाचीन राष्ट्रोंका विभाग किया जा सकता है। इंग्लैण्ड तथा फ्रान्स एकात्मक राज्यका ही उदाहरण है। अमरीका, जर्मनी, स्विट्जरलैंड, मैक्सिको, ब्राजील, अर्जन्टाइन रिपब्लिक् तथा वैनन्जुलामें द्वित्वराज्य या राष्ट्रात्मक राज्यका ही प्राधान्य है। अमरीका तथा अमरीकन रियासतें असचिवतन्त्र राज्य पद्धतिसे शासित हैं। जर्मन साम्राज्य, आस्ट्रिया तथा अन्य छोटी छोटी यूरोपीय रियासतें इसी श्रेणीमें रखी जा सकती हैं।

संसारके भिन्न भिन्न राष्ट्रोंकी ओर यदि ध्यानसे देखा जाय तो मालूम पड़ेगा कि अमरीका, फ्रान्स तथा जर्मनीमें आजकल निर्वाचनके द्वारा ही मुख्य शासकका चुनाव होता है। परन्तु इंग्लैण्डमें यह बात नहीं है। इंग्लैण्डमें सम्राट वंशागत हैं। इंग्लैण्ड तथा फ्रान्स एकात्मक और फ्रान्स तथा अमरीका राष्ट्रात्मक या द्वित्व राज्य हैं। इंग्लैण्ड तथा फ्रान्सका राज्य सचिवतन्त्र और अमरीका तथा जर्मनीका राज्य असचिवतन्त्र है। लड़ाईसे पहले जर्मनीमें सम्राट वस्तुतः शासक था, इंग्लैण्डमें वह नाममात्रको है। अमरीकामें निर्वाचन द्वारा चुना गया प्रधान महाशक्तिशाली और फ्रान्समें वही सर्वथा अशक्त है। अमरीका और जर्मनी-

के प्रधान तथा सम्राट् और इंग्लैण्ड तथा फ्रांसके सम्राट् तथा प्रधान एक ही श्रेणीके हैं।

अर्वाचीन राष्ट्रोंमें जनता तथा राज्यका सम्बन्ध तथा राज्यका कार्य्यक्रम बहुत अंशोंमें समान है। प्रत्येक राष्ट्रमें जनताकी इच्छाके अनुसार ही काम होता है और व्यक्तियोंको उचित सीमा तक स्वातन्त्र्य मिला हुआ है। राष्ट्रों तथा राज्योंका विस्तार भिन्न भिन्न होते हुए भी व्यक्तियोंसे उनका सम्बन्ध तथा उनका कार्यक्रम बहुत अंशों तक एक दूसरेसे मिलता है।

संसारकी गति स्वेच्छाचारी शासनसे लोकतन्त्र शासन की ओर है। जो राष्ट्र आजसे कुछ साल पहले स्वेच्छाचारी सम्राटोंसे शासित थे, आज वह लोकतन्त्र शासन पद्धतिमें प्रविष्ट हो गये। इसी महायुद्धमें जर्मनी पोलैंड तथा रूस ने स्वेच्छाचारी सम्राटोंका भार अपने कन्धोंपरसे उतार कर फेंक दिया और लोकतन्त्र राज्यप्रणालीवाले राष्ट्रोंके साथ आ मिले। जहां अभी तक ऐसा परिवर्तन नहीं हुआ वहां भी हो जायगा। मिश्र भारत तथा ईरानमें भयंकर आन्दोलन जारी है। वंशका प्राधान्य दिनपर दिन लुप्त हो रहा है। नये नये राष्ट्रोंने संगठनमें इस तत्वका सर्वथा ही परित्याग कर दिया। यूरोपके सभी राष्ट्रोंके वंशागत सम्राटोंने अपने शासन सम्बन्धी अधिकारोंको मंत्रिमंडलके हाथमें दे दिया है। वंशके तत्वपर आश्रित प्रथम सभाओंकी शक्ति द्वितीय सभाके हाथमें चली गयी। राज्य सेवकोंकी नियुक्तिमें परीक्षा, निर्वाचन, प्रत्यक्ष चुनाव आदिमेंसे किस विधिसे काम किया जायगा इसका निर्णय

दुःसाध्य है, परन्तु इसमें सन्देह भी नहीं है कि इन मामलोंमें जन्म तथा वंशके तत्वका प्रयोग न किया जायगा ।

अपूर्ण संघराज्य या संघराज्यकी ओर जनताका झुकाव है इसका निर्णय करना कठिन है। परन्तु इसमें सन्देह भी नहीं है कि अपूर्ण संघराज्यमें चिरकालसे परिणत राष्ट्र-संघ-राज्यको ओर झुक रहे हैं। इसके विपरीत संघराज्यमें चिरकालसे राष्ट्र स्थानीय राज्योंको कुछ स्वतन्त्रता दे रहे हैं और इस प्रकार शासन शासित कार्य्यमें अपूर्ण सङ्घराज्यके सिद्धान्तको काममें ला रहे हैं। स्थानीय स्वराज्यका प्रचार दिनपर दिन बढ़ता जा रहा है।

सचिवतन्त्र तथा असचिवतन्त्र राज्यके मामलेमें भी यही बात है। सचिवतन्त्र राज्योंमें शासक विभाग अधिक अधिक स्वतन्त्रताका यत्न कर रहा है और असचिवतन्त्र-राज्योंमें इसके विपरीत नियामक विभागका शासक विभाग-के साथ सम्बन्ध दृढ़ किया जा रहा है।

अर्वाचीन राष्ट्रोंका दिग्दर्शन इस बातको सूचित करता है कि संसारके भिन्न भिन्न राष्ट्रोंके लिए भिन्न भिन्न राज्य-पद्धति ही उपयुक्त है। समय, स्थान तथा सभ्यताके भेदसे कोई देश सचिवतन्त्र और कोई देश असचिवतन्त्र होगा। कहीं द्वित्वात्मक राज्य और कहीं एकात्मकराज्य होगा। स्थानीय राज्य तथा मुख्य राज्यके पारस्परिक सम्बन्ध भी सब राष्ट्रोंमें एक सदृश नहीं रहेंगे। अमरीका सङ्घराज्य-को और इग्लैण्ड साम्राज्यको दृढ़ कर रहा है। इग्लैण्ड-का सचिवमंडल शासन विभागसे अपना पीछा छुड़ाना चाहता है और अमरीकाका शासन-विभाग उसी जालमें

दलोंकी प्रधानताके कारणके फंसता जा रहा है। सारांश यह है कि राष्ट्रोंकी अपनी अपनी समस्यायें हैं। उनसे प्रेरित होकर सभी राष्ट्र अपना अपना मार्ग ले रहे हैं। निस्सन्देह सभी राष्ट्रोंमें जनताके शासनका प्रचार होगा और जहां जहां ऐसा नहीं है वहां वहां भी परिवर्त्तन उपस्थित है। समयके परिपक्व होते ही जर्मनी तथा रूसकी तरह वहां पर भी लोकतन्त्रशासनपद्धति प्रचलित हो जायगी। परन्तु यह सब होते हुए भी राष्ट्रोंका भेद न मिटेगा। जिसको जिस ढंगका लोकतन्त्रशासन अनुकूल होगा उसीका वह अवलम्बन करेगा।

द्वितीय भाग ।

राजनीति शास्त्र ।

पहिला परिच्छेद ।

शक्तिसंविभाग ।

§ ८२. *शासक, नियामक तथा निर्णायक शक्तिका स्वरूप ।*

राष्ट्रका स्वरूप, विकास तथा ह्रास आदि अनेक तत्वोंपर पूर्वभागमें प्रकाश डाला जा चुका है। उन्हीं तत्वोंपर एक नयी शैलीसे इस भागमें प्रकाश डाला जायगा। राज्य राष्ट्रका एक प्रधान अंग है। राज्यपद्धतिकी उत्तमता तथा अनुत्तमतापर राष्ट्रके जीवनमरणका आधार है।

राजनीतिज्ञोंका मत है कि उत्तम राज्यपद्धति वही है जसमें उसकी प्रधान प्रधान शक्तियोंका पूर्ण तौरपर संतुलन हो। राज्य मुख्यतया शासन, नियमन तथा निर्णय संबन्धी कामोंको ही करता है। अति प्राचीनकालमें इन कामोंका बहुत महत्त्व था। आजकल समाजकी आकृति विषम तथा विशाल है। उसके कार्य विस्तृत तथा उलझनसे परिपूर्ण हैं। यही कारण है कि इन कामोंका महत्त्व बहुत ही अधिक बढ़ गया है। न्यायाधीश स्टारीने 'कामेन्टरीज़ आन दि कान्स्टिट्यूशन'

नामक ग्रन्थमें लिखा है कि अर्वाचीन राज्योंकी नियामक शक्ति ही सब शक्तियोंमें प्रधान है। निस्संदेह किसी हद्दतक यह सत्य है। शासनपद्धतिकी धाराओं तथा सिद्धान्तों की सीमातक इसकी सत्यतापर सन्देह नहीं किया जा सकता है। परन्तु कार्य रूपमें लिखित नियमोंकी स्थिति बदल जाती है। सामाजिक परिस्थितिके चक्रमें पड़कर कुछका कुछ हो जाता है। दृष्टांतस्वरूप शासकविभागकी शक्ति लिखित नियमोंके अनुसार नियामकशक्तिके अधीन होती हुई भी कार्यरूपमें उसके अधीन नहीं रहती। सन्धि विग्रह दूत-प्रचार जैसे कामोंको करनेमें वह बहुत कुछ स्वतन्त्र होजाती है। जलथल-सेना तथा पुलिसपर पूर्ण नियन्त्रण होनेसे शासकशक्ति नियामकशक्तिपर महत्व प्राप्त कर लेती है। नियम कैसे ही क्यों न हों उनका कहां तक पालन हो और उनमें कहांतक शिथिलतासे काम लिया जाय इसका निर्णय एकमात्र शासक विभागके हाथमें है। यह वह शक्ति है जिसके द्वारा वह कठोरसे कठोर नियमोंको मृदु बना सकता है और मृदुसे मृदु नियमोंको भयंकर अत्याचारपूर्ण नियमोंका रूप देसकता है।

संख्याके विचारसे भी शासकविभाग महत्वपूर्ण है। अमरीकामें शासक-विभागके सभ्योंकी संख्या ३००००० है जब कि निर्णायक विभागके और नियामकविभागके सभ्योंकी संख्या क्रमशः १४० तथा ४७६ से ऊपर नहीं पहुंचती। जनताका दैनिक संबन्ध शासकोंसे है न कि नियामकोंसे। इसीलिये वैयक्तिक स्वतंत्रताकी रक्षा तथा नाश किसी हद्दतक शासक विभागके ही हाथमें है।

शासकविभागके सदृश ही बहुतसे राष्ट्रोंमें निर्णायक शक्तिका प्राधान्य है। अमरीकामें राज्यनियमोंको शासन-पद्धतिकी धाराओंके प्रतिकूल सिद्धकर निर्णायक विभाग नियामकविभागके कार्योंको मटियामेट कर सकता है। यही कारण है कि आजकल राज्यकी तीनों ही शक्तियां अपने अपने क्षेत्रमें प्रधान समझी जाती हैं। तीनोंका ही एक दूसरेपर अवलंबन होनेसे कौन गौण है और कौन प्रधान, इसका निर्णय कठिन हो गया है। शक्तिसंविभाग शक्तिपार्थक्य (the sep.ratoin of powers) तथा शक्ति विभजन (the division of powers) नामक दो भागोंमें विभक्त किया जाता है।

(१) शक्तिपार्थक्य (the separation of powers):—नियामक, शासक तथा निर्णायक शक्तियां राज्यकी प्रधानतम शक्तियां हैं। नियम बनाना नियामकशक्तिका, नियमोंको प्रचलित करना तथा अपराधियोंको दंड देना शासक-शक्तिका और अपराधियोंके अपराधका निर्णय करना निर्णायकशक्तिका मुख्य कार्य्य है। सिद्धान्तमें तीनों ही शक्तियां एक दूसरेसे पृथक् हैं परन्तु कार्य्यरूपमें तीनों ही एक दूसरेपर अवलंबित हैं। नियमके बिना निर्णय और निर्णयके बिना शासन नहीं चल सकता।

(२) शक्तिविभजनः—राज्यकी शक्तियोंका कितने क्षेत्रपर और कहां कहां प्रभुत्व है इसको सामने रखते हुए निम्न-लिखित विभाग किये जाते हैं।

(क) स्थानीय राज्य

(ख) मुख्य राज्य

(ग) औपनिवेशिक राज्य
(घ) संघान्तर्गत राष्ट्र राज्य
(ङ) अधीन राज्य
(च) नागरिक प्रबन्ध
(छ) ग्राम्य प्रबन्ध

मुख्य राज्यका स्थानीय राज्यसे और स्थानीय राज्यका ग्राम तथा नगर प्रबन्धसे क्या संबन्ध है और इसी प्रकार मुख्य राज्यका संघांतर्गत राष्ट्र राज्य, अधीन राज्य तथा औपनिवेशिक राज्यसे क्या व्यवहार है और क्या होना चाहिये–इत्यादि प्रश्न बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। इन्हींपर प्रकाश डालनेके लिये अगले परिच्छेदोंमें लिखा जायगा और जहां तक हो सकेगा भिन्न भिन्न राष्ट्रोंकी वास्तविक स्थिति सामने रखी जायगी।

§८२. *शक्तिसंविभागका सिद्धान्त।*

राजनीतिशास्त्रमें शक्तिसंविभाग सिद्धान्त बहुत ही महत्वपूर्ण है। नियामक, शासक तथा निर्णायक यही तीन राज्यके प्रधान काम हैं। इन कामोंको पृथक् पृथक् विभागों द्वारा ही करना चाहिये। जिस विभागके पास नियामक शक्ति हो उसका निर्णय तथा शासनसे कुछ भी संबन्ध न हो, जिस विभागके पास शासक-शक्ति हो उसका निर्णय तथा नियम बनानेसे कुछ भी लगाव न हो और इसी प्रकार निर्णायकशक्ति नियामक तथा शासक-शक्तिसे रहित हो– यह सिद्धान्त शक्तिसंविभाग सिद्धान्तके नामसे पुकारा जाता है। महाशय मांटस्क्यूने इसीको इस प्रकार प्र

किया है—"यदि नियामक तथा शासकशक्ति किसी एक व्यक्ति या समूहके पास इकट्ठी हो तो जातिकी स्वतन्त्रताका नाश होना स्वाभाविक ही है, क्योंकि जातिको इस बातका सदा ही भय बना रहेगा कि राजा या राष्ट्रसभा स्वेच्छाचारी नियम बनाकर स्वच्छन्दतासे ही उनका प्रयोग करेगी। इसी प्रकार यदि निर्णायकशक्ति नियामक तथा शासकशक्ति-से सर्वथा पृथक् न कर दी जाय तथा वह यदि नियामक शक्तिकी सहायक बना दी जाय तो जो नियम बनानेवाला होगा वही न्यायाधीश भी हो जायगा। परिणाम इसका यह होगा कि जातिके व्यक्तियोंका जानमाल एकमात्र न्यायाधीशोंके हाथमें चला जायगा और कहीं यदि निर्णायक शक्ति शासकोंके ही हाथमें दे दी जाय तब तो अत्याचारका होना आवश्यक ही है, क्योंकि जो किसी व्यक्तिपर अपराध लगानेवाला होगा वही उस व्यक्तिके अपराधका निर्णय करनेवाला भी होगा।" मांटस्क्यूके सदृश ही राष्ट्रके सेन्द्रिय सिद्धान्तके पोषक महाशय ब्लुन्ट्श्लीका मत है कि "किसीके हाथमें अत्यन्त अधिक शक्तिका दे देना राष्ट्रके लिये भयानक होता है। यदि ऊपर लिखी तीनों शक्तियां पृथक् पृथक् व्यक्तियों तथा समुदायोंके हाथमें दे दी जायं तो इससे राष्ट्रमें जहां किसीकी भी शक्ति अधिक नहीं होने पाती वहां कार्य्य भी समुचित रीतिपर चलता है। एक ही व्यक्ति या समुदाय तीनों कार्योंको उस योग्यतासे संपादित नहीं कर सकता जिससे वह केवल एक ही कार्यको कर सकता है। परमात्माने शरीरमें आंखें देखनेके लिये, कान सुननेके लिये दिये हैं। जब परमात्माने शरीरके कार्यको उचित ढंगपर

चलानेके लिये भिन्न भिन्न इंद्रियोंको दिया है तब राष्ट्रों शरीरके कार्यको भी अच्छी तरहसे चलानेके लिये 'शक्ति संविभाग'के सिद्धान्तका ही अवलंबन करना ठीक मालूम पड़ता है"; * इंग्लैण्डके प्रसिद्ध राज्यनियमज्ञाता ब्लैकस्टन भी यही मत है। उसने 'कामन्टरीज़ आन दि लाज़ आफ इंग्लैण्ड' (१७६५) नामक ग्रंथमें लिखा है कि "सभी स्वेच्छाचारी राज्योंमें मुख्य शासक ही राज्यनियम बनाता है और वही उनका प्रचार करता है। ये दोनों शक्तियां जिस देशमें एक ही व्यक्ति या व्यक्तिसमूहके पास हों, वहां व्यक्तियोंकी स्वतन्त्रता कुछ भी नहीं समझी जाती"।

गंभीर तौरपर विचार किया जाय तो मालूम पड़ेगा कि यह सिद्धान्त अति प्राचीन है। अरस्तूने राजकीय विभागों पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि "यूनानमें सबसे पहले जनसभा, उसके बाद शासकविभाग और तीसरे दर्जेपर निर्णायक विभाग है"। रोमन शासनपद्धतिको सामने रखते हुए पालीबियसने लिखा है कि "रोमराज्यका सबसे अधिक सौन्दर्य इस बातमें है कि भिन्न भिन्न विभागोंकी शक्ति एक दूसरे विभागको स्वेच्छाचारसे रोकती है"। बाइजन्टाइन साम्राज्यमें तो सैनिक प्रबन्धसे नागरिक प्रबन्ध जुदा किया गया था। अर्वाचीन राष्ट्रोंने इस विभागको अबतक कायम रखा है। रोमन साम्राज्यके अधःपतन-कालमें यूरोपमें मांडलिक शासकोंका प्रभुत्व बढ़ा। इन्होंने शक्ति संविभाग सिद्धान्तका परित्याग कर स्वेच्छाचारी बननेका यत्न किया। व्यापार-व्यवसाय बढनेके साथ साथ यूरोपियन

* देखो ब्लुण्ट्श्ली-दि थ्यूरी आफ् दि स्टेट. बुक ७. चैप्टर. ७।

राष्ट्रोंमें जातीयताके भावोंका उदय हुआ। स्वेच्छाचारी मांडलिक शासकोंके निरंकुश शासनको नष्ट करनेके लिये नागरिकोंने प्रयत्न करना शुरू किया। ज्यों ज्यों उनको सफलता मिली त्यों त्यों जनतन्त्र शासनपद्धतिके सिद्धान्तों-पर विचार किया गया। समय आया जब कि शक्ति-संविभाग सिद्धान्तने प्रभुत्व प्राप्त किया। महाशय बोदिनने उद्घोषित किया कि राजा शासनके सिवाय और कोई काम न करे। निर्णयका काम न्यायाधीशोंके ही हाथमें दे देना चाहिये। इसके बाद लाक तथा मांटस्क्यूने शक्तिसंविभाग सिद्धान्तमें नया जीवन फूंका। अर्वाचीन राजनीतिज्ञ मांटस्क्यू-को ही शक्तिसंविभाग सिद्धान्तका जन्मदाता समझते हैं।

§८४—*अमरीका तथा फ्रान्समें शक्तिसंविभाग सिद्धान्तका प्रभाव।*

अठारहवीं सदीके यूरोपीय राजनीतिज्ञ शक्ति संविभाग सिद्धान्तके इतने अन्धभक्त हो गये कि उन्होंने इसको अकालिक सत्य या ईश्वरीय नियम समझ लिया। जो शासन-पद्धति बनायी गयी उसका आधार इसीपर रखा गया। अमरीकाने स्वतन्त्रता प्राप्त करनेके बाद जो शासन-पद्धति बनायी उसमें शक्ति-संविभाग सिद्धान्तका पूर्णतौरपर प्रयोग किया। यही कारण है कि वहां राष्ट्रीय गवर्नरका चुनाव जनताकेद्वारा होता है और वह नियामक सभाको विसर्जन नहीं कर सकता। नियामक सभाके सभ्य पृथक् तौरपर जनताद्वारा निर्वाचित होते हैं और शासकोंकी कुछ भी पर-वाह न कर राज्यनियम बनाते हैं। मैसाचसेट्सकी शासन-पद्धति संबन्धी धाराओं (भाग १ धारा ३०, सन् १७८०)

में लिखा है "कि इस राष्ट्रके राज्यमें नियामक-विभाग निर्णय तथा शासनकी शक्तिका प्रयोग न करेगा, शासक-विभाग निर्णय तथा नियम-निर्माणकी शक्तिका प्रयोग न करेगा और निर्णायक विभाग नियमनिर्माण तथा शासनकी शक्तिको काममें न लावेगा। सारांश यह है कि यहां राज्यनियमोंके अनुसार राज्य होगा न कि मनुष्योंके अनुसार"। संवत् १८४४ (सन् १७८७) की राजनीतिक सभामें भी इसी सिद्धान्तके अनुसार काम किया गया। इसमें सन्देह भी नहीं है कि सभाके सभ्योंको शक्तिसंविभाग सिद्धान्तकी सचाईपर कुछ कुछ सन्देह हो गया था परन्तु अन्तमें उन्होंने उसीके आधारपर अमरीकाकी शासनपद्धतिका निर्माण किया। हैमिल्टन, मैडीसन तथा जे जैसे शासनपद्धतिनिर्माताओंके शब्द हैं कि "एकही के हाथमें नियामक, शासक, तथा निर्णायक-इन तीन शक्तियोंका होना चाहे वह वंशागत हों और चाहे निर्वाचित हों—निरंकुश शासनका ही दूसरा रूप है।"

परन्तु यह सब होते हुए भी, संवत् १८३३ तथा १८३४ (सन् १७७६ तथा १७७७) की संघान्तगर्त राष्ट्रोंकी शासनपद्धतिमें और संवत् १८४४ (सन् १७८७) की मुख्य राज्यकी शासनपद्धतिमें शक्तिसंविभागका सिद्धान्त पूरे तौर पर काममें लाया गया। इसीसे स्वभावतः यह प्रश्न उठता है कि शक्तियोंका पार्थक्य तथा विभजन कहां तक संभव है और शक्तिसंविभाग सिद्धान्त कहां तक कार्यरूपमें परिणत किया जा सकता है। कार्य्यरूपमें शक्तिसंविभाग सिद्धान्त जो कुछ कर सकता है वह यही है कि जनता ही

पृथक् पृथक् तौरपर शासक, नियामक तथा निर्णायक विभागका निर्वाचन करे। परन्तु प्रश्न तो यह है कि यदि शासक स्वयं राज्यनियमोंको तोड़ें तो उनके अपराधका निर्णय कौन करे। निर्णायकविभाग तो यह काम नहीं कर सकता, क्योंकि इससे शक्तियोंका पार्थक्य कहां रहा? इसी प्रकार शासकविभाग किन नियमोंके अनुसार शासन करे? यदि यह कहा जाय कि नियामकविभाग द्वारा पास कियेगये नियमोंके अनुसार ही यह शासन करे तो शक्तिसंविभाग सिद्धान्त कहां रहा? यही दोष निर्णायक विभागके सिद्धान्तमें उपस्थित होता है। सारांश यह है कि राज्यके तीनों ही विभाग एक दूसरेके साथ जुड़े हुए हैं। एक विभाग नियम बनाता है, दूसरा उसके अनुसार निर्णय करता है और तीसरा निर्णयको काममें लाता है। कौन किससे पृथक् किया जाय? यह होते हुए भी तीनोंके काम एक दूसरेसे जुदा हैं। यही कारण है कि शक्तिसंविभाग सिद्धान्त पूर्णतौरपर सत्य नहीं माना जाता।

अमरीकाके सदृश ही फ्रांसमें भी शक्तिसंविभाग सिद्धान्तके अनुसार ही शासनपद्धतिका निर्माण किया गया। संवत् १८४६ (सन् १७८९) की राजनीतिक सभाने इसको आधार मानकर ही शासनपद्धतिका ढांचा तय्यार किया। अधिकार-उद्घोषणा (Declaration of Rights) की सोलहवीं धारामें लिखा है कि "जिस समाजमें शक्तिसंविभाग सिद्धान्तका प्रचार नहीं है उसमें लोकतन्त्र-शासन-पद्धति नहीं मानी जा सकती।" यही कारण है कि उसने यह नियम बनाया कि राजा नियामक

सभाओंको विसर्जित नहीं कर सकता, सचिवमंडल तथा शासकदल नियामक सभाओंमें नहीं जा सकते तथा न्यायाधीशोंका निर्वाचन जनता ही करे। उसके बाद संवत् १८५२ (सन् १७९५) में जो शासनपद्धति बनी उसमें उपर्युक्त नियम किसी हद्दतक शिथिल कर दिया गया।

सारांश यह है कि शक्तिसंविभाग सिद्धान्तके अनुसार अठारहवीं सदीमें बहुत सी शासनपद्धतियां बनीं, परन्तु उनमें कुछ ऐसे दोष थे जिससे उनका पूरे तौरपर प्रयोग न किया जा सका। आजकल भिन्न भिन्न राष्ट्रोंमें इनका कहां तक प्रयोग है अब इसीपर प्रकाश डाला जायगा।

§ ८५ अर्वाचीन राष्ट्रोंमें शक्तिसंविभाग।

भिन्न भिन्न राजकीय शक्तियोंके पारस्परिक प्रतिरोध तथा संतुलनके द्वारा व्यक्तिगत स्वतन्त्रताकी रक्षा की जा सकती है, इसपर अठारहवीं सदीके राजनीतिज्ञ लगभग एकमत थे। अमरीका तथा फ्रांसकी शासनपद्धतियोंका आधार इसीपर रखनेका यत्न किया गया परन्तु सफलता न मिली। कुछ समयसे शक्तिसंविभाग सिद्धान्तमें राजनीतिज्ञोंकी पूर्ववत् श्रद्धा रही है। यह होते हुए भी बड़े बड़े राष्ट्रोंमें उसका प्रभाव नहीं भूला जा सकता।

अर्वाचीन राष्ट्रोंमें निर्णायक विभाग सब विभागोंसे पृथक् है। उसकी स्थिति सब विभागोंके नियंत्रणसे स्वतंत्र है। न्यायाधीशोंका पद इतना स्थिर रहता है कि उनको आजीवन कोई पदच्युत नहीं कर सकता। बहुतसे अन्याय तथा अत्याचारके काम जब कोई न्यायधीश करे तो व

दोषारोपणके द्वारा पृथक् किया जा सकता है। यह होते हुए भी निर्वाचक, शासक या नियामक आदि कोई भी दल उनको पक्षपातके लिये प्रेरित नहीं कर सकता। उनके कार्य परिमित तथा सुरक्षित हैं, सभी राज्योंका यत्न है कि वे धन, तृष्णा या लोभके वशीभूत न हो सकें।

अमरीकामें मुख्य न्यायालय (Supreme Court) का आधार शासनपद्धतिकी धाराओंके ऊपर है। परन्तु अन्य न्यायालयोंकी उसमें कोई स्थिति नहीं है। यही कारण है कि नियामक विभागके द्वारा ही उनका निर्माण होता है और वही इच्छानुसार उनको मटियामेट कर सकता है। इससे नियामकों तथा निर्वाचकोंका न्यायाधीशोंपर अन्याययुक्त प्रभाव तथा दबदबा बना रहता है। इसके अतिरिक्त अमरीकाके छोटे छोटे राष्ट्रोंमें नियामक तथा शासक विभागके अधिकारी बहुतसे ऐसे कार्य्य करते हैं जिनको एक तरीकेसे निर्णायक विभागके क्षेत्रमें रखना चाहिये। सबसे विचित्र बात तो यह है कि वहांके न्यायालय अपने कामके साथ साथ राज्यनियम बनाते हैं और उनका संचालन तथा प्रचार भी करते हैं। अमरीकन नियामक विभाग राज्यनियम बनानेके साथ साथ दोषारोपणके समय न्यायालयका रूप धारण कर लेता है और अंतिम प्रार्थना (Appeal) का निर्णय भी स्वयं ही करता है। शासक विभाग अपराधको क्षमाकर सकता है और इस प्रकार निर्णायकका काम करता है। अपने कार्यक्रम तथा न्यायालयान्तर्गत विश्रामके लिये नियम बनाना तथा उनका प्रचार करना अमरीकन न्यायालयोंके ही हाथमें है, यही कारण है कि उनको बहुधा शासक विभागके

कामोंको करना पड़ जाता है। अमरीकामें छोटे छोटे न्यायालय शासन तथा निर्णयके कामोंको करते हैं। बड़े बड़े न्यायालय परिवर्तित अर्थ, शासनपद्धतिके प्रतिकूल नियम आदि बातोंके सहारे राज्यनियमोंका अस्तित्व नष्ट कर सकते हैं।

यूरोपमें इंग्लैण्ड तथा अमरीकासे विपरीत दशा है। वहां शक्तिसंविभाग सिद्धान्तका प्रयोग किसी दूसरे ढंगपर ही किया गया है। इंग्लैण्ड तथा अमरीकाने चिरकालके विग्रहके बाद स्वातंत्र्य प्राप्त किया। उनको शासकोंके विरुद्ध समय समयपर लड़ना पड़ा। इसका परिणाम यह हुआ कि शासक कर्त्तव्यपालनके समयमें तो शासक माने गये परन्तु उसके बाद उनकी स्थिति साधारण नागरिकोंसे भिन्न न रखी गयी। परन्तु यूरोपमें राज्यक्रांतिसे ही शासनसूत्रको जनताने अपने हाथमें लिया। फ्रांसमें शासकोंके कर्त्तव्यका क्षेत्र विस्तृत है और उनके अधिकार अधिक हैं। वे साधारण नागरिकोंसे भिन्न समझे जाते हैं। यही कारण है कि उनके अपराधोंका निर्णय शासक-न्यायालयके द्वारा किया जाता है। इससे फ्रान्समें वैयक्तिक स्वतन्त्रता बहुत सुरक्षित नहीं है। जनताके हाथमें ऐसी कोई शक्ति नहीं है जिससे वह शासकोंके स्वेच्छाचार तथा विस्तृत अधिकारका नियंत्रण करसके।

अर्वाचीन राष्ट्रोंमें शक्तिसंविभाग सिद्धान्तका प्रयोग नियामक तथा शासक विभागके निर्माणमें किया गया है। पूर्वमें ही लिखा जा चुका है कि राष्ट्रोंमें दो प्रकारके राज्य प्रचलित हैं। एक तो सचिवतन्त्र (parliamentary) और

दूसरा असचिवतन्त्र (non-parliamentary)। सचिवतन्त्र राज्योंमें प्रायः एक ही संस्थाके पास राष्ट्रकी नियामक तथा शासकशक्ति विद्यमान है । नियामक सभाकी समितिके रूपमें सचिवमंडल राज्य-नियमोंको बनवाता है और शासक-विभागके रूपमें उनका प्रयोग करता है। उसका अस्तित्व तभी तक है जब तक कि जनताका बहुमत उसके साथ है। परन्तु ज्योंही जनताने अपना सहारा हटाया, सचिवमंडलको इस्तीफा दे देना पड़ता है । जनताके बहुमतपर आश्रित होते हुए भी सचिवमंडल ही शासक तथा नियामकशक्तिका प्रयोग करता है जो शक्तिसंविभाग सिद्धान्तके प्रतिकूल है। मान्टस्क्यूके समयमें भी इंग्लैण्ड इसी शैलीपर शासित होता था। उसके बाद फ्रांस, इटली तथा अन्य बहुतसे यूरोपीय राष्ट्रोंने इंग्लण्डकी सचिवतन्त्र-शासनपद्धतिका अनुकरण किया। वस्तुतः इंग्लैण्डमें नियामकविभागका ही शासक-विभागपर नियंत्रण है। फ्रान्समें तो नियामकविभागने संपूर्ण शक्ति अपने हाथमें लेली है और शासकविभागको पूरेतौर-पर अपने कब्जेमें कर रखा है। सं० १८३८–१८४६ (सन् १७८१-१७८९) के कांफिडरेशन कालमें अमरीकाने भी सचिवतन्त्र शासनपद्धतिका प्रयोग किया। कांग्रेसने निर्णायक तथा शासकविभागपर पूरेतौरपर अपना नियंत्रण स्थापित किया। परन्तु अन्तमें उसने इस ढंगकी शासनपद्धतिको छोड़ दिया और प्रधान तन्त्र-शासनपद्धतिका ही अवलंबन किया।

असचिवतन्त्र शासन पद्धतियोंमें शासक विभाग समय तथा स्थितिको सामने रखते हुए नियामक विभागके नियंत्रणसे पृथक् है। कुछ ऐसी भी सीमायें हैं जहां

तक वह स्वच्छंद तौरपर काम कर सकता है परन्तु नियामक-विभाग उसके कामोंमें हस्तक्षेप नहीं कर सकता है। अमरीका तथा अमरीकन राष्ट्रोंमें यही बात मौजूद है। लड़ाईसे पहले जर्मनीकी भी यही हालत थी। संसारका कोई भी राष्ट्र नहीं है जहां शक्तिसंविभाग-सिद्धान्त पूरेतौरपर कार्य करता हुआ दिखायी पड़े। माना कि नियामक सभाएं ही शासकोंका चुनाव करती हैं और जलथल सेनापर उनका नियंत्रण स्थापित करती हैं, परन्तु लड़ाईके दिनोंमें शासक-विभाग-का जो अधिकार बढ़ जाता है यह भी भूला नहीं जा सकता है। इसके विपरीत नियामकविभाग राज्यकर, राज-कीय आयव्यय तथा दोषारोपणकेद्वारा उन कार्योंको करते हैं जो कि शासकशक्तिके क्षेत्रमें हैं। लड़ाईसे पहले जर्मनीमें तो शक्तिसंविभाग सिद्धान्तका बहुत ही कम प्रयोग था। सम्राट्की शक्ति बहुत ही अधिक थी। प्रुशियामें तो वह नियामकशक्तिका भी प्रयोग करता था। अपने प्रति-निधियोंकेद्वारा सम्राट् जलस्थलसेना तथा राष्ट्रीय आय-व्यय संबन्धी आवश्यकसे आवश्यक संशोधनोंको कर सकता था। यहांपर ही बस नहीं, वह जिन प्रस्तावोंको चाहे अपने प्रतिनिधियोंके द्वारा नियामक सभामें भेज सकता था और किसी हद्द तक पास भी करवा लेता था।

अर्वाचीन राष्ट्रोंमें भिन्न भिन्न शक्तियोंका क्या पारस्परिक संबन्ध है यह संक्षेपसे इस प्रकार दिया जा सकता है। अमरीकामें शासकविभाग नियामकसे बहुत कुछ स्वतन्त्र है। कुछ मामलोंमें उसको न्यायालयोंके सामने सर झुकाना पड़ता है। फ्रान्समें शासकविभाग नियामक विभागके बहुत ही

अधिक अधीन है, परन्तु न्यायालयोंका उसके कार्योंपर कुछ भी नियंत्रण नहीं है। जर्मनीमें लड़ाईसे पहले शासकविभाग-पर न्यायालय तथा नियामकविभागका कुछ भी नियंत्रण न था। इंग्लैण्डमें शासकविभाग नियामकविभागके अधीन है और समय समयपर उसको न्यायालयोंके सामने भी सर नीचा करना पड़ता है।

६६. शक्तिसंविभाग सिद्धान्तकी आलोचना ।

शक्तिसंविभाग सिद्धान्तमें बहुत कुछ सचाई है। सभी सभ्य राष्ट्रोंमें भिन्न भिन्न कार्योंके करनेमें श्रमविभाग (Division of labour) सिद्धान्तका सहारा लिया जाता है। जो जिस कार्यके करनेमें योग्य हो उसको वही कार्य करनेके लिये दिया जाता है। इसीसे यह भी परिणाम निकला कि नियामक, शासक तथा निर्णायक जैसे महत्व-पूर्ण काम भिन्न भिन्न विभागके हाथमें होना चाहिये। कोई एक विभाग तीनों ही कामोंको एक साथ सफलतासे नहीं कर सकता। निर्णायकविभागके पार्थक्य तथा स्वातन्त्र्यमें सभी राष्ट्र सहमत हैं। इंग्लैंडकी जनता सचिवतंत्र शासन-पद्धतिकी अनन्य भक्त है। उसका ख्याल है कि इस शैलीसे काम करनेपर जल्दबाजी नहीं होती और जनताके मनका उचित ढंगपर आदर होता है। इसके विपरीत अमरीकन राज-नीतिज्ञ शासकविभागकी स्वतन्त्रताको ही उत्तम समझते हैं।

राजकीय शक्तियोंके पार्थक्य तथा विभजनको आवश्यक मानते हुए भी शक्तिसंविभाग-सिद्धान्त पूर्णतौरपर सत्य नहीं। इंग्लैण्डकी राज्य-प्रणाली इस बातको सूचित कर रही

है कि शक्तियोंके पार्थक्य तथा विभजनके विना भी वैयक्तिक स्वतन्त्रताको सुरक्षित करनेके लिये यह आवश्यक है कि संपूर्ण अधिकार तथा शक्तियां उस संस्थाके पास हों जो कि जनताकी पूर्णतौरपर प्रतिनिधि हो और जनताकी इच्छाका प्रतिबिम्ब हो। वस्तुतः लोकतन्त्र शासनपद्धतिका तात्पर्य भी यही है कि संपूर्ण अधिकार तथा शक्तियां जनताके हाथमें रहें और यदि वह उनका प्रयोग प्रत्यक्ष तौरपर करनेमें असमर्थ हों तो वह अपने प्रतिनिधियोंको अपने संपूर्ण अधिकार तथा शक्तियां दे दे। शक्तियोंका पूर्णतौरपर पार्थक्य स्थापित करना शासनपद्धतिको चकनाचूर कर अराजकता उत्पन्न करना होगा। राष्ट्रके सभी अंग किसी न किसी अंश तक सभी कामोंको करते हैं। कुछ हद तक ही शक्तियोंका पार्थक्य रहता है परन्तु उसके बाद उस पार्थक्यको कायम रखनेका यत्न करना भयंकर भूल करना होगा। राष्ट्रके निम्नलिखित अंग उपरिलिखित विचारको पूरेतौरपर पुष्ट करते हैं।

(१) शासनपद्धति निर्माण करनेवाली संस्थाः—यह राष्ट्रकी इच्छाको सूचित करती है। व्यक्तियोंके क्या क्या अधिकार हैं और राज्यकी शासनपद्धति कैसी हो इत्यादि प्रश्नोंका निर्णय यही संस्था करती है।

(२) नियामक विभागः—यह राष्ट्रकी इच्छा तथा मतको उस हद्दतक प्रकाशित करता है जहां तक कि शासनपद्धतिकी धाराओंमें उसका कुछ भी उल्लेख नहीं है।

(३) शासक विभागः—नियामकविभाग जिन जिन बातोंको छोड़ जाता है या जिन जिन बातोंपर उसका ध्यान नहीं जाता

है, शासकविभाग उपनियमोंको बनाकर उन बातोंका प्रचार करता है।

नियम-निर्माण तथा राष्ट्रकी इच्छाको प्रकाशित करनेके सदृश ही उनको काममें लाना निम्नलिखित अंगोंके हाथमें है।

(१) निर्णायक विभाग:—विवादग्रस्त मामलोंमें यही विभाग नियमोंका प्रयोग करता है।

(२) शासक विभाग:—राष्ट्रके मत तथा इच्छाका जनतामें कहां तक आदर है इसका निरीक्षण शासकविभाग ही करता है।

(३) शासक दल:—यह राज्यके कार्योंको ही करता है।

राज्य राष्ट्रका ही अंग है। राष्ट्रकी इच्छा तथा मतको काममें लाना ही राज्यका मुख्य काम है। स्वाभाविक ही है कि उसके अंगोंमें पारस्परिक संघर्ष न हो। एकमत होकर सबका काम करना आवश्यक है चाहे वे पृथक् पृथक् कामोंको ही क्यों न करें। दृष्टान्तस्वरूप शरीरको ही लीजिये। शरीरमें भिन्न भिन्न कार्य्योंको करनेके लिये भिन्न भिन्न अंग बनाये गये हैं। हाथ काम करनेके लिये, नाक सूँघनेके लिये, मुंह खानेके लिये, कान सुननेके लिये और आंख देखनेके लिये बनायी गयी है। सभी इन्द्रियां अपना अपना काम पृथक् तौरपर करती हैं, परन्तु उनमें पारस्परिक संघर्ष नहीं है। आंख हाथको सहायता पहुंचाती है और मट्टी ढेला आदिके आंखमें पड़नेकी संभावना होते ही हाथ स्वयंही आंखके सामने आ जाता है और उसको बचाता है। सभी इन्द्रियां एक दूसरीकी सहायक हैं और शरीरके

हित तथा आनन्दको ही बढ़ाती हैं। निस्सन्देह इन्द्रियों में पार्थक्य है और सबकी सब अपने अपने कामोंको करती हैं। परन्तु इसके साथ ही साथ उनमें शक्तिसंविभाग सिद्धान्त काम नहीं करता है। भूखके समय सभी इन्द्रियां एक दूसरीको सहायता पहुंचाती हैं। भोजन अच्छा है या बुरा है, उसमें कीट पतंग या मिट्टी नहीं है इसको आंख देखती है। वह सड़ा तो नहीं है उसको नाक पहचानती है, हाथ भोजनको उठाकर मुंहतक पहुंचाता है और मुंह चबा कर उसको पेटके योग्य बना देता है। शरीरके सदृश ही राष्ट्रशरीरोंकी दशा है। राष्ट्रशरीरोंका हित किसमें है और वह किस प्रकार किया जा सकता है, इसीको सामने रखकर राज्यके भिन्न भिन्न अंगोंका निर्माण किया गया है। राष्ट्रशरीरोंकी कल्पना मनुष्यकृत है। यही कारण है कि उसके अंगोंमें वह पूर्णता नहीं है जो कि शरीरमें पायी जाती है। उचित तो यह है कि बिना किसी प्रकारकी पारस्परिक रगड़के राज्यके संपूर्ण विभाग एक दूसरेको सहायता पहुंचाते हुए राष्ट्रके हित तथा आनन्दको बढ़ावें। परन्तु यही बात नहीं है। राष्ट्रीय अंगोंमें कुछ न कुछ संघर्ष सभी राष्ट्रोंमें विद्यमान है। राष्ट्रीय इच्छाको काममें लानेके लिये वह तत्परता नहीं है जो कि होनी चाहिये। यह होते हुए भी सिद्धान्त दूषित नहीं होता। विभागोंमें पारस्परिक सहानुभूति होनी चाहिये इसका अपलाप नहीं किया जा सकता। राष्ट्रकी इच्छाको पूर्ण करनेमें सभी अंगोंको तत्पर रहना चाहिये। शरीरमें जिस प्रकार सभी इन्द्रियां मनके अधीन हैं उसी प्रकार राजकीय अंगोंको अपने मुखियाके अधीन होकर काम करना चाहिये।

कुछ राष्ट्रोंमें सचिवतन्त्र शासनपद्धतिने बड़ी सफलता-से काम किया। अमरीकामें शासक विभागकी शक्ति बहुत ही अधिक है। इस शक्तिको नियन्त्रित करनेके लिये वहां भिन्न भिन्न राजनीतिक दल पैदा होगये जिनका संगठन अपूर्व है और जिनकी शक्ति बहुत ही अधिक है।

लोकतन्त्र-शासनपद्धतिसे शासित राष्ट्रोंकी मानसिक शक्ति नियामक सभायें हैं। वेही राष्ट्रके प्रत्येक अंगका नियं-त्रण करती हैं और उनको यथेच्छ चलाती हैं। साथही उन्होंने भिन्न भिन्न कार्योंके करनेमें प्रत्येक अंगको स्वतन्त्रता भी दे रखी है। यदि यह न हो तो राज्यका कार्य्य उत्तम विधिपर न चल सके। नियामकसभाओंका अत्यधिक हस्तक्षेप शासनको शिथिल करदे और राष्ट्रकी एकता चिरकाल तक स्थिर न रह सके। निर्णायक विभागके साथ तो स्वतन्त्रताका घनिष्ठ सम्बन्ध है। उसको अपने कार्य्यक्षेत्रमें किसीको भी बाधा न होनी चाहिये। जब तक निष्पक्ष होकर वह अपने कामको करता रहे तब तक राज्यके किसी भी अंगका उसको भय न हो।

१८७—शक्तिसंविभाग

राष्ट्रकी इच्छा तथा मतका प्रचार करना राज्यका कर्तव्य है। परन्तु उसको इसके साथही साथ यह भी निश्चित करना पड़ता है कि कौनसा कार्य संपूर्ण राष्ट्रके साथ सम्बद्ध है और कोनसा कार्य स्थानीय या विशेष श्रेणीके लोगोंके साथ ही संबन्ध रखता है। इसी भेदको सामने रखकर लगभग अर्वाचीन सभी राष्ट्रोंमें मुख्य तथा स्थानीयके भेदसे

कार्योंका भेद किया गया है। एकात्मकराज्यों (unitary states) में मुख्य या जातीय राज्य ही स्थानीय कार्य्यों तथा स्थानीय कार्य्यकर्त्ताओंको नियत करता है। उनको पदच्युत करना तथा उनके कार्य्यों तथा अधिकारोंमें परिवर्त्तन करना भी प्रायः उसीके हाथमें होता है। संघीय राज्योंमें प्रायः शासनपद्धतिकी धाराएँ भी भिन्न भिन्न राष्ट्रोंके अधिकार, कार्य तथा शक्तियोंका निश्चय करती हैं। मुख्य राज्य तथा राष्ट्रीय राज्य दोनों ही एक दूसरेके अधिकारों तथा शक्तियोंमें न तो परिवर्त्तन ही कर सकते हैं और न उनका नाश ही कर सकते हैं। संघीय राज्यके प्रत्येक राष्ट्रमें स्थानीय तथा मुख्यके भेदसे कार्य्योंका भेद किया जाता है, राष्ट्रकी नियामकसभायें ही इस कामको करती हैं अतः उनमें अदल-बदल करना भी उन्हींके हाथमें रहता है।

भेदके सदृश ही अर्वाचीन राष्ट्रोंके कार्य्योंमें बहुत कुछ समानता है। सभी राष्ट्रोंमें राष्ट्रोंके पारस्परिक सम्बन्ध तथा साधारण राजनीतिका निर्णय मुख्यराज्यके हाथमें ही होता है। सन्धि, विग्रह, कोश तथा गृहप्रबन्धके मामलेमें सभी मुख्यराज्योंकी समता है। वैयक्तिक प्रश्नों तथा विवादोंका निर्णय प्रायः स्थानीय राज्यके ही पास रहता है। सड़क, पानी, रोशनी तथा गमनागमनके साधनोंका प्रबन्ध भी प्रायः स्थानीय राज्य ही करते हैं।

स्थानीय तथा मुख्यराज्यके संबन्धमें बहुत सी समस्यायें हैं जो कि राजनीतिशास्त्रमें बहुत ही महत्वपूर्ण गिनी जाती हैं। स्थानीय स्वराज्य (local self-government) के सिद्धान्तका प्रचार दिनपर दिन बढ़ रहा है। इसके अनुसार

स्थानीय राज्योंके ही हाथमें साधारण प्रबन्ध होना चाहिये। और उनको अपने अधिकार क्षेत्रमें काम करने की पूर्ण स्वतंत्रता होनी चाहिये। स्थानीय राज्योंमें पारस्परिक झगड़ा न हो। और राष्ट्रकी एकता बनी रहे इस उद्देश्यसे मुख्य राज्यका उनपर किसी न किसी हदतक नियन्त्रण रहता है। इस बातको सफलतासे करनेके लिये दो शैलियों का अवलंबन किया जाता है जो कि इस प्रकार हैं।

(क) मुख्यराज्य नियम-निर्माणका काम स्वयं करे और शासन तथा प्रबंधका काम स्थानीय राज्यके हाथमें दे दे।

(ख) मुख्य राज्य साधारण साधारण नियमों के निर्माण का काम स्थानीय राज्यको सुपुर्द कर दे और स्वयं शासन तथा प्रबंधका निरीक्षण करे।

इनमेंसे पहली शैलीपर इंग्लैण्ड तथा अमरीकामें काम होता है। मुख्यराज्य छोटे छोटे नियमोंतकको बनाता है। इससे स्थानीय आवश्यकताओं तथा जरूरतोंकी पूर्ति उचित सीमातक नहीं होती। इसके विपरीत स्थानीय शासक स्वच्छंदतौरपर शासन करते हैं। मुख्यराज्यका उनपर पूरे तौरपर नियंत्रण नहीं रहता। इसका दोष यह है कि स्थानीय राज्य अप्रिय राज्यनियमोंका प्रयोग पूरे तौरपर नहीं करते हैं। लाचार होकर मुख्यराज्यको उनके कार्य्योंमें हस्तक्षेप करना पड़ता है और सदा ही मुख्यराज्य तथा स्थानीय राज्यका विवाद बना रहता है।

फ्रान्स तथा जर्मनीमें दूसरी शैलीपर ही काम होता है। वहां छोटे छोटे आवश्यकीय नियमोंका निर्माण स्थानीय राज्यके पास है। शासन तथा प्रबन्धके मामलेमें वह मुख्य-

राज्यके अधीन हैं। मुख्यराज्य जिधर चाहे उधर स्थानीय शासकोंको चला सकता है और उनपर पूर्ण तौरपर अपना नियंत्रण रखता है। इसका गुण यह है कि मुख्यराज्य तथा स्थानीय राज्यमें हर रोज झगड़ा नहीं होता और शासन-का काम स्थिरतौरपर चलता रहता है।

यदि दोनों शैलीपर गंभीर तौरपर विचार किया जाय तो उनके दोष तथा गुण प्रत्यक्ष हो जाते हैं। उनके दोष तो ये हैं कि यदि प्रथम शैलीपर काम किया जाय तो शासन शिथिल हो जाता है। राष्ट्रीय नियमोंका पालन पूरे तौरपर नहीं होता है और राष्ट्रीय स्वार्थों तथा हितोंको जनता उपेक्षाकी दृष्टिसे देखने लगती है। इसके विपरीत यदि द्वितीय शैलीपर काम किया जाय तो स्थानीय राज्यका अधिकार कुछ भी नहीं रहता। स्थानीय स्वार्थों तथा हितोंकी उपेक्षा की जाती है। यही कारण है कि आज कल सभी राष्ट्र मध्य-का मार्ग ले रहे हैं। इंग्लैण्ड तथा अमरीका अपने शासनको सुदृढ़ बना रहे हैं। स्थानीय राज्योंको नियम-निर्माणके संबंधमें अधिक अधिक अधिकार देते जाते हैं और स्थानीय प्रबंध तथा शासनपर अपना निरीक्षण बढ़ा रहे हैं। अमरीका-में विशेष विशेष स्थानोंके लिये विशेष विशेष नियमों-का बनाना कम किया जा रहा है। जनताका इस ओर विशेष तौरपर ध्यान है कि स्थानीय राज्योंको राष्ट्रीय नियमोंके नियंत्रणसे कुछ कुछ स्वतंत्रता मिलनी चाहिये। अमरीकन नगरोंमें अपने अपने नागरिक स्वार्थोंको सामने रखकर नये नये दल बन रहे हैं। इससे मुख्यराज्यके लिये बने हुए राजनीतिक दलोंका प्रभुत्व घट रहा है और नागरिक

प्रबन्ध शासनमें तथा नियम निर्माणमें कुछ कुछ स्वतन्त्रता आरही है। यूरोपमें मुख्यराज्यके शासनको ढीला करनेकी ओर जनताका झुकाव है। यही कारण है कि स्थानीय संघों-का इस ओर विशेष ध्यान है कि यह अपने शासकोंको स्वयं ही चुनें। इस समय यूरोपकी स्थिति ऐसी है कि स्थानीय संघोंके यत्नमें मुख्यराज्य बहुत बाधा न डालेंगे और जहांतक हो सकेगा उनकी इच्छाओंको पूरा करेंगे।

साधारणतया जिन राष्ट्रोंमें स्थानीय राज्यको शासन तथा प्रबंधका निरीक्षण मुख्यराज्यके हाथमें है वहां शासन ब्यूरोक्रेटिक या स्वेच्छापूर्ण होता है। अर्थात् वहां शासकों-के स्थिर राज्य-सेवक होनेसे जनताके स्वार्थों तथा हितों की रक्षा पूर्णतौरपर नहीं होती है। ऐसे देशोंमें राज्यपद-का लोभ लोगोंमें प्रबल हो जाता है। राज्यसेवक अपने ऊंचे अधिकारीको ही अपना इष्टदेव मानते हैं और तनखाह बढ़ने तथा पदोन्नतिके पीछे जनताकी इच्छाओंकी तनिकसी भी परवाह नहीं करते। इसका सबसे भयंकररूप यदि किसी देशमें देखा जा सकता है तो वह भारतवर्षमें है। भारत-वर्षमें राज्यपदोंके लाभने न्यायाधीशों तकको अन्यायी बना दिया है। यदि यह कह दिया जाय कि भारतमें न्याय नाम-मात्रको होता है और जो कुछ है वह ऊपरके राज्याधि-कारीकी प्रसन्नता तथा खुशामदसे है तो इसमें कुछ भी अत्युक्ति न होगी। पुराने जमानेमें यही हालत साम्रा-ज्यकालमें रोमकी; अठारहवीं सदीमें प्रुशियाकी—और नैपो-लियनके युगमें फ्रान्सकी थी। लड़ाईसे पहले रूस भी राज-कीय अन्यायों तथा अत्याचारोंसे परेशान था। परन्तु राज्यक्रान्तिसे रूसका भी उद्धार हो गया। इस समय एक मात्र भारत ही दुरवस्थामें है।

स्थानीय राज्यको जहां शासनमें स्वतन्त्रता है वहां जनताकी स्वतन्त्रता सुरक्षित रहती है। जनताही स्थानीय राज्य-कर्मचारियोंको नियुक्त करती है। प्रायः वे विना तनख्वाह लिये ही राज्यकार्य करते हैं और समय खतम होनेपर पुनः जनतामें आ मिलते हैं। इससे देशमें राज्यसेवकोंकी एक श्रेणी नहीं बन जाती और स्थिर शासकोंको भी जनताके मनका आदर करना पड़ता है। इस शैलीमें जो कुछ नुकसान है वह यही है कि शासनमें मितव्ययिता तथा पूर्णता नहीं आती। जो कुछ इसका गुण है वह यही है कि राष्ट्रीय कार्य्योंमें सभी जनता रुचि रखने लगती है और किसी हद्द तक उनको स्वयं भी करनेमें समर्थ हो जाती है।

शासकतन्त्र (Bureaucratic administration) राज्यपद्धति तथा जनतन्त्र राज्यपद्धति (Popular administration) का आजकल एक दूसरेकी ओर झुकाव है। अर्वाचीन राजनीतिज्ञ राष्ट्रके प्रबन्धको सक्षम तथा उत्तरदायी बनानेके लिये दोनों ही पद्धतियोंको एक साथ काममें लाना चाहते हैं। विवेक पूर्ण समझदार मनुष्य राज्यनियम बनावें और स्थिर राज्यसेवक उनका प्रयोग करें, इसी ओर अर्वाचीन राष्ट्रोंकी शासन पद्धतियोंका झुकाव है।

दूसरा परिच्छेद ।

नियामक विभाग ।

§ ८८—नियामक विभागका कार्य तथा स्वरूप ।

नियामक, निर्णायक तथा शासक शक्तिका परस्पर क्या सम्बन्ध है, इसपर पूर्व प्रकरणमें प्रकाश डाला जा चुका है। नियामकशक्तिका उपयोग तथा नियम-निर्माणका कार्य सभ्य जातियोंमें किस विधिपर किया जाता है, इस परिच्छेदमें इसीपर कुछ प्रकाश डाला जायगा।

राज्यकी भिन्न भिन्न शक्तियोंके अधिष्ठाताके लिए भिन्न भिन्न गुणोंका होना अति आवश्यक है। शासकविभागका विचारकी अपेक्षा कर्मके साथ और निर्णायक विभागका नियमज्ञान तथा उसके प्रयोगके साथ विशेष सम्बन्ध है। इसी प्रकार नियामकविभाग विचार तथा दूरदर्शिताकी विशेष अपेक्षा करता है। विचार तथा दूरदर्शिता सम्बन्धी कार्योंमें भिन्न भिन्न स्वार्थ, उद्देश्य, विचार तथा मतोंके व्यक्तियोंकी संख्या जितनी अधिक हो उतना ही उत्तम है। यह होते हुए भी, नियामकविभागके अधिकसे अधिक कितने सभ्य हों, इसका निर्णय दुःसाध्य है, क्योंकि यह भिन्न भिन्न देशोंकी भौगोलिक, सामाजिक तथा राजनैतिक अवस्थापर ही निर्भर रहता है। संवत् १८४६ (सन् १७८९) की फ्रांसीसी प्रतिनिधि सभामें १२०० सभ्य थे। इससे

अधिक सभ्य वर्तमानकालमें किसी भी देशकी प्रतिनिधि सभामें नहीं हुए हैं। विषयको स्पष्ट करनेके लिये संवत् १८७० (सन् १८१३) में भिन्न भिन्न देशोंमें प्रतिनिधि सभाके सभ्य कितने थे, इसकी सूची दे दी जाती है।

प्रतिनिधि सभा	सभ्योंकी संख्या
अमेरिकन प्रतिनिधि सभा	४३५
आंग्ल ,,	६७०
फरांसीसी ,,	५९७
जर्मन ,,	३९७
इटैलियन ,,	५०८
स्पैनिश कांग्रेस ,,	४०६
न्यूहैम्पशायर् (राष्ट्रीय)	४०५
मेसाचसेट्स ,,	२४०
वर्जीनिया ,,	१००
डेलावेयर् ,,	३६

उपरिलिखित सूचीसे स्पष्ट है कि नियामक सभामें सभ्यों की संख्या प्रायः सभी देशोंमें अधिक है, इतनी बृहत्संख्यामें नियम-निर्माणका कार्य सर्वथा कठिन है। यही कारण है कि सभी देशोंमें किसी न किसी नवीन विधिके द्वारा नियम-निर्माणका कार्य किया जाता है। संवत् १८४६ (सन् १७८९) की फ्रांसीसी प्रतिनिधि सभाने उस बृहत्संख्यामें ही नियम-निर्माणका कार्य करना चाहा परन्तु वह सर्वथा असफल-प्रयत्न सिद्ध हुई। गवर्नर मारिसने उस सभाके विषयमें लिखा है कि—"सभाके सभ्य किसी विषयपर कुछ भी विवाद नहीं करते हैं। उनका आधा समय शोरगुलमें ही

नष्ट हो जाता है ।" इसी प्रकारके अनुभवोंसे प्रेरित होकर संसारकी सभ्य जातियोंने नियम-निर्माणमें नवीन नवीन विधियोंका अवलम्बन किया है। विषयको स्पष्ट करनेके लिये कुछ विधियोंका दे देना आवश्यक प्रतीत होता है।

प्रथम प्रणाली:—नियामक सभाके बहुसंख्या सम्बन्धी दूषणको रोकनेके लिये बहुतसे सभ्य देशोंने प्रस्तावका तीन बार नियामक सभामें पढ़ा जाना आवश्यक ठहराया है। यह इसलिये कि कोई भी व्यक्ति नियामक सभाके सभ्योंको अपने वशमें करके सहसा ही प्रस्तावको राज्यनियमका रूप न दिलवा दे। इंग्लैण्डमें प्रतिनिधि सभाका सभ्य प्रस्ताव पेश करनेसे पूर्व प्रवक्तासे यह प्रार्थना करता है कि मैं एक प्रस्ताव पेश करता हूं। इस प्रार्थनाको सुनते ही प्रतिनिधि सभाके सभ्य शान्तचित्त हो जाते हैं। प्रवक्ताकी आज्ञापर प्रस्ताव टेबलपर लाया जाता है और लोकसभा-के क्लार्कको दे दिया जाता है। क्लार्क अति उच्चस्वरसे सभामें प्रस्तावका शीर्षक पढ़ता है। इसके अनन्तर संपूर्ण प्रस्ताव पढ़ा जाता है और उसके द्वितीय बार पुनः पढ़े जाने-का समय निश्चित कर दिया जाता है। द्वितीय बार सभा-में प्रस्ताव पास हो जानेपर विचारार्थ एक उपसमितिमें भेज दिया जाताहै। प्रस्तावके प्रत्येक अक्षरपर उपसमिति गम्भीरतासे विचार तथा संशोधन करती है। उपसमितिसे गुजरकर सभामें तृतीयबार प्रस्ताव पेश होता है। प्रति-निधि सभासे पास होकरके प्रस्ताव लार्ड सभामें भेज दिया जाता है। यदि लार्ड सभा उस प्रस्तावमें कुछ भी संशोधन या परिवर्तन करे तो उसपर प्रतिनिधि सभा पुनः विचार

करती है। इन सब क्रमोंमेंसे सफलता पूर्वक गुजर आनेपर ही कोई प्रस्ताव राज्यनियमका रूप धारण कर सकता है।

द्वितीय प्रणाली:—नियमनिर्माणकी द्वितीय प्रणाली यह है कि नियमनिर्माणका कार्य उपसमितियोंके द्वारा किया जाय। इससे कार्यका सुगमतासे ही उत्तमविधिपर हो जाना स्वाभाविक ही है। अमेरिकन प्रतिनिधि सभामें इसी विधिपर संपूर्ण कार्य सम्पादित होता है। ६६ वीं कांग्रेसमें प्रतिनिधि सभाकी ६० उपसमितियां थीं जिनमेंसे आयव्यय, मुद्रा, व्यापार, मार्ग आदि सम्बन्धिनी उपसमितियां इतिहासमें अति प्रसिद्ध हैं। यद्यपि उपसमितियोंको प्रस्ताव-निषेधका कुछ भी अधिकार नहीं प्राप्त है, तथापि वे विरोधी सूचना, परिवर्तन, नवीन प्रस्ताव तथा उदासीनताके द्वारा प्रस्तावके वास्तविक रूपको सर्वथा नष्ट कर सकते हैं और नष्ट करती भी रही हैं। इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि अमेरिकन प्रतिनिधि सभाके हाथमें नियम-निर्माणका कार्य किस सीमातक है।

फ्रांसमें अमेरिकासे भिन्न विधिपर काम किया जाता है। वहां प्रतिनिधि सभाके सभ्य गालिका-पात विधिसे ११ भागोंमें विभक्तकर दिये जाते हैं और इन्हीमेंसे प्रत्येक प्रस्तावके विचारके लिये एक नवीन उपसमिति बनायी जाती है। इस विधिका असन्तोषप्रद होना इसीसे जाना जा सकता है कि बहुत बार उपसमितिके सभ्य वही लोग बन जाते हैं जो कि उस प्रस्तावके विरोधी होते हैं। नियामक सभाओंमें "विवादको रोकनेकी क्या विधि है" इसपर भी कुछ शब्द लिख देना आवश्यक ही प्रतीत होता है। अमेरिकन राष्ट्र सभामें विवाद रोका नहीं जाता है, क्योंकि

ऐसा करनेमें राष्ट्रसभाके सभ्य अपनी स्वतन्त्रताका घात तथा अपना अपमान समझते हैं। परन्तु अमेरिकन प्रतिनिधि सभामें यह बात नहीं है। वहांपर सभ्योंकी बहुसम्मतिसे विवाद रोका जा सकता है। कुछ समय पूर्व आंग्ल प्रतिनिधिसभामें ऐसा कोई नियम न था। महाशय ग्लेडस्टनके द्वितीय मन्त्रित्वकाल [संवत् १९३७–४२ (सन् १८८०-८५)] में आयरिशसभ्योंने समयके विरुद्ध विवाद करते हुए पार्लमेंटके संपूर्ण कार्योंको रोक दिया। इसीका परिणाम यह हुआ कि इंग्लण्डमें भी विवाद बन्द करनेके प्रस्तावपर प्रवक्ताको यह अधिकार है कि चाहे वह विवाद बन्द कर दे और चाहे तो विवाद न बन्द करे। यही नहीं, कुछ प्रस्तावोंकी धाराओंपर विवाद करना सर्वथा निषिद्ध है और कईपर विवादका समय निश्चित है।

नियम-निर्माणके काममें विवेक, गंभीर विचार तथा दूरदर्शिताकी जरूरत है। जनताके प्रतिनिधियोंमें इन संपूर्ण गुणोंका होना आवश्यक नहीं है। वे भिन्न भिन्न श्रेणीके स्वार्थों तथा हितोंके प्रतिनिधि हैं। निर्वाचनके समयमें इन्हीं बातोंका आधार रखा जाता है। इस दशामें नियम-निर्माणमें बहुत भूल हो सकती हैं। इनसे बचनेके लिये सभी राष्ट्रोंने सभा-द्वयविधिका अवलंबन किया है। कोई भी प्रस्ताव तबतक राज्य नियम नहीं बन सकता जबतक कि राष्ट्रकी दोनों सभाओं द्वारा स्वीकृत न हो जाय। यह नियम प्रायः सभी राष्ट्रोंमें प्रचलित है। अमरीका, इंग्लैण्ड, फ्रांस तथा जर्मनीमें सभाद्वयविधिके अनुसार ही काम किया जाता है। एक मात्र यूनान ही इस नियमका अपवाद है। वहां एक

सभा द्वारा ही स्वीकृत प्रस्ताव राज्यनियमका रूप धारण कर लेते हैं । मैक्सिको तथा दक्खिनी अमरीकाके राष्ट्रोंने अपनी शासनपद्धति अमरीकन शासनपद्धतिके आधारपर बनायी है अतः वहां दो सभाओंके द्वारा नियमनिर्माण स्वाभाविक ही है । अमरीकाके छोटे छोटे राष्ट्रोंमें भी प्रायः दो सभाओंके द्वारा ही नियम बनते हैं । अमेरिकन राष्ट्रसंघकी अड़तालीस रियासतोंमें सीनेट तथा प्रतिनिधि सभाएं हैं । जापान तथा आस्ट्रेलियाने भी इस मामलेमें यूरोपका अनुकरण किया है।

सभाद्वयविधिका विकास सबसे पहले इंग्लैण्डमें हुआ । इसको विवेकपूर्ण न समझकर आकस्मिक ही समझना चाहिये । पादरियों तथा कुलीनोंकी सभामें धीरे धीरे जिलों तथा परगनोंके सभ्य सम्मिलित हुए । परन्तु यह सम्मिलन सफल न हुआ, क्योंकि ऊंचे घरानेके लोग साधारण प्रजाके साथ एक साथ बैठना पसन्द नहीं करते थे । यही कारण है कि जनताके प्रतिनिधियोंकी सभा पृथक हो गयी । व्यापार तथा व्यवसायके बढ़नेके साथ ही साथ इंग्लैण्डमें मध्यश्रेणीके लोगोंका महत्त्व बढ़ गया । राजाने भी कुलीनोंकी सभाके स्थानपर लोक सभाका ही सहारा लिया । उसको जब रुपये पैसेकी जरूरत होती थी तब वह लोकसभासे ही प्राप्त करता था । इससे धीरे धीरे लोकसभा शक्तिशालिनी होगयी । सोलहवीं तथा सत्रहवीं सदीमें राष्ट्रकी संपूर्ण शक्ति लार्ड सभाके स्थानपर लोकसभामें ही केन्द्रित हो गयी ।

यूरोपमें समानता स्वतन्त्रता तथा भ्रातृ भावके विचारोंका प्रचार फ्रान्ससे शुरू हुआ । कुलीनोंके प्रति घृणाने फरांसीसियोंको इसपर बाध्य किया कि वह एकमात्र लोकसभाको

नियामक सभाका रूप दें । अमरीकामें भी यही घटना घटित हुई। यही कारण है कि कान्फिडरेशनके दिनोंमें अमरीकाने और फ्रांसने (सन् १७९१) कान्स्टिटयूशनल एसेंब्लीके समयमें और इसके बाद (सन् १८४८) द्वितीय रिपब्लिकके समयमें एक सभाके द्वारा ही नियमनिर्माणका प्रयत्न किया परन्तु सफलता न मिली। संवत् १९०५ (सन् १८४८) की जर्मन पार्लमेन्टने भी एक सभाके द्वारा ही नियमनिर्माणका काम सोचा परन्तु अन्तमें उसको निराश होना पड़ा। अमरीकाकी छोटी छोटी रियासतोंने भी इसका परीक्षण किया है। आजकल यूनान तथा सेन्ट्रल अमरीकन रिपब्लिक ही बच गये हैं। इनमें अबतक एक सभाके द्वारा ही नियमनिर्माणकी पद्धति प्रचलित है।

भिन्न भिन्न राष्ट्रोंमें सभाद्वयविधि प्रचारके भिन्न भिन्न कारण हैं। अमरीकामें संघराज्य तथा जातीय स्वार्थने ही राष्ट्रको इस विधिका अवलंबन करनेके लिये बाधित किया। यूरोपमें जनता तथा कुलीनोंका झगड़ा था और कुलीन जनताके साथ बैठनेमें अपनी हतक समझते थे। यही कारण है कि वहां कुलीनसभा तथा जनसभा पृथक् पृथक् बनगयी। फ्रान्स, दक्खिनी अमरीकाके राष्ट्र तथा जापानने सभाद्वयविधिको लाभप्रद समझकर अपने अपने देशोंमें प्रचलित किया।

प्रायः सभी राजनीतिज्ञ एक सभाके द्वारा नियमनिर्माणको बुरा समझते हैं। महाशय लैकी जैसे प्रसिद्ध विद्वान्ने यह लिख दिया कि "मनुष्यमात्रमें जितने प्रकारके राज्य प्रचलित हैं उनमें सबसे बुरा राज्य वह है कि जिसमें नियमनिर्माणका काम एक सभाके द्वारा होता है।" निस्सन्देह लैकीका विचार अत्युक्तिपूर्ण है। परन्तु उस अत्युक्तिमें भी सचाई

है। यह पूर्व ही लिखा जा चुका है कि बहुतसे राष्ट्रोंने एक सभाके द्वारा नियम बनानेका यत्न किया परन्तु किसीको भी सफलता न मिली। नियम-निर्माणमें सबसे अधिक जरूरी बात यह है कि जल्दबाजी न हो। एक सभाके द्वारा यही बात नहीं सकती। सबसे बड़ी बात तो यह है कि एक सभाके द्वारा नियम-निर्माण होनेपर भिन्न भिन्न व्यक्ति स्वेच्छाचारी बन जाते हैं। जो अच्छा बोल सकता हो, जिसकी वाक्शक्ति जनताको अपने वशमें कर सकती हो वह अपनी इच्छाके अनुसार जिस प्रस्तावको चाहे कानून बनवा दे। यूनानमें डैमोगागकी उत्पत्तिका एक कारण यह भी था। दो सभाओंके हो जानेसे यह बात नहीं हो सकती। जो व्यक्ति एक सभामें प्रभावशाली है उसका दूसरी सभामें कुछ भी प्रभाव नहीं होता। आमतौरपर यह देखनेमें आया है कि दूसरी सभाके सभ्य उसके विरुद्ध रहते हैं। इस हालतमें किसी भी व्यक्तिका स्वेच्छाचारी बनना असंभव हो जाता है।

एक सभाके द्वारा नियम बनानेका यह भी दोष है कि जनताके मतमें तथा नियामक सभाके मतमें बहुत भेद पड़ जाता है। प्रायः नियामक सभाके सभ्य कुछ ही वर्षोंके लिये चुने जाते हैं। तीन साल पहले राष्ट्रकी जो दशा थी और वह भिन्न भिन्न राजनीतिक प्रश्नोंपर जिस दृष्टिसे विचार करता था, हो सकता है उसके बाद उसकी वह दशा न रहे। नियामकसभा तो तीन सालके लिये चुनी जाकर भंग नहीं हो सकती। इससे जनताके विरुद्ध नियमोंका पास हो जाना स्वाभाविक ही है। देखनेमें तो

एक सभा द्वारा नियम-निर्माण करनेवाला राष्ट्र प्रतिनिधितंत्र या लोकतन्त्र है परन्तु वस्तुतः वह स्वेच्छातन्त्र ही होता है

फरांसीसी राज्यक्रान्तिके समयमें यूरोपीय राजनीतिज्ञोंका यह मत था कि दो सभाओंके होनेसे जनताके मतका प्रभुत्व कम हो जाता है। इस दोषपूर्ण विचारका मुख्य कारण यह था कि इंग्लैण्डमें कुलीनसभा या लार्डसभाके पास बहुत अधिक शक्ति थी। लोकसभाके द्वारा पास किये गये नियमोंको रद्द करते हुए देखकर राजनीतिज्ञोंने उसको लोकतंत्र शासनका बाधक समझ लिया। यही कारण था कि संवत् १८४८ (सन् १७९१) के जनतंत्र शासनके पक्षपाती फरांसीसी राजनीतिज्ञोंने एक सभाके द्वारा ही काम करनेका यत्न किया, परन्तु उनको सफलता न मिली। संक्षेपसे सभाद्वयविधिके निम्नलिखित लाभ गिनाये जा सकते हैं:—

(१) इसके कारण नियम-निर्माण विवेक तथा सावधानीसे होता है। सब प्रकारके ऊंच नीच तथा भिन्न भिन्न श्रेणीके हित तथा अहितकी पूरे तौरपर पर्यालोचना हो जानेके बाद ही कोई प्रस्ताव राज्यनियमका रूप धारण करता है। एक सभाके द्वारा यह बात नहीं हो सकती। उससे नियम जल्दी बनते हैं। द्वेष, लोभ तथा स्वार्थका प्रभाव उनपर जल्दीसे पड़ता है। उनमें दूरदर्शिता तथा सब श्रेणीके हितोंका विचार नहीं रहता। यदि एक ही सभामें अल्पपक्ष तथा बहुपक्ष हो तो कुछ घंटोंके बाद ही प्रस्ताव राज्यनियमका रूप धारण कर लेता है। इससे अल्पपक्षके हितोंका कुछ भी ख्याल नहीं किया जा सकता। परन्तु दो सभाओंके द्वारा काम होनेपर विशेष प्रकारके स्वार्थसे पूर्ण लाग किसी एक

लार्डसभा या कुलीन सभाके रूपमें एकत्र किये जायँ और उनका भी नियम-निर्माणमें भाग हो तो राज्यक्रान्तिकारक प्रस्ताव सुगमतासे ही पास नहीं किये जा सकते। एक श्रेणीके लोग दूसरी श्रेणीके अधिकारोंका अपहरण सुगमतासे ही नहीं कर सकते। ये लाभ इतने महत्त्वपूर्ण हैं कि सभाद्वयविधिकी जितनी प्रशंसा की जाय उतनी थोड़ी है।

(२) सभाद्वय विधिके द्वारा जनताकी सम्मतिका बोध सुगमतासे ही हो सकता है। एक सभाके सभ्य कुछ सालोंके लिये चुने जाकर स्वेच्छाचारी बन सकते हैं और जनताके मतका निरादर कर सकते हैं। परन्तु यदि दो सभाओंके द्वारा नियम बनाये जायँ और उनके सभ्य भिन्न भिन्न समयके लिये और भिन्न भिन्न समयमें चुने जायँ तो यह दोष मिट जाता है। नये सभ्य जनताके मतका निरादर करनेसे नियामक सभाओंको रोकेंगे और इस प्रकार जनतन्त्र शासनपद्धतिको स्वेच्छाचारकी ओर न जाने देंगे।

(३) नियामकसभाओंके दो भागोंमें विभक्त होनेसे शासक विभागका पार्थक्य सुरक्षित रह सकता है। यदि एक सभाके द्वारा ही संपूर्ण काम हो तो नियामकसभा शासकसभाको अपनी इच्छाके अनुसार चलानेका यत्न करेगी और इस प्रकार शासकविभागको नियामकविभागके अधीन बना देगी। स्वाभाविक ही है कि इससे शासनका क्रम बिगड़ जाय। शासकविभागके पार्थक्यके जो लाभ हैं वे सबके सब मटियामेट हो जायँ और राष्ट्रका शासन शिथिल हो जाय।

यदि गंभीर तौरपर विचार किया जाय तो मालूम पड़े कि सभाद्वयविधि स्थिर नहीं है। परिवर्त्तनशील समाजके

हो यह एक अंग है । समाजमें स्वार्थकी मात्रा अधिक है । भिन्न भिन्न श्रेणीके लोगोंका भिन्न भिन्न स्वार्थ है । उचित तो यह है कि जनता समाज तथा राष्ट्रके हित तथा स्वार्थके सम्मुख अपने हित तथा स्वार्थको भुला दे । आजकल लड़ाईके दिनोंमें प्रायः वैसा होता है । परन्तु शान्तिकालमें राज्य-संचालनमें श्रेणी-युद्धोंका प्रभाव बहुत ही अधिक है । क्या ही अच्छा होता यदि जनताके सम्पूर्ण प्रतिनिधि एक ही सभामें बैठकर भिन्न भिन्न प्रस्तावोंके हानि-लाभकी पर्यालोचना करते और यदि उचित समझते तो उनको राज्य-नियमका रूप दे देते । अब क्या होता है ? पहले एक सभामें प्रस्ताव उपस्थित होता है और वहांसे पास होकर वह दूसरी सभामें भेजा जाता है । बहुत बार उस प्रस्तावके नाक कान काटे जाते हैं और इस प्रकार वह विकृत रूपमें पास किया जाता है । परन्तु इसके बिना काम भी नहीं चल सकता, क्योंकि जनतामें लोभ, मोह, द्वेष, ईर्ष्या तथा स्वार्थके भाव बहुत ही अधिक हैं । इनसे जहांतक हो सके समाजको बचाना चाहिये । यही कारण है कि कुछ नकलीतरीकोंसे बचावका प्रबन्ध किया जाता है । भिन्न भिन्न स्वार्थके लोग दो भिन्न भिन्न सभाओंमें बैठा दिये जाते हैं और दोनों ही सभाओंको किसी हद्दतक एक दूसरेके स्वार्थोंको कम करनेका अधिकार दे दिया जाता है । इसका परिणाम यह है कि समाज किसी न किसी तरीकेसे लुढ़कता पुढ़कता आगे बढ़ता चलता है । सभ्योंकी अज्ञानता तथा अविद्याके कारण नियम-निर्माणमें जो भूलें होती हैं उनको भी किसी न किसी हद्दतक दोनों सभायें कम करती हैं ।

सारांश यह है कि मनुष्योंका जीवन अबतक इतना उच्च तथा पवित्र नहीं कि उनसे किसी भी बड़े कामके निर्दोष पूर्ण समाप्त होनेकी आशा की जा सके। समाजको उनकी भूलोंसे जो नुक्सान पहुंच सकता है, सभाद्वयविधि उसीका एकमात्र उपाय है। *

§८९. प्रथम सभाका निर्माण।

अर्वाचीन राष्ट्रोंमें प्रथम सभा एक समान नहीं है। भिन्न भिन्न समाजके ऐतिहासिक विकासका ही वह परिणाम है। उसके सभ्योंका चुनाव प्रायः श्रेणीके स्वार्थों तथा भेदोंपर निर्भर है। संघ राज्योंमें प्रथम सभा उस घटनाका परिणाम है जिसपर भिन्न भिन्न राष्ट्रोंका समझौता तथा मेल हुआ था। द्वितीय सभाके सभ्य प्रत्यक्ष तौरपर जनताके प्रतिनिधि होते हैं। प्रथम सभामें यह बात कहां? कहींपर तो प्रथम सभाके सभ्य स्थानीय राज्यके प्रतिनिधि और कहीं कहीं पुराने कुलीनों तथा धनाढ्योंके प्रतिनिधि हैं।

प्रथम सभाके सभ्योंका आधार (१) निर्वाचन (२) वंश (३) नियुक्ति तथा तीनोंमेंसे किसी एक दोके सम्मिलनपर है। आज कल लोकतन्त्र राष्ट्रोंमें वंशका प्रभाव बहुत कम है और जहांपर है वहां भी धीरे धीरे घट रहा है। इस नियमका अपवाद यदि कोई राष्ट्र है तो वह जापान है। जापानने संवत् १९४६ (सन् १८८९) में लार्ड सभाकी रचना की और इंग्लैण्डके सदृश ही उसका आधार वंशपर रखा। इसका

* देखो ग्रमास लिखित 'दि साइन्स आव पालिटिक्स' पृ० २४५.

कदाचित् यह भी कारण हो कि जापानमें श्रेणी-भेद पूर्वसे ही विद्यमान था। वंशागतके तत्त्वके विरुद्ध फ्रान्समें बहुत पहले ही आन्दोलन हो चुका है। महाशय टामस पेनने संवत् १८४८ (सन् १७९१) में अपने "राइट्स आव मैन" नामक ग्रन्थमें स्पष्ट शब्दोंमें लिखा कि "यदि वंशागत न्यायाधीश गणितज्ञ तथा कवि नहीं हो सकते तो नियामक ही क्यों हों?" उसका यह विचार सत्य है। सबसे बड़ी कठिनाई तो यह है कि शासनपद्धति बनाते समय समाजकी वास्तविक दशाको सामने रखना पड़ता है। माना कि वंशागतके आधारपर किसीको भी महत्त्व देना मूर्खता है और समाजके लिये हितकर नहीं है परन्तु जब तक उसका समाजमें अस्तित्व है और जायदाद तथा दायादके अधिकार समाजमें विद्यमान हैं तब तक शासन-पद्धतिकी नीवमें वंशागतके तत्त्वोंको कुछ भी स्थान न देना भयंकर भूल करना होगा। यदि जापानने वंशके अनुसार लार्ड सभा की रचनाकी तो बड़ी भारी दूरदर्शिताका काम किया। वह राज्यक्रान्ति तथा सामाजिक अशान्तिसे कुछ समयके लिये बच गया। इंग्लैण्डमें लार्डसभाकी रचनाका रहस्य भी बहुत कुछ ऐसा ही है। वहां धीरे धीरे इसकी शक्ति कम की गयी। साम्यवादी तथा समाज-संशोधक इसकी सत्ताको नष्ट करना चाहते हैं परन्तु साधारणतया जनता उनके बहुत विरुद्ध नहीं है। यही कारण है कि वह अब तक विद्यमान है, यद्यपि नाम मात्रको ही उसकी शक्ति है। विषयको स्पष्ट करनेके लिये भिन्न भिन्न देशोंकी प्रथम सभापर प्रकाश डालना आवश्यक प्रतीत होता है।

(क) इंग्लैण्ड:— संवत् १९७१ (सन् १९१४) में इंग्लैण्डकी लार्डसभाके ६३० सभ्य थे। इनमें दो आर्चविशप और चौबीस साधारण विशप थे। स्काटलैण्डके सोलह पीयर्स पार्लमेण्टके समय तक इसके सभ्य रहते हैं। इनका चुनाव स्काटलैंडके कुलीनोंकी ओरसे होता है। स्काटलैंडके सदृश ही आयर्लैण्ड के कुलीन अपने अट्ठाइस पीयर्स लार्ड सभामें भेजते हैं। यह पूर्वमें ही लिखा जा चुका है कि लार्ड सभा विशेष विशेष समय में न्यायालयका भी रूप धारण कर लेती है। यही कारण है कि सम्राट् अपनी ओरसे प्रसिद्ध प्रसिद्ध चार नियमज्ञाताओंको इसका सभ्य बनाता है। शेष सभ्य इंग्लैण्डके पीयर्स हैं जो कि वंशागत हैं। इंग्लिश प्रान्तसे जिन जिन व्यक्तियोंको सम्राट् लार्डसभाका सभ्य बनाता है उनका पद वंशागत हो जाता है। इक्कीस सालकी उमरसे ऊपर उमरके लोग ही लार्डसभाके सभ्य बन सकते हैं। यूरोपके जिन राष्ट्रोंमें लार्डसभाका प्रचार है उनमें इंग्लैण्डके सदृश वंशागतका तत्त्व प्रधान नहीं। लड़ाईसे पहले प्रुशिया, आस्ट्रिया, हंग्री तथा स्पेनमें लार्डसभायें थीं। एक मात्र हंग्रीमें ही वंशागत पीयर्सकी लार्ड सभामें बहुसंख्या थी और किसी भी राष्ट्रमें नहीं। स्पेन तथा आस्ट्रियामें रोमन कैथोलिक पादरियोंको लार्डसभाका सभ्य चुननेका अधिकार है। प्रुशियाकी लार्डसभामें प्रायः ताल्लुकेदारोंके ही सभ्य थे। स्पेनकी सीनेटमें विश्वविद्यालयों, बड़े बड़े व्यापारियों तथा प्रान्तीय राष्ट्रोंके निर्वाचित व्यक्ति ही सभ्य हैं। फ्रांस, स्विटजरलैण्ड, नीदरलैण्ड, डेन्मार्क, बेलजियम, नार्वे तथा स्वीडनमें प्रथम सभाका एक सभ्य भी वंशके आधारपर नहीं

है। केवल इटलीमें राजकीय वंशके कुमारोंके लिये यह मर्य्यादा छोड़ी गयी है। इस प्रकार स्पष्ट है कि इंग्लैंड तथा एक दो और राष्ट्र अभी तक वंशके आधारपर प्रथम सभाके सभ्य चुन रहे हैं। संसारके अन्य सभ्य राष्ट्रोंमें अब यह बात नहीं रही।

(ख) फ्रांस—फ्रांसकी सीनेटके सभ्योंकी संख्या तीन सौ है। फ्रांसके भिन्न भिन्न प्रान्तोंसे ही इनका चुनाव होता है। आम तौरपर एकसे दस तक सभ्य प्रत्येक प्रान्त भेजता है। कौन प्रान्त कितने सभ्य भेजेगा यह उनकी आबादीपर निर्भर है। अल्जीरियाके तीन प्रान्तों तथा बेल्फोर्टके प्रदेश और उपनिवेशोंकी ओरसे भी सीनेटमें एक एक प्रतिनिधि निर्वाचित होकर आता है। भिन्न भिन्न प्रान्तोंके शासक तथा नगरोंकी नगर समितियां ही फ्रांसमें सीनेटके सभ्योंका निर्वाचन करती हैं। संवत् १९३२ (सन् १८७५)में दोनों नियामक सभाओंने जीवन भरके लिये ७५ सभ्य अपनी ओरसे सीनेटमें भेजे। संवत् १९४१ (सन् १८८४) में एक नया प्रस्ताव पास किया गया कि इन ७५ सभ्योंमेंसे जिन जिनका स्थान रिक्त हो उसकी पूर्ति भिन्न भिन्न प्रान्त निर्वाचनके द्वारा करें। सीनेटके लिये निर्वाचित होनेके लिये ४० सालकी उमर तथा फ्रांसका नागरिक होना आवश्यक है। नौ सालके लिये ही सभ्योंका चुनाव होता है, और हर तीसरे साल एक तिहाई सभ्य नये सिरेसे चुने जाते हैं।

(ग) जर्मनी—लड़ाईसे पहले जर्मनीमें बन्देसराथके सभ्योंकी संख्या इकसठ थी। साम्राज्यके भिन्न भिन्न राष्ट्रोंकी ओरसे ही उनका चुनाव होता था। भिन्न भिन्न राष्ट्रोंको कितने कितने सभ्य भेजनेका अधिकार था उसका ब्योरा इस प्रकार है:—

राष्ट्र	सभ्योंकी संख्या
प्रुशिया	१७
बवेरिया	६
सैक्सनी	४
वर्टम्वर्ग	४
हैस	३
वेदन	३
ब्रंजविक	२
मैक्लनवर्ग स्वेरिन्	२
तीन स्वतंत्र नगरोंके एक एक प्रतिनिधि	३
शेष छोटी छोटी रियासतोंके एक एक प्रतिनिधि	१७
	६२

संवत् १६२८ (सन् १८७१) में अलासेस लोरेनके प्रान्त फ्रांससे जर्मनीने छीन लिये थे। संवत् १८३६ (सन् १८७६) में इसको भी अपने प्रतिनिधि राष्ट्रसभामें भेजनेका अधिकार मिला। इस राष्ट्रके प्रतिनिधि जहां राष्ट्रसभाके वादविवादमें पूरी तौरपर भाग ले सकते थे वहां उन्हें अपनी संम्मति देनेका अधिकार प्राप्त न था।

बर्लिनमें राष्ट्रसभाके प्रतिनिधि राजदूतोंकी दृष्टिसे देखे जाते थे। उनको राजदूतोंके ही अधिकार भी प्राप्त थे। इसका मुख्य कारण यह था कि प्रायः राष्ट्रसभाके सभ्य अपने अपने राष्ट्रोंके उच्च अधिकारी ही होते थे। लड़ाईके अन्तमें जर्मनीमें राज्यक्रान्ति होगयी। राष्ट्रसभामें उससे जो परिवर्तन हुआ उसका पूर्णतौरपर ज्ञान हमको नहीं है अतः लड़ाईसे पहलेका ही हाल दिया गया।

(घ) अमरीका:—संवत् १६७१ (सन् १६१४) मेंअमरीकाकी

सीनेटके सभ्योंकी संख्या ९६ थी। प्रत्येक राष्ट्रको दो दो सभ्य भेजनेका अधिकार था। अमरीकाकी शासन-पद्धतिकी धाराओंमें लिखा है कि प्रत्येक राष्ट्र सीनेटमें समान सभ्य भेजे। संवत् १९७० के सतरहवें संशोधनके द्वारा इसके सभ्य जनताके द्वारा प्रत्यक्ष तौरपर चुने जाने लगे हैं। सीनेटरकी उमर तीस सालसे ऊपर होनी चाहिये। वह नौ सालसे अमरीकाका नागरिक हो। जिस राष्ट्रसे उसका चुनाव हो उसीका वह रहने वाला हो। प्रत्येक सीनेटर छःसालके लिये चुना जाता है।

अमरीकाकी राष्ट्र सभा संसारके अन्य सब सभ्यदेशोंकी राष्ट्र सभाओंकी अपेक्षा अधिक ध्यान देने योग्य है। महाशय ब्राइसकी सम्मतिमें तो अमरीकन शासनपद्धतिके निर्माताओंकी बुद्धिकी यह अनुपम तथा अद्भुत कृति है। अमरीकन राष्ट्र सभाका एक बड़ाभारी गुण यह है कि वह सर्वदा स्थिर रहती है। यद्यपि उसके कुछ सभ्य प्रति दूसरे वर्ष बदलते रहते हैं तथापि सभ्योंसे वह कदापि रिक्त नहीं होती है। दो तिहाई सभ्य सदा ही उसमें विद्यमान रहते हैं। संसारके अन्य सभ्य देशोंकी अपेक्षा अमरीकन राष्ट्र सभामें सभ्योंकी संख्या बहुत कम है जिसका ज्ञान नीचेके ब्योरेसे हो सकता है:—

राष्ट्र	राष्ट्रसभाके सभ्योंकी संख्या
अमरीकन राष्ट्र सभा	९०
अंग्रेजी लार्ड सभा	६००
प्रुशियन राष्ट्र सभा	३००
फरांसीसी राष्ट्रसभा	३००
कनाडाकी "	८७

अस्ट्रेलियाकी राष्ट्रसभा	३६
जर्मन राष्ट्रसभा	५८

अमरीकन राष्ट्रसभाके सभ्योंकी संख्याका न्यून होना उसके लिये अच्छा ही है, क्योंकि इससे साम्राज्यका कार्य बहुत ही अच्छीतरहसे किया जा सकता है।

(ङ) स्विट्जरलैंगड:—स्विट्जरलण्डकी राष्ट्रसभामें पूर्णराष्ट्रके दो सभ्य और अर्द्धराष्ट्रका एक सभ्य होता है। स्विस् राष्ट्रसभाका आधार अमरीकन सीनेटपर है। अमरीकामें सीनेटकी शक्ति बहुत ही अधिक है परन्तु स्विट्जरलेंडमें इससे सर्वथा विपरीत बात है। स्विट्जलैंण्डमें राष्ट्रसभाका पहले जो आदर था उसका अब कुछ भी अंश नहीं बचा। इसका मुख्य कारण यह है कि वहां भिन्न भिन्न श्रेणी तथा दलोंके नेता प्रतिनिधि सभाका सभ्य होना ही अधिकतर पसन्द करते हैं। यह क्यों? यह इसी लिये कि राष्ट्रीय उपसमितिके सभ्य प्रायः प्रतिनिधि सभामेंसे ही निर्वाचित होते हैं और उसके कार्य्योंका निरीक्षण भी प्रतिनिधि सभा ही करती है। स्विस् राष्ट्रसभाके सभ्योंकी संख्या चौवालीस है। बाईस राष्ट्रोंके द्वारा इनका निर्वाचन होता है। कौनसा राष्ट्र कितने वर्षोंके लिये राष्ट्रसभामें प्रतिनिधि भेजे इसका यहां कोई नियम नहीं। यही कारण है कि कोई राष्ट्र चार सालके लिये और कोई एक सालके लिये ही अपने प्रतिनिधि भेजता है।

§९० *द्वितीय सभाका निर्माण।*

सभ्य राष्ट्रोंमें प्रथम सभाके निर्माण, निर्वाचन आदिमें जो

भेद है उसपर प्रकाश डाला जा चुका है। द्वितीय सभामें प्रायः सभी राष्ट्र समान हैं। यह इसी लिये कि प्रायः द्वितीय सभाका उद्भव सभी राष्ट्रोंमें स्वतंत्रताके भावोंसे हुआ है। निम्नलिखित बातोंमें सभी राष्ट्रोंकी द्वितीय सभाएं एक दूसरेके समान हैं।

(क) द्वितीय सभाके प्रतिनिधियोंके निर्वाचनमें संपूर्ण नागरिकोंका अधिकार है। सभी राष्ट्रोंकी यह नीति है निर्वाचनका अधिकार जहां तक विस्तृत किया जा सके किया जाय।

(ख) प्रायः सभी राष्ट्रोंमें आबादीके अनुसार ही द्वितीय सभाके प्रतिनिधियोंका निर्वाचन होता है। इस नियमका बाधक यदि कुछ हैं तो वह यही है कि कभी कभी स्थानीय राज्य का विभाग ही आधार मान लिया जाता है और उनकी आबादीके अनुसार प्रतिनिधियोंकी संख्याका विभाग कर दिया जाता है। आबादी प्रायः घटती बढ़ती रहती है इससे कभी कभी गड़ बड़ हो जाती है। साधारणतया प्रतिनिधि सभाओंके प्रतिनिधियोंकी संख्या आबादीके अनुसार ही विभक्त की जाती है।

(ग) प्रतिनिधियोंका चुनाव जिलेके टिकटोंकेद्वारा होता है। साधारण टिकटोंके द्वारा पहले चुनाव किया गया परन्तु इससे उपयुक्त फल न मिला। प्रतिनिधि सभाके सभ्यों-का चुनाव भी दलोंके अनुसार होने लगा। इसको दूर करने-के लिये प्रत्येक जिलेके पृथक पृथक टिकट बनाये गये।

(घ) प्रत्यक्षविधिपर ही प्रतिनिधि सभाके सभ्योंका चुनाव किया जाता है। आम तौरपर नागरिकोंका यह

विचार है कि वह जिसको चाहे सीधे ही सभ्य चुनें। इसमें अप्रत्यक्ष विधिका प्रयोग न हो अर्थात् निर्वाचक कुछ व्यक्तियोंको निर्वाचित करें और अन्तमें वह प्रतिनिधि सभाके सभ्योंको चुनें, यह किसी भी राष्ट्रको अभिमत नहीं। यही कारण है कि सभी राष्ट्रोंमें प्रतिनिधि सभाके सभ्योंका निर्वाचन प्रत्यक्ष विधिपर होता है।

(ङ) सभ्योंके निर्वाचनमें निर्वाचकोंकी बहुसंख्याका होना आवश्यक है।

ऊपर लिखित पांच बातोंमें प्रायः सभी राष्ट्रोंकी प्रतिनिधि-सभाएं समान हैं। भिन्न भिन्न देशोंमें उनका संगठन निम्न लिखित प्रकारका है।

(क) इंग्लैण्ड—इग्लैण्डकी प्रतिनिधि—सभाके सभ्योंकी संख्या स्थिर नहीं है। वह समय समयपर भिन्न भिन्न होती रही है। संवत् १९७१ (सन् १९१४) में उसके सभ्योंकी संख्या ६७० थी। सभ्योंका विभाग इंग्लैण्डमें इस प्रकार है:—

सभ्योंके चुनावके प्रदेश	सभ्योंकी संख्या
इंग्लिशका काउंटियां	२५३
इंग्लिश बरों	२३७
इंग्लिश महाविद्यालय	५
स्काच काउंटियां	३९
स्काच बरों	३१
स्काच महाविद्यालय	२
आयरिश काउंटियां	८५
आयरिश बरों	१६
आयरिश महाविद्यालय	२
	६७०

आंग्ल प्रतिनिधि सभाके सभ्योंका चुनाव पांच सालोंके लिये होता है। पन्द्रह हजारकी आबादीको प्रतिनिधि सभाका एक सभ्य चुननेका अधिकार है। इंग्लैण्डमें यह नियम नहीं है कि प्रत्येक जिला अपने ही जिलेके निवासीको सभ्यके तौरपर चुने। अंग्रेज जातिका यह विचार है कि साम्राज्यके किसी भागमें कोई क्यों न पैदा हो वह पार्लमेन्टका सभ्य चुना जा सकता है। पार्लमेन्टका कोई भी सभ्य इस्तीफा नहीं दे सकता। यदि वह किसी राज्य पदपर नियुक्त हो जाय तो उसका स्थान खाली समझा जाता है और उसके स्थानपर कोई दूसरा व्यक्ति चुन लिया जाता है।

इंग्लैण्डमें सभ्योंके लिये शिक्षा तथा संपत्तिके संबन्धकी कुछ भी बाधा नहीं है। यह होते हुए भी संपत्तिके बिना प्रतिनिधि सभाका सभ्य बनना कठिन है, क्योंकि वहां सभ्य बननेके लिये बहुत धन खर्च करना पड़ा है। यही कारण है कि दरिद्र पुरुष सभ्य बननेका यत्न नहीं करते। पार्लमेन्टके हर एक सभ्यका लड़ाईसे पहले प्रतिदिनका खर्च ५ पाउन्ड अर्थात् ७५ रुपयेके लगभग था। कुछ वर्षोंसे प्रतिनिधि सभाके सभ्योंको छः हजार रुपयोंकी वार्षिक वृत्ति मिलने लगी है।

पूर्वमें लिखा जा चुका है कि इंग्लैण्डमें प्रतिनिधि सभाके सभ्योंका समय पांच साल है। परन्तु अंग्रेजी शासन प्रणालीकी यह विशेषता है कि मंत्रि सभा राजाकी स्वीकृति लेकर पार्लमेन्टको चुनावके लिये प्रेरित कर सकती है। उसकी इस शक्तिका यह परिणाम है कि कोई भी आंग्ल प्रतिनिधि सभा अपने पूरे समय तक विद्यमान नहीं रही।

औसतसे इसका समय चार सालसे कम निकलता है। पिछली सदीमें सबसे लंबी पार्लमेन्टका समय ६ वर्ष एक मास तथा बारह दिन था।

(ख) फ्रांस—संवत् १९७१ (सन् १९१४) में फरांसीसी प्रतिनिधि सभाके सभ्योंकी संख्या ५९७ थी। फ्रान्स ३६२ मंडलोंमें विभक्त किया गया है और प्रत्येक मंडलको एक एक सभ्य भेजनेका अधिकार है। यदि एक मंडलकी आबादी एक लाखसे अधिक हो तो वह कई एक उपमण्डलोंमें विभक्त कर दिया जाता है। मंडलोंके अतिरिक्त प्रतिनिधि सभाके सभ्यों-मेंसे१० सभ्य उपनिवेशोंके और ६ सभ्य अल्जीयर्सके होते हैं। शुरूशुरूमें साधारण टिकटोंके द्वारा ही सभ्योंका निर्वाचन होता था। संवत् १९३९के बादसे मंडल या जिलेके टिकटोंका ही व्यवहार होने लगा। २१ वर्षकी आयुसे अधिक आयु वाले प्रत्येक फरांसीसीको प्रतिनिधि सभाका सभ्य चुननेका अधिकार है। परन्तु सभ्योंके लिये पचीस सालकी उमरका होना जरूरी है। फ्रान्समें कोई भी राज्याधिकारी या राज्य सेवक प्रतिनिधि सभाका सभ्य नहीं बन सकता। पांच सालके लिये ही सभ्य चुने जाते हैं।

फ्रान्सकी प्रतिनिधि सभामें अशान्ति तथा हुल्लड़शाही बहुत ही अधिक है। प्रधान भी इस हुल्लड़शाहीको दूर करनेमें प्रायः असमर्थ हो जाता है। इस हुल्लड़शाहीका कारण यह है कि सभ्य प्रायः आपसमें बातें करते हैं और जो संभाषण करता है वह देर तक अपने स्थानपर नहीं आता। वहां संभाषणका कोई समय नियत नहीं है। यदि प्रतिनिधि सभामें कोलाहल चरम सीमापर पहुंच जाय और किसी

तरीकेसे शान्त न हो तो प्रधान एक घंटेके लिये अधिवेशन बन्द कर देता है।

(ग) जर्मनी:—संवत् १९७१ में जर्मनीकी प्रतिनिधि सभा (रीस्टाग) के सभ्योंकी संख्या ३९७ थी। साम्राज्यके नियमोंके द्वारा नियत किये गये मंडलोंसे ही सभ्योंका निर्वाचन होता था। प्रत्येक मण्डलमें शुरू शुरूमें एक लाख मनुष्य थे। आजकल प्रत्येक सभ्यका औसत एक लाख साठ हजार है। प्रथम विभागके बाद लड़ाई तक उनका विभाग न हुआ। यही कारण है कि घनी आबादी-वाले मंडलोंके भी उतने ही सभ्य थे जितने कि विरल आबादी वाले मंडलोंके। लड़ाईसे पहिले बर्लिनकी आबादी पन्द्रह लाखके लगभग थी परन्तु उसके छ ही सभ्य प्रतिनिधि सभामें जाते थे। यह क्यों? यह इसी लिये कि जर्मन राज्यको उस बातका पूर्ण तौरपर निश्चय था कि बर्लिन समष्टिवादियोंका अड्डा है अतः उसकी ओरसे प्रतिनिधि सभामें समष्टिवादी या अति उदार विचारके व्यक्ति ही प्रतिनिधि-सभामें पहुंचेंगे। यदि बर्लिनको पन्द्रह सभ्य भेजनेका अधिकार मिल जाय तो प्रतिनिधि सभामें समष्टिवादियोंकी शक्ति बढ़ जायगी। भला विलियम कैसरको यह कब मंजूर था। लड़ाईके खतम होनेसे पूर्व कैसरको सिंहासन छोड़ना पड़ा। जिनकी शक्तिसे वह डरता था उन्होंने ही उसको अन्तमें अपने वशमें किया और पुराने स्वेच्छाचारका पूरा बदला निकाला।

(घ) अमरीका:—संवत् १९७१ (सन् १९१४) में अमरीकाकी प्रतिनिधि सभा (The House of Representatives) के

सभ्योंकी संख्या ४३५ थी। अमरीकाकी प्रतिनिधि सभाके सभ्य जनताकीओरसे निर्वाचित होते हैं। भिन्न भिन्न राष्ट्रोंको अपनी अपनी आबादीके अनुसार सभ्य भेजनेका अधिकार है। शुरू शुरूमें प्रतिनिधि सभाके सभ्य केवल ६५ थे। अमरीकाकी आबादी बहुत थोड़ी थी। आजकल अमरीकामें १७३९०५ आदमी पीछे एक सभ्य चुना जाता है। जिन जिन राष्ट्रोंकी १७३९०५ के ६½ गुणासे कुछ ही जन-संख्या ज्यादा है उन्हें जातीय सभाने ७ सभ्य भेजनेका अधिकार दिया है। और जिनकी आबादी १७३९०५ से कम भी है उन्हें भी १ प्रतिनिधि भेजनेका अधिकार प्राप्त हैं। अमरीकामें १० वर्षमें गणना की जाती है और उसी गणनाके अनुसार १० वर्षके लिये प्रत्येक राष्ट्रकी प्रतिनिधि भेजनेकी संख्या निश्चित कर दी जाती है। प्रतिनिधिसभाके सभ्योंका चुनाव १८९४, ९६, ९८ आदि युग्म वर्षोंमें ही होता है।

निर्वाचकोंके द्वारा जो व्यक्ति निर्वाचित हों उनमें निम्नलिखित गुणोंका होना आवश्यक है।

(१) पच्चीस वर्षसे न्यून आयु न हो।

(२) सात वर्षसे वह अमरीकाका नागरिक हो।

(३) निर्वाचित कालमें वह उसी राष्ट्रमें रहता हो जिसकी ओरसे वह निर्वाचित हो।

संवत् १९२३-२५ (१८६६-६८ई०) में पास की गयी शासनपद्धतिकी चौदहवीं धाराके अनुसार राष्ट्र इस बातके लिये प्रेरित किये गये हैं कि निर्वाचकोंका क्षेत्र यथासंभव विस्तृत रखें। प्रतिनिधियोंके चुनावमें अमरीकामें बहुत बार तीस हजार रुपये तक खर्च हो जाते हैं। शासनपद्धतिकी

धाराओंके प्रतिकूल होते हुए भी अमीर लोग प्रतिनिधियोंके निर्वाचनमें रुपयोंको पानीकी तरह बहाते हैं

§९१ दोनों सभाओंकी आपेक्षिक शक्ति ।

साधारणतया सिद्धान्तके तौरपर दोनों सभाओंकी शक्ति समान समझी जाती है। प्रत्येक सभा प्रस्ताव पेश कर सकती है और पास कर सकती है। संशोधन तथा राज्य नियम बननेके लिये प्रस्तावपर दोनों सभाओंकी स्वीकृति आवश्यक है। कुछ राष्ट्रोंमें प्रतिनिधि सभाओंके पास धन संबंधी शक्ति है और उसके द्वारा उनका महत्त्व प्रथम सभाकी अपेक्षा अधिक हो गया है। इंग्लैंडमें यह विशेषता बहुत ही प्रत्यक्ष है। चौदहवीं सदीमें इंग्लैंडमें प्रथम सभाके सभ्य राज्यकरसे मुक्त थे। राष्ट्रका खर्च जनताके प्रतिनिधियोंके ही सरपर था। जनताने इसीलिये राज्यकर तथा राज्य-व्ययका प्रबन्ध अपने हाथमें रख लिया। इंग्लैंडकी देखादेखी अन्य राष्ट्रोंने भी प्रतिनिधि सभाओंको आर्थिक शक्ति देनेका यत्न किया। आय तथा व्यय जैसे प्रश्नका निर्णय शीघ्र हो जाय और वह चिरकाल तक दोनों सभाओंमें न लटके इस उद्देश्यसे भी प्रतिनिधि सभाओंकी आर्थिक शक्ति बढ़ायी गयी थी। इंग्लैंडमें लार्ड-सभा आर्थिक प्रस्तावोंको न पेश कर सकती है और न प्रतिनिधि सभा द्वारा भेजे गये ऐसे प्रस्तावोंमें वह संशोधन ही कर सकती है। लड़ाईसे पहले प्रुशियामें यह बात न थी। वहां लार्ड-सभा आर्थिक प्रस्तावोंको पेश करनेकी शक्ति न रखते हुए भी उनको रद्द कर सकती थी। नीदरलैंडमें भी

यही बात थी। अमरीकामें सीनेट आर्थिक प्रस्तावोंको पेश करनेमें निःशक्त है। इसमें सन्देह भी नहीं है कि वह उन प्रस्तावोंका संशोधन कर सकती है और उनमें यहांतक काट छांट कर सकती है कि एक तरीकेसे उस संबंधमें उसकी शक्ति अपरिमित हो गयी है। स्विट्जर्लैंड तथा जर्मनीमें दोनों सभाओंकी शक्ति आर्थिक प्रस्तावोंके संबंधमें समान थी। आस्ट्रियामें यदि दोनों सभाओंका किसी आर्थिक प्रस्तावपर मत-भेद हो तो बहु-सम्मतिसे पास की गयी कमसे कम रकम प्रामाणिक समझी जाती थी।

सिद्धान्तमें दोनों सभाओंकी शक्ति समान है परन्तु कार्यमें दोनोंकी शक्ति भिन्न भिन्न है। स्वतन्त्रता समानता तथा भ्रातृभावके विचारोंके प्रचारसे प्रथम सभाकी शक्ति बहुत घट गयी। द्वितीय सभाकी शक्ति आजकल बहुत अधिक है। जनताकी सम्मतिका प्रकाशक वही समझी जाती है। फ्रांस, इटली, स्पेन तथा अन्य यूरोपीय राष्ट्रोंमें प्रथम सभाकी शक्ति बहुत ही कम है। इंगलैंडमें भी प्रतिनिधि सभाकी सम्मतिको लार्ड सभा चिरकाल तक नहीं रोक सकती। यदि जनता किसी एक बातको पास करनेपर कटिबद्ध हो जाय तो लार्डसभा कुछ भी नहीं कर सकती। जनताका प्रस्ताव नियम बन ही जाता है। दो सालके बीचमें यदि कोई प्रस्ताव लोकसभाके द्वारा तीन बार पास हो जाय तो वह राज्यनियमका रूप धारण कर लेता है। लार्डसभाका निषेध उस प्रस्तावको राज्यनियम बननेसे नहीं रोक सकता। जर्मनीमें लड़ाईसे पहले और अमरीकामें अब तक प्रथम सभाकी शक्ति बहुत अधिक है।

राज्यकर्मचारियोंकी नियुक्ति तथा सन्धियोंका करना अमरीकन सीनेटके ही हाथमें है। शुरू शुरूमें वही जनताकी प्रतिनिधि समझी जाती थी। यही कारण है कि अमरीकन प्रतिनिधि सभाकी अपेक्षा उसका महत्त्व ज्यादा है।

जिन राष्ट्रोंमें दोनों सभाओंकी शक्ति समान है वहाँ दोनों सभाओंके विवाद होनेपर राज्यकार्य रुक जानेका भय होता है। इससे बचनेके लिये उन राष्ट्रोंमें नये नये उपाय काममें लाये गये हैं। प्रायः मुख्य मुख्य विरोधीदल आपसमें झगड़ेको निपटा लेते हैं। यदि इसपर भी झगड़ा शान्त न हो तो दोनों सभाओंके प्रतिनिधियोंका कमीशन बैठाया जाता है और इस प्रकार झगड़ा तय किया जाता है। आस्ट्रेलियामें दोनों सभोओंकी शक्ति समान होनेसे यह बात प्रायः हो जाती है। ऐसी हालतमें गवर्नर दोनों सभाओंको बरखास्त कर देता है और उनके सभ्योंका नये सिरेसे निर्वाचन करता है। यदि इसपर भी मामला ज्योंका त्यों बना रहे और किसी तरीकेसे झगड़ा शान्त न हो तो दोनों सभाओंकी सम्मिलित बैठक बुलायी जाती हैं और बहुतसम्मतिके द्वारा प्रस्ताव पास करा दिया जाता है।

अमरीकामें भी बहुत बार ऐसे ही झमेले उठ खड़े होते हैं। दोनो सभाएं किसी एक बातपर जब तन जाती हैं तो दोनों सभाओंके तीन तीन प्रतिनिधि आपसमें उपसमितिके रूपमें बैठते हैं और आपसमें समझौता कर लेते हैं। यही कारण है कि अमरीकाको इस बातसे बहुत अधिक भय नहीं है।

§९२ अन्तरीय संगठन ।

नियामक सभाएं अपने संगठन संबंधी नियम स्वयं ही बनाती हैं । कहीं कहीं शासनपद्धतिकी धाराओंमें भी इस संबंधमें कुछ नियम दे दिये गये हैं । दृष्टान्तस्वरूप सभापतियोंका चुनाव सभाएं स्वयं ही कर लेती हैं ।। अमरीकामें सीनेटके मामलोंमें यह नियम है कि उसका सभापति राष्ट्रका उपप्रधान ही होगा । लड़ाईसे पहले जर्मनीमें चान्सलर ही बन्देसराथका सभापति होता था । इंग्लैण्डमें लार्ड सभाके मामलेमें लार्ड चान्सलरको यह सौभाग्य प्राप्त है । आमतौरपर द्वितीय सभाएं सभापतिके मामलेमें स्वतन्त्र हैं । अपने सभापतिका चुनाव वे आप ही करती हैं । सभ्योंके दोष तथा गुणका निरीक्षण भी नियामक सभाएं स्वयं ही करती हैं, यद्यपि इंग्लैण्डमें यह काम न्यायालयोंका ही है ।

अमरीकामें नियामक सभाके सभ्य निर्णायक या शासक विभागमें किसी भी पदपर काम नहीं कर सकते । इंग्लैण्ड तथा फ्रान्समें भी यही नियम प्रचलित है । इसके साथ ही साथ वहां खास खास राज्यपदोंके व्यक्ति इस नियमसे मुक्त भी किये गये हैं । लड़ाईसे पहले जर्मनीमें प्रतिनिधि सभाके सभ्य राजकीय सेवा कर सकते थे । अमरीकामें शासक विभागका मुखिया नियामकसभाओंमें नहीं जा सकता । इसके विपरीत इंग्लैण्ड, जर्मनी तथा फ्रान्समें मुख्य शासक तथा शासकमंडल नियामक सभाओंके नियमित रूपसे सभ्य होते हैं । इंग्लैण्ड तथा फ्रान्समें तो मुख्य शासक तथा शासकमंडल ही जनताके प्रधान नेता समझे जाते हैं ।

पूर्वमें ही लिखा जा चुका है कि अर्वाचीन राष्ट्रोंके

नियामक विभागका स्वरूप काफी बड़ा है। यही कारण है कि कम विभागके सिद्धान्तके द्वारा ही वहां काम किया जाता है। नियामक सभाएँ छोटी छोटी उपसमितियां बनाती हैं जो भिन्न भिन्न प्रस्तावोंका संशोधन करती हैं और उनको राज्यनियमके योग्य रूप देती हैं।

एक तरीकेसे नियमनिर्माणका काम इन उपसमितियोंके हाथमें है। यही कारण है कि इनका संगठन राष्ट्रीय शासन-पद्धतिमें महत्त्वपूर्ण समझा जाता है। अमरीकामें समितियों तथा उपसमितियोंके द्वारा ही प्रायः काम होता है। वहां सीनेट ही उनका निर्वाचन करती है। प्रतिनिधि सभासे संवद्ध समितियों तथा उपसमितियोंका निर्माण पुराने जमाने-में प्रवक्ता ही करता था, परन्तु आजकल प्रतिनिधि सभाने इस कार्यको अपने हाथमें ले लिया है। इंग्लैण्डमें सचिव-मंडल ही सब कुछ है। उसीको मुख्य समिति समझना चाहिये क्योंकि वही नियमनिर्माणका काम करता है। फ्रान्समें आय-व्यय तथा अर्थ-सम्बन्धी प्रस्तावों तथा मामलोंके निर्णयके लिये एक स्थिर समिति है जिसके सभ्योंका निर्वाचन एक सालके लिये दोनों सभाओंके द्वारा होता है। अन्य विषयके प्रस्तावोंके लिये प्रत्येक सभाके सभ्य लाटरी या गोलिकापातविधिसे भिन्न भिन्न समितियों तथा उपस-मितियोंमें विभक्त कर दिये जाते हैं। जर्मन वन्देस्राथने बहुतसी स्थिर समितियां बना रखी हैं जिनमेंसे कुछ सालभर लगातार काम करती रहती हैं। इनमेंसे भी दो समितियोंका निर्माण लड़ाईसे पहले सम्राट् करता था। शेष समितियोंके सभ्योंका निर्वाचन वन्देस्राथ ही करती थी। रीशटागकी

एक भी स्थिर समिति न थी। लाटरी या गोलीके द्वारा वह अपने आपको सात भागोंमें विभक्त कर लेती थी। प्रत्येक भाग प्रस्ताव तथा कार्यके अनुसार भिन्न भिन्न उपसमितियोंका निर्माण करता था और उनके सभ्योंका चुनाव करता था।

सभी राष्ट्रोंमें समितियोंका कार्यक्रम भिन्न भिन्न है। जर्मनीमें समितियां प्रस्तावोंके पुनः संशोधनमें बहुत भाग न लेती थीं। बहुत बार आवश्यकसे आवश्यक प्रस्ताव उनमें नहीं भेजे जाते थे। फ्रान्समें नियामक विभागकी शक्ति बहुत ही अधिक है। वहां नियमनिर्माणका काम एक साधारण काम नहीं समझा जाता। वहां समितियां प्रस्तावोंका संशोधन करती हैं और एक यही बात है जिससे उनकी शक्ति बहुत अधिक है। इस शक्तिको देखकर ही भिन्न भिन्न राजनीतिक दलके लोग समितियोंमें अपने सभ्योंको भेजनेका यत्न करते हैं और इस मामलेमें बहुत ही अधिक झगड़ते हैं। इंग्लैण्डमें सचिवमंडलके हाथमें नियमनिर्माण तथा प्रस्ताव पेश करनेका काम होनेसे समितियोंका कुछ भी महत्त्व नहीं है। इसके विपरीत अमरीकामें समितियोंका महत्त्व बहुत ही अधिक है।

सभ्योंके वेतनके मामलेमें भी बड़ा भेद है और साथ ही बहुत ही अधिक विवाद है। अमरीकामें शासनपद्धतिकी धाराओंमें और फ्रान्समें राज्यनियमोंमें तनखाहका उल्लेख है। संवत् १९६३ (१९०६) में जर्मन रीशटागने भी सभ्योंको थोड़ा सा धन तनखाहमें देना शुरू किया। इसी प्रकार संवत् १९६८ में एक राज्य निमय द्वारा इंग्लैंडमें लोकसभाके सभ्योंको तनखाह मिलने लगी।

सभ्योंको तनखाह मिलनी चाहिये या न मिलनी चाहिये, इसपर बहुत विवाद है। कुछ विद्वानोंका मत है कि मध्यम श्रेणीका मासिक वेतन सभ्योंको मिलना चाहिये। इससे पढ़े लिखे निर्धन लोग भी नियामक सभाके सभ्य बन सकेंगे और शासनपद्धतिको उत्कृष्ट रूप दे सकेंगे। इसके विपरीत कुछ व्यक्तियोंका विचार है कि नियामक सभाके सभ्योंको तनखाह मिलनेसे बिना पढ़े लिखे दरिद्र मनुष्य बेईमानी तथा छल कपटके द्वारा अपने आपको सभ्यके तौरपर निर्वाचित करालेंगे और शासनपद्धतिको दूषित कर देंगे। असली बात तो यह है कि दोष दोनोंमें ही है। यदि नियामक सभाके सभ्योंको तनखाह न मिले तो धनिकों तथा कुलीनोंके सिवाय उसका सभ्य कौन बनने लगा। यदि धनिकश्रेणीके लोग ही नियामक सभाके सभ्य बनें तो राज्यका पूंजी वादमें रंग जाना स्वाभाविक ही है। राज्योंकी सारी कर्मण्यता इसीमें रहेगी कि किसी न किसी तरीकेसे धनिकोंका स्वार्थ सिद्ध हो। यूरोपके राष्ट्रोंकी धन-तृष्णा, पूंजी तथा संपत्तिके पीछे दूसरी जातियोंको पराधीन बनाना, और व्यवसाय व्यापारकी वृद्धिके भयंकरसे भयंकर युद्धोंको जन्म देना किसी अंशतक इस बातके साथ जुड़ा हुआ है। जबसे यूरोपमें साम्यवादका प्रचार हुआ और दरिद्र श्रेणीके लोगोंने अपने उद्धारके लिये प्रबल प्रयत्न किया तभीसे नियामक सभाके सभ्योंको तनखाह दी जाने लगी। निस्सन्देह तनखाहके लोभसे दरिद्र लोग अपने आपको सभ्यके तौरपर चुनवानेका यत्न कर सकते हैं, परन्तु कार्य्य जगत्‌में यह संभव नहीं। क्योंकि निर्वाचनमें बहुत ही अधिक धन व्यय करना पड़ता

है। सभ्योंकी जो तनखाहें हैं उनसे प्रतिदिनका खर्च नहीं चल सकता। अतः तनखाह न देनेका दोष बहुत प्रबल दोष नहीं है।

प्रायः नियामक सभाके सभ्य अधिवेशनके कालमें जेल नहीं भेजे जा सकते और न वे कैद ही किये जा सकते हैं। कुछ देशोंमें इसके विपरीत भी नियम है। दृष्टान्त स्वरूप इंग्लैण्डमें बहुत बड़ा राज्यापराध करनेवाला सभ्य अधिवेशनके कालमें भी कैद किया जा सकता है। अमरीकामें भी यही बात है। फ्रान्स तथा जर्मनीमें सभाकी अनुमतिपर सभ्योंको शासकगण कैद कर सकते हैं। इस नियमसे बहुत बार अपराधी सभ्य कैदसे बच जाते हैं और भिन्न भिन्न विरोधी दलके कोपमें पड़कर निरपराधी सभ्य जेल भेज दिये जाते हैं। विवादके समय सभ्य जो चाहें नियामक सभामें कह सकते हैं। उनको संभाषणकी पूरी स्वतन्त्रता है। परन्तु जर्मनी तथा फ्रान्समें यह बात नहीं है। कोई भी बाहरका व्यक्ति नियामक सभाके सभ्योंका अपमान नहीं कर सकता है।

§ ९३ कार्यक्रम।

नियामक विभाग अपने संगठनके सदृश ही अपना कार्यक्रम भी स्वयं ही निश्चित करता है। सभी राष्ट्रोंमें कार्यक्रमके मामलेमें बहुत कुछ समानता है। यदि कहीं पर भेद है तो वह एकमात्र अधिवेशन तथा विसर्जनके मामलेमें ही है।

अमरीकामें कांग्रेसके लिये यह नियम है कि वर्षमें उसका

एक अधिवेशन अवश्य ही हो। राष्ट्रका प्रधान यदि आवश्यक समझे तो उसके विशेष अधिवेशन भी कर सकता है। क्षणिक या सामयिक विसर्ज्जन (adjournment) के लिये दोनों सभाओंकी सम्मति आवश्यक है। यदि दोनोंमें मतभेद हो और कितने समयके लिये अधिवेशन विसर्जित हो, इस पर भयंकर झगड़ा हो तो शासक विभागका निर्णय ही प्रामाणिक समझा जायगा। प्रत्येक सभा तीन दिनके लिये पृथक् पृथक् तौर पर विसर्जित हो सकती है। यदि शासक विभाग स्वयं सभाओंका विसर्ज्जन करना चाहे तो वह नहीं कर सकता।

इंग्लैंडमें यह नियम है कि तीन वर्षोंमें पार्लमेन्टका एक अधिवेशन अवश्य ही हो। आजकल राष्ट्रीय आय-व्यय एक वर्षके लिये ही पास किया जाता है इससे पार्लमेन्टका वार्षिक अधिवेशन आवश्यक हो गया। महामन्त्रीकी इच्छापर सम्राट् पार्लमेन्टका अधिवेशन करता है। विसर्जनके मामलेमें दोनों सभाएं स्वतन्त्र हैं। कुछ समयके लिये सभ्योंकी अनुमति लेकर वे स्वयं विसर्जित हो सकती हैं। पार्लमेन्टके सभ्योंका निर्वाचन पांच सालोंके लिये होता है। अतः पांच सालके बाद सभ्योंका पुनर्निर्वाचन आवश्यक होता है। परन्तु सम्राट्की आज्ञापर प्रायः पुनर्निर्वाचन पांच सालके बीचमें भी हो जाता है। यह घटना तभी होती है जब कि पार्लमेन्टके सभ्य सचिव मंडलका साथ नहीं देते हैं और बहुमतसे उसके विरुद्ध सम्मति देते हैं। उस कार्य्यमें हेतु यह दिया जाता है कि कदाचित् जनता सचिवमंडलके मतके अनुकूल हो। परन्तु पुनर्निर्वाचनपर भी जब सचिव-

मंडलका प्रस्ताव पास नहीं होता तो वह इस्तीफा दे देता है और विरोधी दलके हाथमें शासनकी बागडोर चली जाती है।

लड़ाईसे पहले जर्मनीमें सम्राट्की शक्ति बहुत ही अधिक थी। वह नियामक सभाओंको स्वेच्छानुसार आमन्त्रित तथा विसर्जित कर सकता था। इस अपूर्व शक्तिका दुरुपयोग कर वह कहीं प्रतिनिधितन्त्र शासनका अन्त ही न कर दे, इस उद्देश्यसे रीशटागका वार्षिक अधिवेशन अनिवार्य कर दिया गया। यदि रीशटागको पुनर्निर्वाचनके लिये प्रेरित किया गया तो यह काम साठ दिनोंमें और नयी सभाका पहला अधिवेशन नब्वे दिनोंके बीचमें अवश्य ही हो जाना चाहिये। यहां पर ही बस न था। रीशटागका पुनर्निर्वाचनके लिये सम्राट् तब तक प्रेरित नहीं कर सकता जब तक वह राष्ट्र सभा या प्रथम सभाकी स्वीकृति न ले ले। राष्ट्र सभाके एक तिहाई सभ्य यदि प्रथम सभाका अधिवेशन आमंत्रित करें तो उसका अधिवेशन जरूरी हो जाता है।

फ्रान्समें नियामक सभाओंका वार्षिक अधिवेशन आवश्यक है। पांच महीनों तक उनको अपनी बैठकें करनी पड़ती हैं। प्रत्येक सभाका बहुमत यदि विशेष अधिवेशनके पक्षमें हो तो प्रधानको विशेष अधिवेशन करना पड़ता है। कुछ समयके लिये प्रत्येक सभा विसर्जित हो सकती है। परन्तु दोनों ही सभाओंके अधिवेशनका सत्र एक समयमें ही खतम होना चाहिये। प्रधान नियामक सभाका विसर्जन एक माससे अधिक समयके लिये नहीं कर सकता और एक समय एक ही बार वह विसर्जन कर सकता है।

सीनेटकी स्वीकृति लेकर सचिव मंडलके द्वारा फ्रान्सका प्रधान नियामक सभाको नये निर्वाचनके लिये प्रेरित कर सकता है। एक तरीकेसे इस कार्यक्रममें दोनों सभाओंकी अनुमति प्रधानको लेनी पड़ती है।

जर्मन बन्देसराथको छोड़ कर सभी राष्ट्रोंमें नियामक सभाओंका कार्यक्रम प्रकाशित होता रहता है। जर्मन बन्देसराथकी कार्यवाही गुप्त रखी जाती है। उसके सभ्य अपने निर्वाचकोंके मतको ही सभामें प्रकट करते हैं। वे अपनी बुद्धिसे कुछ भी नहीं कह सकते हैं। साधारणतया सभी राष्ट्रोंमें नियामक सभाके सभ्य अपने निर्वाचकोंकी इच्छाओं तथा स्वार्थोंका ख्याल रखते हैं परन्तु भिन्न भिन्न प्रस्तावों पर अपनी बुद्धिके अनुसार ही वे सम्मति देते हैं।

जर्मनीमें रीशटागका और अमरीकामें दोनों सभाओंका कोरम (अल्पतम उपस्थिति संख्या) राज्यनियम द्वारा नियत है। कितने सभ्योंके उपस्थित होनेपर कार्य शुरू कर दिया जाय यह दोनों ही राष्ट्रोंमें निश्चित है। अन्य राष्ट्रोंमें कोरम या सभ्योंकी उपस्थितिका मामला नियामक सभाओंके ही अधीन है। वह जितना कोरम उचित समझें पास करें।

फ्रान्स तथा अमरीकाकी दोनों सभाओंमें और जर्मन रीशटागमें अधिवेशन प्रारम्भ करनेके लिये सभ्योंकी बहु-संख्याका होना आवश्यक है। इंग्लैण्डके सचिवमण्डलमें कोरमके लिये बहु संख्या संबन्धी कोई भी नियम नहीं है। इसका मुख्य कारण यह है कि आंग्ल सचिव-मंडल जनताके बहुमतसे चुना जाता है और स्वयं राज्यनियम बनाकर पार्लमेन्टसे ही राज्यनियम पास कराता है। यही कारण है

कि लार्ड सभाके तीन सभ्य तथा लोकसभाके चालीस सभ्य प्रत्येक प्रकारके कार्यको प्रारम्भ कर सकते हैं। जर्मनके बन्देस्राथका स्वरूप भी ऐसा है कि उसमें कोरमके लिये बहुसंख्याका नियम नहीं रखा गया। परन्तु इसमें एक खतरा था। जर्मन साम्राज्यके अंगभूत राष्ट्र यदि आपसमें मिलकर राष्ट्रसभामें सभ्य न भेजें तो जर्मनीकी शासनपद्धति चकनाचूर हो जाय। साम्राज्यका कोई भी काम न हो सके। इसी उद्देश्यसे वहां यह नियम बना दिया गया है कि चान्सलर या उसके स्थानापन्न राष्ट्रसभाके अधिवेशनको कर सकते हैं और उसमें जो चाहे पास कर सकते हैं।

सभी नियामक सभाओंका अपना अपना कार्यक्रम है। जल्दबाजी तथा शरारतको रोकना ही कार्यक्रमका मुख्य उद्देश्य है। देरी, झगड़ा तथा गड़बड़ किसी भी नियामकसभाको पसन्द नहीं है। इन्हीं सब बातोंको सामने रखकर प्रत्येक राष्ट्रमें नियामक सभाओंके कार्यक्रम नियत किये गये हैं। विवाद, सम्मतिका गिनना, उपस्थिति तथा अधिवेशनका प्रारम्भ इत्यादि बातोंके संबन्धमें सभी नियामक सभाओंके विचित्र विचित्र नियम हैं। दृष्टान्तस्वरूप विवादको ही लीजिये। कौन संभाषण करे, कितने समय तक संभाषण करे, अनर्गल संभाषण कैसे रोका जाय, विवादको प्रतिपाद्य विषयपर कैसे केन्द्रित किया जाय, आदि अनेक बातें हैं जिनके लिये यदि कोई नियम न हो तो राज्यनियमोंका बनना सालोंका किस्सा बन जाय।

राज्यनियमोंके बनानेके भिन्न भिन्न तरीके हैं। कई देशोंमें राजा तथा सम्राट् अपने सचिव मंडलके द्वारा और

कभी कभी अपने शासक विभागके द्वारा भिन्न भिन्न प्रस्तावों-को नियामक सभाओं में पेश करवाते हैं और पास करवाते हैं। प्रतिनिधितन्त्र पार्लमेन्टरी राष्ट्रोंमें प्रायः सचिव-मंडल ही प्रस्तावोंको नियामक सभाओंमें पेश करता है। बहुधा समितियां तथा कमीशन भी बैठाये जाते हैं जो विशेष विशेष विषयोंपर अपनी संमति देकर उनको नियमबद्ध करा देते हैं। भारतमें मुद्रा समिति, रौलट समिति तथा हंटर समिति आदि अनेक समितियां राज्य-नियम बनवानेमें भाग ले चुकी हैं। मैक्सिकोमें राष्ट्रसंघ-का कोई भी राष्ट्र नियामक सभाओंमें अपना प्रस्ताव पेश कर सकता है। बहुत स्थानोंमें नागरिक तथा भिन्न भिन्न संस्थाएं प्रार्थना भेजकर खास प्रकारके नियमोंको बनवा देती हैं। स्विटजलर्डमें तो जन-सम्मतिके द्वारा ही राजनीतिका निश्चय होता है और राज्यनियम बनते हैं।

नियम निर्माणका कार्य्यक्रम प्रायः सभी राष्ट्रोंमें समान है। एक एक प्रस्ताव नियामक सभामें कई बार पढ़ा जाता है और भिन्न भिन्न उपसमितियां राज्यनियम बननेसे पूर्व उसका रूप सुधारती हैं और उसपर गंभीर तौरपर विचार करती हैं। उपस्थिति होनेपर भी कोई प्रस्ताव तब तक राज्यनियम नहीं बन सकता जबतक कि बहुसंख्या उसको स्वीकृत न करे।

बन्देसाथमें प्रुशियाकी अनुमतिके विना जल-थल सेना संबंधी तथा राष्ट्रीय आय-व्यय संबंधी प्रस्ताव नहीं पास हो सकते। जिस राष्ट्रके संबंधमें हो, जो प्रस्ताव हो, वह तबतक राज्यनियम नहीं बन सकता जबतक कि वह

राष्ट्र अपनी स्वीकृति न दे दे। फरांसीसी सीनेटकी बहुसंख्या ही किसी प्रस्तावको राज्य नियम बना सकती है।

प्रस्ताव-निषेधकी शक्ति भी भिन्न भिन्न राष्ट्रों के शासकों को प्राप्त हैं। अमरीकाका प्रधान किसी भी प्रस्तावका निषेध कर सकता है। परन्तु प्रस्ताव यदि नियामक सभाके दो तिहाई सभ्यों के द्वारा पास कर दिया जाय तो उसके निषेधका कुछ भी असर नहीं होता। वह प्रस्ताव राज्यनियम बन जाता है। फ्रांसमें प्रधान यदि किसी भी प्रस्तावका निषेध करे तो नियामक सभामें वह फिरसे पेश किया जाता है। इसपर भी यदि वहां फिर पास हो जाय तो वह राज्यनियमका रूप धारण कर लेता है। इंग्लैंड में प्रस्ताव निषेधकी शक्ति सम्राट्के पास है परन्तु उसने उसका प्रयोग चिरकालसे नहीं किया। लड़ाईसे पहले जर्मन सम्राट्को प्रस्ताव निषेधका अधिकार न था। परन्तु वह अपने नियुक्त संघों के द्वारा नियामक सभाओं को प्रभावित कर सकता था और प्रायः इष्ट प्रस्तावोंको पास करा भी लेता था।

§९४. *नियामक विभागकी स्थिति।*

भिन्न भिन्न राष्ट्रों में नियामक विभागकी स्थिति भिन्न भिन्न है। राजनीति शास्त्रज्ञोंने इस मामलेमें निम्न लिखित तीन भेद किये हैं—

(क) बहुधा स्वेच्छाचारी राजा तथा सम्राट् अपने मंत्रियों के द्वारा अपने प्रस्तावों को नियामक सभाओं से पास करा लेते हैं। बेचारी नियामक सभाएं इच्छा न होते हुए भी सम्राट्की इच्छाको पूरा कर देती हैं।

और वे करें भी तो क्या करें। सम्राट्की शक्ति तथा स्वेछाचारको रोकनेमें यदि वे सर्वथा ही असमर्थ हों तो उनके पास इसके सिवाय और कोई उपाय ही क्या है। जिनको कुछ साहस हुआ उन्होंने बहुत किया तो यह किया कि अपनी अनिच्छा या अनुमति रजिस्टरमें लिखा दी। आस्ट्रिया तथा जर्मन साम्राज्यमें नियामक सभाओंकी यही स्थिति थी। रूसमें तो नियामक सभाकी कुछ भी शक्ति नहीं थी। आज कल भारतकी भी यही हालत है। भारत सरकारसे युद्धकर और उसको युद्धमें पराजित कर यदि जनता नियामक शक्ति प्राप्त करती तो निर्भय होकर काम कर सकती। परन्तु जो चीज़ दाताके बहुत सी प्रार्थनाओंके करने पर दी हो उसके छिननेका सदा ही खतरा बना रहता है। कल्पना करो कि भारत सरकार नियामक सभाओंको तोड़ दे तो जनता क्या करे? जब तक जनता अपने आपको शक्तिशाली न समझे तबतक शासकों की इच्छाओंके सामने उसको सर झुकाना ही पड़ता है। इधर उधर मूंड हिलानेपर भी कोल्हूके बैलको कोल्हूका चक्कर करना ही पड़ता है। यही नियामक सभाके सभ्योंका हाल है। स्वेच्छाचारी शासकोंको दबानेमें असमर्थ नियामक सभाके सभ्य लाख सिर पटकें उनको अन्तमें वही बात करनी पड़ती है जो शासक चाहते हैं। परन्तु यह हालत देरतक नहीं चल सकती। चाहे जनता निःशस्त्र हो और चाहे वह सशस्त्र हो-यदि उसमें स्वतन्त्रताके भाव पैदा हो गये हैं तो किसी न किसी समयमें शासकोंको उसके सामने सर झुकाना ही पड़ेगा। यदि शक्ति प्राप्तिके अनेक प्रकार हैं तो शक्तिभंगके भी कम

उपाय नहीं हैं। रूसमें लड़ाईके बीचमें ही जारको पुराने स्वेच्छाचारका बदला मिला और जर्मन सम्राट् कैसरने अपनी करनीका फल पाया। एशियाके सभी प्रदेशोंमें स्वतन्त्रताकी आग भभक रही है। नये नये तरीकोंसे शासक परेशान किये जा रहे हैं। शासक लोग भी अपनी पुरानी उद्दंडता तथा स्वेच्छाचारको छोड़नेके लिये तैयार नहीं हैं; और यही कारण है कि स्वतन्त्रताप्रिय निर्भय लोगोंको जेलोंमें ठूंस रहे हैं। ये सब घटनायें जो कुछ सूचित कर रही हैं वह यही है कि धीरे धीरे स्वेच्छाचारी राज्योंमें भी जनताका प्रभुत्व बढ़ता ही जायगा तथा नियम निर्माणमें शासकोंकी शक्ति दिन पर दिन कम होती जायगी।

(ख) बहुतसे राष्ट्रोंमें दोनों सभाओं तथा शासकोंकी शक्ति समान है। ऐसे राष्ट्रोंमें भिन्न भिन्न दलही नियम निर्माणके कामको करते हैं। यदि शासक तथा नियामक एक दूसरेके साथ संमिलित होकर काम करें तो ऐसे राष्ट्रोंका काम बहुत अच्छी तौरपर चलता है। यदि यह बात न हो तो उलझन बहुत ही अधिक बढ़ जाती है। बहुधा नियम-निर्माणका काम रुक जाता है और भिन्न भिन्न पञ्चायतोंके द्वारा ही समझौता करना पड़ता है। अमरीकामें प्रायः यही बात होती है।

(ग) यूरोप तथा पातालमें ऐसे भी राष्ट्र विद्यमान हैं जिनमें नियामक सभाओंकी बहु संख्याका प्रतिनिधि स्वरूप सचिवमंडल नियम निर्माणके कामको करता है। इससे नियामक सभाओं तकका शासक विभागके साथ कुछ भी विरोध नहीं होता। शासक दल जो प्रस्ताव चाहता है

पास कराता है। यदि नियामक सभा का प्रबल दल उसका साथ न दे तो सचिव-मंडल इस्तीफा दे देता है और प्रबल दल उसका स्थान ले लेता है। इस प्रकार नियामक सभाका विरोध नष्ट हो जाता है और वह जो कुछ चाहती है वही पास होता है। इंग्लंड, इटली, फ्रांस तथा यूरोपीय राष्ट्रोंमें यही बात है। इन राष्ट्रोंमें शासकविभागके मुखिया नियामक विभागके भी सभ्य हैं। और इस प्रकार दोनों विभाग एक दूसरेके साथ मिलकर काम करते हैं।

राजनीति शास्त्रज्ञ नियामक विभागोंके आजकल निम्न लिखित कर्तव्य समझते हैं।

(१) परिस्थितिके अनुसार नियमनिर्माण—नियामक विभागोंका यह कर्तव्य है कि समाजकी परिस्थितिके अनुसार नियम बनावें। यदि पुराने नियम समाजकी उन्नतिमें बाधक हों तो उनको दूर करें तथा जिन नियमोंकी जरूरत हो उनको प्रचलित करें।

(२) आर्थिक नियन्त्रण—नियामक विभागका दूसरा कर्तव्य यह है कि वह राष्ट्रके आय व्ययका प्रबन्ध करे। कहाँ कहांसे राज्यकर प्राप्त किया जाय, किन किन स्थानोंको राज्यकरसे मुक्त किया जाय और प्राप्त धनका व्यय किस प्रकार किया जाय इस बातका निर्णय करना नियामक विभागकाही काम है।

(३) अन्तर्राष्ट्रीयसंबन्ध—आजकल लड़ाइयोंका खर्चा बहुत ही अधिक बढ़ गया है। विना धनके विजय नहीं मिलती। यह पूर्वही लिखा जा चुका है कि आर्थिक शक्ति अर्वाचीन नियामक विभागोंके पासही है। यही कारण है कि दिन पर

दिन युद्ध, सन्धि तथा अन्य अन्तर्राष्ट्रीय मामलोंमें उसका हस्तक्षेप बढ़ता जाता है। यदि यही घटना चिरकालतक होती रही तो बहुत संभव है कि विदेशी नीतिके मामलोंमें शासकविभाग पूरी तौरपर नियामक विभागके अधीन हो जाय।

(४) अन्य शक्तियां—नियामक विभाग नियम संबन्धी कामों के सदृश ही अन्यकाम भी करते हैं। निर्वाचनके झगड़ोंका और दोसारोपणका निर्णय करते समय वे निर्णायक शक्तिको काममें लाते हैं। राज्य सेवकोंको नियुक्त करते समय उनके कार्य तथा अधिकार शासन तथा प्रबन्ध-क्षेत्रमें पहुंच जाते हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि नियामक सभायें नियामक शक्तिके साथ कभी कभी निर्णायक तथा शासक शक्तिको भी प्रयोग करती हैं।

आजकल समाजका स्वरूप पेचीदा होगया है। वाष्प-यानों तथा वाष्पपोतोंके प्रचारसे और डाक तथा तारसे संसारके राष्ट्रोंका पारस्परिक संम्बन्ध घनिष्ट होगया है। स्थानीय बाजार तथा बैंक, राष्ट्रीय व्यापार तथा व्यवसाय, मुद्राप्रणाली तथा विनिमयकी दर आदि बातें बहुत ही उलझनोंसे परिपूर्ण हैं। उनकी समस्याओंको समझनेके लिये नियामक विभागके सभ्योंका भिन्न शास्त्रवेत्ताओंसे सहारा लेना आवश्यक होगया है। यही कारण है कि समितियों तथा उपसमितियोंका महत्व दिन पर दिन बढ़ता जाता है। नियामक सभायें इन्हीं समितियोंकी संमतिके परवश हो रही हैं। समष्टिवादियोंने एक नया ही आन्दोलन खड़ा कर दिया है। उनके विचारमें वर्त्तमान नियामक सभायें जन-

ताकी प्रतिनिधि नहीं हैं। निर्वाचकोंके द्वारा भिन्न भिन्न लोग अपने आपको चुनवा लेते हैं और चुन जानेके बाद उनके स्वार्थों तथा हितोंका तनिकसा भी ख्याल नहीं करते हैं। यूरोपमें पूंजीवाद तथा धनियोंका महत्व भी इसीलिये है। उचित तो यह है कि नियामक सभाके सभ्य पूर्ण तौरपर जनताके प्रतिनिधि हों। वे निर्वाचकोंके मतको ही पुष्ट करें। स्विट्जलैंडमें नियामक जनसंमति द्वारा नियामक विभागकी शक्ति बहुत ही कम कर दी गयी है। यदि यूरोपमें भी इसका प्रचार हो जाय तो नियामक विभागोंकी पूर्वकालीन शक्ति तथा प्रतिष्ठा लुप्त हो जाय। कठिनाई जो कुछ है वह यह है कि बड़े राष्ट्रोंमें इसका प्रचार सफलतासे नहीं हो सकता। महायुद्धके बाद रूसमें बोल्शेवी शासन-पद्धति प्रचलित हो गयी। इससे वहां नियामक सभाका रूपही बदल गया। छोटे गावोंने एक राष्ट्रका रूप धारण कर लिया और उनमें पञ्चायती शासन प्रचलित होगया। रूसमें निर्वाचकोंको यह अधिकार है कि वे अपने निर्वाचित व्यक्तिको जब चाहें नियामक सभासे हटावें और उसके स्थानपर किसी दूसरे व्यक्तिको भेज दें। अभीतक रूसकी शासनपद्धति बाल्यावस्थामें है। उसके गुणदोषपर कुछ भी प्रकाश नहीं डाला जा सकता। परन्तु इसमें सन्देह भी नहीं है कि नियामक सभाओंका भविष्य उज्ज्वल नहीं मालूम पड़ता। संसारके राजनीतिक परिवर्त्तनोंको सामने रखते हुए यही कहना पड़ता है समय दूर नहीं जब कि नियामक सभायें अपने उच्चपदसे गिर जायं और उनका स्थान कोई दूसरी संस्था ले ले।

तीसरा परिच्छेद ।

शासक विभाग

§६५ *शासक विभागका स्वरूप तथा विकास*

राष्ट्रके नियमोंका जो लोग प्रचार करते हैं वेही शासक विभागमें संमिलित किये जाते हैं। शासक विभागमें दो प्रकारके मनुष्य होते हैं। एकको मुख्यांश और दूसरेको गौणांश का नाम दिया जाता है। शासक विभागके मुख्यांश वही लोग हैं जो कि शासनकी बागडोर अपने हाथोंमें रखते हैं। अमरीकाका प्रधान और इंग्लैण्डका सचिव मंडल इसीका ज्वलन्त उदाहरण है। पुलिस, डाक, तार आदि अनेक विभागोंमें काम करने वाले व्यक्तियोंको शासक विभागका गौणांश समझना चाहिये। यद्यपि यही लोग वस्तुतः शासन करते हैं तो भी शासकशक्तिका मुख्यश्रोत इनके पास न होनेसे ये गौणांश ही समझे जाते हैं। इसपरिच्छेदमें शासक शब्दका व्यवहार प्रायः मुख्य अर्थमें ही होगा।

अर्वाचीन शासन-व्यवस्थामें नियामकोंकी संख्या बहुत ही अधिक होती है, और शासकोंकी संख्या बहुत ही कम। यह इसीलिये कि शासनका कार्य तबतक सुव्यवस्थित रूप से नहीं हो सकता जबतक कि शासकोंका उद्देश्य एक न हो और निर्णय की गयी बातको वे एक दम कार्य में परिणत न करसकें। शासकविभागमें समान अधिकार वाले

व्यक्तियोंकी संख्या यदि अधिक हो तो यही बात संभव नहीं। सम्राट् नैपोलियन कहा करता था कि दो बुद्धिमान् सेनापतियों की अपेक्षा एक मूर्ख सेनापति अच्छा। यह इसीलिये कि दो बुद्धिमान् किसी एक बातपर मुश्किलसे सहमत होते हैं जब कि एक व्यक्ति जो चाहे कर सकता है। शासकका कार्य-प्रचलित नियमोंका संचालन है न कि नियमोंका निर्माण। संचालनके कार्यके लिये आवश्यक है कि बहुत मनुष्य न हों।

प्रचलित शासन—पद्धतियोंके अध्ययनसे यह बात स्पष्ट है कि सभी राष्ट्रोंमें शासक शक्तिका मुख्य श्रोत प्रायः एकही व्यक्ति होता है। जहां कहीं यह बात नहीं वहां भी शासक-की संख्या बहुत अधिक नहीं। इंग्लेण्डमें पन्द्रह बीस मनुष्यों का सचिवमंडल शासनका काम करता है। अमरीकामें इससे विपरीत राष्ट्रका प्रधान ही मुख्य शासक है। स्थलसेना तथा नौ सेनामें मुख्य सेनापति भी वही होता है। इसी एक बातके कारण युद्धके दिनोंमें उसकी शक्ति अपरिमित सीमातक बढ़जाती है *।

इंग्लैण्डमें शासनकी बागडोर सचिवमंडलके पास है। बहुसंख्याकी संमतिसे ही इंग्लैण्डमें शासनका काम होता है। इससे स्वेच्छाचार तथा अत्याचारकी कमी होती है और लोगोंकी स्वतन्त्रता सुरक्षित रहती है। लड़ाई आदि भयंकर समयमें शासक विभागमें मतभेद हो जानेपर कभी कभी राष्ट्रके नाशकी भी संभावना हो जाती है। मतभेदसे बचनेके लिए ही प्रायः भिन्न भिन्न विभाग भिन्न भिन्न व्यक्तियों-

* देखो, जे० डबल्यू० बर्गेस लिखित साइन्स एण्ड कांस्टिट्यूशनल ला भाग २। विभाग ३। परि. ४।

को सुपुर्द कर दिये जाते हैं और इस प्रकार सचिवमंडल अपना काम सुगमतासे ही कर लेता है । संवत १८५० (सन् १७९३-९४) की फ्रांसीसी राज्यक्रान्तिके समय राष्ट्र संरक्षण समिति (कमिटी आफ पब्लिक सेफ्टी) ने अपने ग्यारह सभ्योंको राष्ट्रके भिन्न भिन्न विभाग सुपुर्दकर अपना काम चलाया *

स्विट्ज़लैण्डका शासन-व्यवस्था सभी राष्ट्रोंसे भिन्न है । बन्देस्राथ नामक सात सभ्योंकी समिति ही स्विटज़लैण्ड-में शासनका काम करती है । इस समितिका प्रत्येक सभ्य केवल तीन वर्षोंके लिये ही चुना जाता है और यह काम भी जनताके हाथमें न होकर दोनों ही नियामक सभाओंकी संमिलित बैठकके हाथमें है । बन्देस्राथका प्रत्येक सभ्य एक एक सालके लिये सभापतिके पदको ग्रहण करता है । उसकी शक्ति अन्य सभ्योंसे कुछ भी भिन्न नहीं होती । प्रत्येक सभ्य राष्ट्रके सात विभागोंमेंसे एक एक विभागका प्रबन्ध करता है । नियामक सभाएं ही स्विट्ज़लैण्डमें राष्ट्रकी नीतिका निर्णय करती हैं । यही कारण है कि बन्देस्राथके सभ्य स्वेच्छाचारी नहीं होते हैं और एक ही पदपर चिरकाल तक रहनेके कारण शासनका काम भी उत्तम विधिपर करते हैं ।

शासक विभागका विकास प्रचीन राजाओं तथा राज सभाओंसे माना जाता है । अति प्राचीन कालमें राजा अमात्यों के द्वारा और कभी कभी राजसभाके मुख्य मुख्य सभ्योंके द्वारा ही शासनका काम करता था । धीरे धीरे शासनका क्रम बदलने लगा । यूरोपमें सबसे पहले धर्म विभाग शासक

* देखो, मासंस्टीफन लिखित 'दि फ्रेंच रेवोल्यूशन । भाग २ ।

विभागकी शक्तिसे पृथक् हो गया। समय आया जब कि निर्णायक विभाग भी शासक विभागसे जुदा होगया। इसके बाद राजसभा एकमात्र नियामक सभा ही रहगयी। नियम निर्माणमें स्वेच्छचारको रोकनेके लिये प्रयत्न किया गया। इसी प्रयत्नका यह फल है कि यूरोपमें नियामक सभाओंके सभ्य प्रायः जनताके द्वारा ही निर्वाचित होते हैं।

महाशय डीलेने ठीक लिखा है † कि "प्राचीन शासक विभागकी शक्ति शनैः शनैः भिन्न भिन्न होती गयी और चर्च, न्यायाधीश, नियामक सभा तथा निर्वाचक दल क्रमशः शक्तिशाली होते गए। आजकल भी राष्ट्रकी शक्ति शासक विभागोंमें केन्द्रित है और उसके अंत-विभागोंमें पृथक् पृथक् बंटगयी है। भिन्न भिन्न राष्ट्रोंमें इन विभागोंके भिन्न भिन्न नाम हैं। साधारणतया, लड़ाई तथा सन्धिके सदृश अन्तर्जातीय संबन्ध, उपनिवेशोंके साथ व्यवहार, डाक तार रेल तथा खानोंके सदृश एकाधिकार संबन्धी कार्य, कृषिव्यापार व्यवसायके सदृश आर्थिक प्रबन्धके लिये भिन्न भिन्न विभागोंकी जरूरत है। धर्म, शिक्षा, राष्ट्रीय आयव्यय, स्थानीय प्रबन्ध आदि अनेक विभाग हैं जिनका प्रबन्ध भी भिन्न भिन्न विभागोंके द्वारा ही संभव है। इस प्रकार शासक विभागमें निम्न लिखित बातोंको संमिलित करना चाहिये—

(१) मुख्य शासक—इसकी शक्ति समय तथा स्थान भिन्न भिन्न राष्ट्रोंमें भिन्न भिन्न होता है।

(२) शासक सभा—नियामक सभासे शासक सभा का भिन्न होना आवश्यक है।

† डीले लिखित:—दी डेवलपमन्ट आफ दी स्टेट पृ० १५६

(३) सचिवमंडल—भिन्न भिन्न विभागोंके मुखिया ही इसके सभ्य होते हैं।

(४) राष्ट्रीय सेवक या सिविलसर्विस—भिन्न भिन्न विभागोंके राष्ट्रीय सेवक ही इसमें संमिलित हैं, इनका चुनाव शासक सभाके द्वारा ही होता है।

इन उपरिलिखित चारों बातों पर अब क्रमशः एक एक प्रकरणके द्वारा प्रकाश डाला जायगा।

§९६. मुख्य शासक।

राजनीतिक जीवनके शुरू होनेके समयमें शासक शक्ति एक या कुछ मनुष्योंमें केन्द्रितकी गयी। बुद्धि, उमर, प्रभाव तथा शक्ति आदि कारणोंमेंसे किसी एक कारणसे नायक या प्रधानकी सृष्टि हुई। नायक पदको प्राप्त करनेके लिये वंश, निर्वाचन तथा शक्ति आदि तत्त्व साधन बनाये गये और समयान्तरमें दैवी अधिकारके सिद्धान्तद्वारा यह न्याययुक्त प्रगट किया गया। राजा, पुरोहित तथा राज-सभाकी उत्पत्तिका महत्व यही है। देखनेमें तो प्राचीन कालमें शासकोंकी शक्ति अपरिमित थी परन्तु वस्तुतः सदाचार, लोकप्रथा तथा प्राचीन नियमोंके अनुसार ही उनको चलना पड़ता था। एकतन्त्र राज्यका अधःपतन शुरू होते ही उसकी शासक शक्ति भिन्न भिन्न व्यक्तियों तथा विभागोंमें बांट दी गयी।

आजकल शासक विभागके सभी ऐतिहासिक रूप भिन्न भिन्न राष्ट्रोंमें देखे जा सकते हैं। अफ्रीकाके असली निवासी अब भी भिन्न भिन्न दलोंके नायकोंके द्वारा ही

शासनका काम करते हैं। चीन, जापान तथा रूसमें दैवी अधिकारसे संपन्न राजाका ही शासन है। लड़ाईसे पहले जर्मनी तथा आस्ट्रिया दोनोंमें लोकतन्त्र शासन पद्धतिके साथ साथ एकतन्त्र राज्य था। युद्धका ही यह प्रभाव है कि कैसरको अपनी राजगद्दी छोड़नी पड़ी और जर्मनीने पूर्णतया लोकतन्त्र शासन पद्धतिका अवलंबन कर लिया।

जिन राष्ट्रोंमें प्रधानका निर्वाचन होता है वहां भी उसकी शक्ति एक सदृश नहीं है। मैक्सिकोके प्रधानको एक प्रकारका स्वेच्छाचारी राजा ही समझना चाहिये। अमरीकाके प्रधानकी शक्ति भी कुछ कम नहीं है। फ्रांसके प्रधानकी शक्ति बहुत ही कम है और स्विट्जलण्डका प्रधान तो एकमात्र सभापति ही है। उसकी संपूर्ण शक्ति नियामक सभाओंने अपने ही हाथोंमें लेली है।

भिन्न भिन्न राष्ट्रोंके प्रधानोंको दो भागोंमें विभक्त कर सकते हैं।

(१) निर्वाचन तथा स्थानके विचारसे:—निर्वाचन तथा स्थानके प्रश्नको सामने रखते हुए शासकोंको दो भागोंमें विभक्त करना जरूरी है। (क) वंशागत तथा (ख) निर्वाचित। एशिया तथा यूरोपमें बहुतसे ऐसे राष्ट्र हैं जिनमें शासक आजीवन अपने पदपर रहते हैं और शासनका काम करते हैं। उनके मरनेपर उनका बड़ा लड़का या उन्हींके वंशका कोई व्यक्ति शासक पदपर नियुक्त किया जाता है। अर्वाचीन लोकतन्त्र राज्योंमें भी ऐसे बहुतसे राजवंशके लोग हैं, जिनके पूर्वजोंने अपने शासनका अधिकार जनताके हाथोंमें दे दिया था और जहां ऐसा नहीं हुआ वहां अब भी राज-

वंशके लोग ही मुख्य शासक हैं। इसमें सन्देह भी नहीं है कि जनताकी स्वतन्त्रता संबन्धी आगमें उनकी बहुतसी शक्तियां तथा अधिकार झुलस गये। जनताकी इच्छाके अनुसार ही वे लोग राज कार्य्य कर रहे हैं।*

अमरीकाके लोगोंकी राजवंशमें कुछ भी श्रद्धा नहीं है। चिर कालसे प्रधानतन्त्रराज्यमें शासित होनेके कारण वहांके निवासियोंको राजाके नामपर कुछ भी प्रसन्नता नहीं होती उनके खूनमें ही इस ढंगके आनन्द तथा प्रसन्नताके भाव नहीं परन्तु इंग्लैण्डमें इससे विपरीत दशा है।; वहांके निवासी कई सदियोंसे राजाके द्वारा अपना काम चला रहे हैं। संपूर्ण राजनीतिक अधिकारोंके छिन जानेसे इंग्लैण्डका राजा संपूर्ण दोषोंसे भी दूर होगया है। यही कारण है कि जनता उसको आदर तथा सत्कारकी दृष्टिसे देखती है।

शक्ति—शून्य राजाओंका होना और उनका नाम मात्रको राजगद्दीको सुशोभित करना बहुतसे लाभोंसे परिपूर्ण है। राजाके प्रति आदर सत्कारके भाव राज्यनियमोंके पालनमें लोगोंको अधिकतर प्रवृत्त करते हैं। अन्तर्जातीय सन्धियों तथा सम्बधोंमें भी एक विशेष प्रकारका महत्व आजाता है। शासक लोग अपने उत्तरदायित्वको समझते हैं और जहां तक होता है राज्यके कार्य्यमें प्रमाद नहीं करते हैं।

लड़ाईसे पहले इंग्लैण्ड तथा जर्मनी भिन्न भिन्न राजाओंके द्वारा शासित थे। इंग्लैण्डमें राजाका राजवंशमें ही शादी करना आवश्यक नहीं है। इससे इंग्लैण्डके राजाओंका खून उतना पवित्र नहीं रहा जितना कि होना चाहिये। स्वाभाविक है कि ऐसे राजामें लोगोंकी श्रद्धा कम हो

जाय। राजाकी शक्तिका कम होना भी किसी अंशतक इससे संबद्ध है। परन्तु जर्मनीमें यह बात न थी। यही कारण है कि प्रूशियाके राजाकी शक्ति जर्मन सम्राट्के तौर-पर बहुत ही अधिक बढ़गयी थी।

अमरीका, फ्रांस तथा स्विट्जलैंण्डमें राजाके स्थानपर प्रधान चुने जाते हैं। परन्तु तीनों ही राष्ट्रोंमें प्रधानकी शक्ति भिन्न भिन्न है। पेरू, ब्राजील तथा बोलोवियामें जनताके द्वारा प्रत्यक्षतौरपर प्रधान चुने जाते हैं। मैक्सिको, अर्जन्टाइन रिपब्लिक तथा चिलीमें यह बात नहीं है। वहां प्रधानोंका चुनाव अप्रत्यक्षतौरपर ही होता है।

अमरीकाके प्रधानका चुनाव निर्वाचकोंके संघोंके द्वारा होता है जिनमें प्रत्येक राष्ट्रके उतने ही निर्वाचक होते हैं जितने कि कांग्रेसमें उसके सभ्य होते हैं। इसका उद्देश्य यही है कि प्रधान पदपर योग्य योग्य व्यक्ति पहुंच सकें। भिन्न भिन्न दलके लोग अपनी ओरसे प्रधानका प्रस्ताव करते हैं। इस प्रस्तावको सामने रख कर भिन्न भिन्न राष्ट्रके निवासी निर्वाचक चुनते हैं। यही कारण है कि अमरीकाके प्रधानका चुनाव देखनेमें अप्रत्यक्ष विधिके द्वारा है परन्तु वास्तवमें उसको जनता ही चुनती है। फ्रान्समें नियामक सभाएं जातीयसभाके रूपमें एक साथ बैठकर प्रधानका निर्वाचन करती हैं। फ्रांसीसियोंने इस समयसे इस क्रमको अवलंबन किया कि जनताके द्वारा जो व्यक्ति प्रधान चुना जायगा वह बहुत ही शक्तिशाली हो जायगा और इसप्रकार एक नयी राज्यक्रान्तिका खतरा सरपर ज्योंका त्यों मौजूद रहेगा। स्विट्जलैंण्डमें नियामक सभाएं सात सभ्योंकी

शासक समितिमेंसे ही किसी एक सभ्यको एकसालके लिये प्रधानके तौरपर चुन लेती हैं।

निर्वाचित प्रधानोंके संबन्धमें पुनर्निर्वाचक तथा प्रधानत्वका समय बहुत ही महत्व पूर्ण है। प्रधानका जनताके प्रति उत्तरदायी होना जरूरी है। यही कारण है कि उसके प्रधानत्वका समय बहुत अधिक नहीं होता है और उसका पुनर्निर्वाचन भी रोका जाता है। स्विट्जलैंडके प्रधानका समय एक साल है। वह फिरसे चुना नहीं जा सकता, आम तौरपर उपप्रधान ही उसका पद ग्रहण कर लेता है। अमरीकामें ४ से ६ साल तकके लिये ही प्रधानका चुनाव होता है। खास खास दशामें उसका पुनर्निर्वाचन नहीं हो सकता। संवत् १९४१ (सन् १८८४) के बाद मैक्सिकोका प्रधान हर चार सालके बाद एक ही व्यक्ति चुना गया। इसको अपवाद समझना चाहिये। अमरीकामें भी पुनर्निर्वाचनको रोकनेके लिये कोई नियम नहीं है। राष्ट्रपति वाशिङ्गटनने तीसरी बार अपने आपको निर्वाचित नहीं होने दिया। समयान्तरमें इसने लोक प्रथाका रूप धारण करलिया। यही कारण है कि अमरीकाकी जनताने उसके बादसे अब तक किसी भी व्यक्तिको तीसरी बार प्रधान पदपर नहीं निर्वाचित किया।

शासक विभागके मुखिया प्रायः अपने आफिसमें रहते हुए कुछ भी व्यक्तिगत उत्तरदायित्वको अनुभव नहीं करते। वंशागत राजा कितनीही भूलें क्यों न करे उसको कोई राजगद्दीसे नहीं उतार सकता। इसमें सन्देह भी नहीं है कि इंग्लैण्डके निवासियोंने इस मामलेमें कुछ अदल बदल की

है। उन्होंने राजगद्दीसे राजाका उतारना या किसी दूसरे वंशके राजाको राजगद्दीपर बैठाना पार्लमेन्टके ही हाथों रखा है। लड़ाईसे पहले जर्मनीमें यह राज्य-नियम प्रचलित था कि राजकुमार, प्रशियन मंत्रि-मंडल तथा प्रशियन नियामक सभा तीनों ही एकमत होकर सम्राटको राजगद्दीसे उतार सकते हैं। नियामक सभाओंकी सम्मिलित बैठकमें दोषारोपण (इम्पीचमेण्ट) के द्वारा प्रधानको प्रधान पदसे हटाना अथवा लार्डसभा या राष्ट्रसभाको न्यायकारिणी सामितिके रूपमें बैठाकर प्रधानके अपराधोंका निर्णय करना तथा पदच्युत करना भिन्न भिन्न राष्ट्रोंमें प्रचलित है। अमरीकामें ऐसी भयंकर हालतमें राष्ट्रका उपप्रधान ही प्रधान पदको ग्रहण करता है। फ्रान्समें प्रधानके पदच्युत होनेपर मंत्रिमंडल ही शासनका काम करता है। यही दशा तब तक बनी रहती है जब तक कि किसी दूसरे व्यक्तिका प्रधानके तौरपर चुनाव न हो जाय।

(२) वास्तविक शक्तिके विचारसे। शासक वस्तविक है या कल्पित इसका सम्बन्ध विशेषतः नियामक सभाओंके साथ ही है। सचिवतंत्र तथा प्रधानतन्त्र राष्ट्रोंका उल्लेख किया जाचुका है। सचिव तंत्र शासनपद्धतिमें प्रायः मुख्यशासक कल्पित ही होता है, क्योंकि शासनकी संपूर्ण शक्ति सचिव मंडलके पास ही होती है। प्रधानतन्त्र राष्ट्रोंमें प्रधान वास्तविक शासक होता है। वह कुछ मामलोंमें नियामक सभाओंके अधीन नहीं होता है।

वास्तविक शक्तिका निर्वाचन या वंशागतके तत्वोंके साथ कुछ भी घनिष्ट संबन्ध नहीं है। इंग्लैण्डका राजा

और फ्रान्स का प्रधान एक ही थैलेके चट्टे-बट्टे हैं। दोनों ही अधिकार-शून्य कल्पित शासक हैं। इंग्लैण्ड तथा फ्रांसमें शासनकी वास्तविक शक्ति सचिवमंडलके पास है। दोनों ही देशोंके सचिवमंडल अपनी अपनी नियामक सभाओंके प्रति उत्तरदायी हैं। यही कारण है कि फ्रांसके प्रधानका देर तक प्रधान पदपर रहना या उसका फिरसे चुना जा सकना कुछ भी महत्वपूर्ण नहीं है। इससे विपरीत, लड़ाईसे पहले जर्मनीका सम्राट और आजकल अमरीका का निर्वाचित प्रधान वास्तविक शासक हैं। बहुत बार यह भी देखनेमें आया है कि निर्वाचित शासक ही राष्ट्रका मुखिया होता है और वंशागत राजा एकमात्र कठपुतलीका काम करता है। यही कारण है कि शासकशक्तिका वंशागत या निर्वाचनके साथ कुछ भी संबन्ध नहीं माना जाता।

§ ९७ शासक सभा।

यह पूर्व ही लिखा जा चुका है कि प्राचीन राजसभाओंने ही शासकसभाके रूपमें अपने आपको प्रगट किया। यही कारण है कि बहुतसे राष्ट्रोंमें शासक सभाकी शक्ति नियामक सभाओंमें चली गयी और शासक सभाएं एक मात्र दिखावेकी रह गयीं। इंग्लैण्ड तथा फ्रांसके राजनीतिक इतिहाससे इस बातकी सच्चाई बहुत अच्छी तौरपर जानी जा सकती है।

(क) इंग्लैण्ड—शुरू शुरूमें ब्रिटिश पार्लमेन्टने राजासे राष्ट्रीय आय-व्यय सम्बन्धी अधिकार प्राप्त किये। इसके बाद उसने राजाकी नियामक शक्तिको कम करना शुरू किया। उन्हीं दिनोंमें पुरानी क्यूरिया रेजिस राजाको न्याय तथा

शासनके काममें सहायता पहुंचाती थी। समयान्तरमें क्यूरिया रेजिसने प्रिवी काउन्सिलका रूप धारण किया और राष्ट्रके नियम तथा शासनको प्रभावित करना शुरू किया। आजकल प्रिवी काउन्सिलमें लगभग दो सौ सभ्य हैं। ऊंचे ऊंचे पदोंके राज्याधिकारी, पेन्शनर तथा धर्म्मके नेता ही इसके सभ्य हो सकते हैं। क्लार्क तथा अन्य छः सभ्योंका कोरम होनेपर यह सभा तीसरे या चौथे सप्ताहमें अपनी बैठक करती है और राष्ट्रीय प्रश्नोंपर विचार करती है। आजकल प्रिवी काउन्सिलको वह शक्ति नहीं है जो कि पुराने समयमें उसके पास थी। उसकी नियामक शक्ति पार्लमेन्टमें, और शासक-शक्ति सचिव-मण्डलमें चली गयी। निर्णायक शक्ति भी अब उसके पास नहीं है। आज कल जो कुछ यह करती है वह यही है कि राजाज्ञाओंके प्रकाशित करनेमें राजाकी सहायता पहुंचाती है और आवश्यक आवश्यक मामलोंमें उसको सलाह देती है। स्थानीय राजकर्मचारियोंको अपनी आज्ञा प्रकाशित करनेसे पूर्व प्रिवी काउंसिलसे पूछना पड़ता है। प्रिवी काउन्सिलका ही इंग्लैण्डके राज्यनियमोंमें अस्तित्व है। सचिव-मंडलकी सम्पूर्ण शक्ति प्रिवी काउन्सिलका अंग होनेसे ही है। इंग्लैण्डके राज्यनियमोंमें उसका कुछ भी पृथक् अस्तित्व नहीं

(ख) फ्रान्स—फ्रान्सकी शासक सभाका इतिहास बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। स्वेच्छाचारी राजाओंके शासन-कालमें उसकी शक्ति अपरिमित थी। अनेक प्रकारके कामोंका यह करती थी। राज्य-नियमोंका बनाना भी इसीके हाथमें था। फरांसीसी प्रजातंत्र राज्यमें जब नियम-निर्माणका

काम जनताने अपने हाथोंमें लेलिया तो यह एकमात्र सहायकसभा रह गयी । शासकोंको कर्तव्यपालन सिखाना तथा उसीके सम्बंधमें सलाह देना ही इसका काम होगया । अर्वाचीन फरांसीसी शासकसभाके सभ्य १६० हैं । उनमेंसे कुछ तो परीक्षाओंके द्वारा और शेष प्रधानके द्वारा चुने जाते हैं । शासकसभा चार उपसभाओंमें विभक्त है। इनमेंसे तीन उप-सभाएं तो प्रबंधके काममें सहायता पहुंचाती हैं और चौथी निर्णायक सभाके तौरपर काम करती हैं । सचिवमंडलके सभ्य शासकसभामें जासकते हैं और अपने अपने विभागके संबन्धमें जो प्रश्न वहां उठें उनपर सम्मति भी देसकते हैं । नियामक तथा शासक प्रस्तावोंको इसी सभामें भेजते हैं । इसकी सम्मति आजानेपर ही वह प्रस्ताव राज्य-नियम बनाये जा सकते हैं । महत्वपूर्ण प्रस्तावोंमें इसकी सम्मतिका लेना बहुत ही जरूरी समझा जाता है। यद्यपि राज्य इसकी सम्मतिपर चलनेके लिये बाध्य नहीं है तो भी नियम या राजनीति संबन्धी अनेकों प्रस्ताव इसीमें भेजे जाते हैं और इसकी सम्मतिको उचित महत्त्व दिया जाता है।

(ग) जर्मनी—लड़ाईसे पहले जर्मनीकी बन्देसराथ नियामक कामोंके सदृश ही शासन सम्बन्धी कामोंको भी करती थी । सम्राट्के कुछ प्रस्तावोंको यह रद्द कर सकती थी और राज्यकर्मचारियोंको महत्वपूर्ण पदोंपर नियुक्त कर सकती थी । इसकी प्रस्ताव सम्बंधी शक्ति भी कम न थी। साम्राज्यके आयव्ययका नियंत्रण भी यही करती थी । युद्ध तथा सन्धिके मामलेमें इसकी स्वीकृति आवश्यक थी । आजकल इसकी क्या क्या शक्तियां हैं इसका ज्ञान अभीतक हम-

को नहीं है । इसका मुख्य कारण यह है कि जर्मनी अभीतक अस्थिर दशामें है । भविष्यमें उसकी शासन-पद्धति क्या रूप धारण करेगी अभीसे कुछ भी नहीं कहा जा सकता ।

(घ) अमरीका—उपनिवेशोंमें अबतक शासकसभाओं-की ही विधि प्रचलित है । मुख्य शासकको महत्त्वपूर्ण आवश्यक कामोंको करनेके पूर्व शासकसभाको स्वीकृति लेनी पड़ती है । मेज, मैसाचैसट तथा न्यूहैंपशायरमें तो मुख्य शासककी नियुक्ति शासकसभाकी स्वीकृतिसे ही होती है । मुख्यराज्यमें सीनेट ही शासकसभा है । अपनी गुप्त बैठकोंमें यह प्रधानकी शक्तिको नियंत्रित करती है । प्रधान सीनेटकी स्वीकृतिके विना उच्च उच्च पदाधिकारियोंकी नियुक्ति नहीं कर सकता । अन्तर्जातीय शक्तियां तब तक प्रामाणिक नहीं जबतक कि सीनेटके दो-तिहाई सभ्य उनको स्वीकृत न करें ।

§९८ सचिवमंडल ।

राष्ट्रके काम ज्यों ज्यों बढ़ते गये, भिन्न भिन्न राजकीय भाग बनाये गये । आजकल राष्ट्रके पांच विभाग बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं ।

(१) विदेशीय विभाग ।
(२) सैनिक विभाग ।
(३) आर्थिक विभाग ।
(४) निर्णायक विभाग ।
(५) अन्तरीय विभाग ।

कार्योंकी अधिकता होनेपर इन्हींके उपविभाग बना लिये जाते हैं । दृष्टांत स्वरूप नौसेनाविभाग तथा कृषि, व्यापार,

व्यवसाय, उपनिवेश विभागको ही लीजिये । आजकल इनके महत्त्वके बढ़नेसे यह भी एक विभाग बन गये हैं और इनके अध्यक्षोंकी काफी उच्च स्थिति है । बहुत बार उपविभागों या विभागोंके निर्माणमें भौगोलिक स्थितिसे काम लिया जाता है । इंग्लैण्डने भारत-सचिवकी और लड़ाईसे पहले जर्मनीने अलास्का लोरेनके लिये एक अध्यक्षकी जो नियुक्ति की थी वह इसीका ज्वलंत उदाहरण है । आजकल सभी सभ्य राष्ट्रोंमें राष्ट्रीय कार्योंके करनेके लिये अनेक विभाग हैं। सब राजनीतिज्ञ इस बातपर सहमत हैं कि प्रत्येक विभाग एक एक व्यक्तिके अधीन पृथक् पृथक् तौरपर होना चाहिये। विभागोंके अध्यक्ष ही मंत्री, सचिव, अमात्य आदि नाम-से पुकारे जाते हैं । इनकी सम्मिलित सभाका ही नाम सचिवमंडल है । सचिवमंडलका शासक तथा नियामक विभागके साथ क्या सम्बन्ध है इसपर विचार करना अत्यन्त आवश्यक है ।

सचिवमंडलका भिन्न भिन्न राजकीय विभागोंके साथ क्या सम्बन्ध है यह भिन्न भिन्न राष्ट्रोंके सचिवमंडलके संघटनके द्वारा ही स्पष्ट किया जा सकता है । यही कारण है कि अब संसारके प्रधान प्रधान राष्ट्रोंके सचिवमंडलपर ही कुछ शब्द लिखे जायँगे ।

(क) इंग्लैण्ड—इंग्लैण्डके सचिवमंडलका विकास ऐतिहासिक है । राज्यनियमोंके स्थानमें लोक-प्रथापर ही इसका आधार है । इंग्लैण्डमें किसी समयमें राजाकी शक्ति बहुत अधिक थी । धीरे धीरे उससे आर्थिक प्रबन्ध छीना गया । पार्लमेन्ट ही नये राज्यकरोंका लगाना

पास करने लगी । इसपर भी राजाका स्वेच्छाचारित्व कम न हुआ । राजा अपने मन्त्रियोंके द्वारा मनमाना शासन करता था । धीरे धीरे पार्लमेन्टने दोषारोपणकी शक्ति अपने हाथमें ली । राजाके सलाहकारोंकी संख्या दिनपर दिन बढ़ती ही गयी जो कि प्रिवी काउन्सिलमें बैठकर शासन-का काम करते थे । संख्याके अधिक होनेसे शासनका काम सुगमतासे न हो सकता था, अतः कुछ व्यक्ति चुन लिये जाते थे और उनको भिन्न भिन्न राजकीय विभाग शासनके लिए सुपुर्द कर दिये जाते थे । स्टूअर्ट राजाओंके अधःपातके बाद जब पार्लमेन्टने शक्ति प्राप्त की तो विलियम तृतीयने उसकी सहायता प्राप्त करनेके उद्देश्यसे अपने मन्त्री पार्लमेन्टमेंसे ही चुने । शुरू शुरूमें तो इन्होंने राजकीय काम उचित विधिपर न किया, पर अठारहवीं सदीके मध्यसे स्थिति कुछ कुछ सुधरने लगी ।

आजकल आंग्ल सचिवमंडलमें पन्द्रहसे बीस मनुष्य तक सभ्य हैं । राजा केवल महामन्त्रीका ही चुनाव करता है । साधारणतया वह भिन्न भिन्न दलोंके नेताको ही यह पद दे देता है । सचिवमंडलके सभ्य दोनों लोकसभाओंमेंसे किसी न किसीके सभ्य होते हैं । भिन्न भिन्न विभागोंका शासन तथा प्रबन्ध भी यही लोग करते हैं । गुप्त सभाओंमें यह लोग अपनी नीति निश्चित करते हैं और सम्मिलित तौरपर काम करते हैं । यदि पार्लमेन्ट इनकी नीतिके विरुद्ध हो तो यह अपने अपने पदोंसे इस्तीफा दे देते हैं । परन्तु यदि इनको यह विश्वास हो कि जनता हमारे प्रस्तावका समर्थन करेगी तो यह राजासे आज्ञा लेकर

पार्लमेन्टका नये सिरेसे चुनाव करवाते हैं और अपने प्रस्तावको पेश करते हैं। इसपर भी यदि इनको जनताका बहुमत न मिले तो राजा किसी दूसरे दलके प्रधान व्यक्तिको महामन्त्रीका पद दे देता है और उसको नया सचिवमंडल बनानेके लिए प्रेरित करता है।

इंग्लेण्डमें महामन्त्री ही मुख्य शासक है। भिन्न भिन्न राजकीय विभागोंका नियन्त्रण तथा प्रबन्ध उसीके हाथमें है। इसमें सन्देह भी नहीं है कि उसकी संपूर्णशक्ति पार्लमेन्टके हाथमें है। वह तभी तक शक्तिशाली है जब तक कि आंग्ल जनताका बहुमत उसके साथ है। बहुमतके विरुद्ध होते ही उसकी शक्ति नष्ट हो जाती है और उसको इस्तीफा देकर अपना पद छोड़ना पड़ता है।

(ख) फ्रांस—फ्रांसमें प्रधान ही सचिवमंडलके सभ्य नियुक्त करता है। सचिवमंडल प्रधान द्वारा नियुक्त होकर प्रधानकी शक्तिसे बाहर हो जाता है। उसको अपने कामोंके लिये प्रतिनिधि सभा (चेम्बर आव डिप्युटिज़) को उत्तर देना पड़ता है। उसका प्रत्येक सभ्य प्रतिनिधि सभाके अधीन है। शासकसभाका अंग होनेसे प्रत्येक सचिव नियमोंके संचालनमें ध्यान रखता है। भिन्न भिन्न विभागोंके सचिवोंको अपने विभागके सम्बन्धमें (प्रधानकी आज्ञापर) प्रधानके हस्ताक्षरके बाद स्वयं भी हस्ताक्षर करने पड़ते हैं। प्रधानका कोई ऐसा काम नहीं जिसपर किसी न किसी सचिवके हस्ताक्षर न हों। प्रत्येक सचिव प्रतिनिधि सभामें जा सकता है और अपने विभागके सम्बन्धमें संभाषण कर सकता है। प्रतिनिधि सभाके विरुद्ध होते ही सचिवमंडल टूट

जाता है और सचिवोंको इस्तीफा देदेना पड़ता है । कभी कभी यह भी हो जाता है कि सचिवमंडलके बने रहते हुए भी किसी एक सभ्यको इस्तीफा देना पड़ जाता है । यह तभी होता है जब कि प्रतिनिधिसभाको उसपर अविश्वास हो जाय और उसके विरुद्ध अपनी सम्मति दे दे । यह पूर्व ही लिखा जा चुका है कि सचिवमंडलके सभ्य प्रतिनिधि सभाके प्रति उत्तरदायी हैं । उनको अपने अपने विभागके सम्बन्धमें उत्तर देना पड़ता है । स्वाभाविक ही है कि प्रतिनिधि सभाके पूछनेपर कोई सचिव अपने कार्य्योंका समाधान न कर सके । इसका जो कुछ उसको दण्ड मिलता है वह यही है कि उसको अपने उस पदसे पृथक् होना पड़ता है ।

वस्तुतः फ्रांसमें मुख्य शासक या मुख्य मंत्री भी वही है जिसपर कि प्रतिनिधि सभाका विश्वास है । घरेलू प्रबन्ध प्रायः उसीके हाथमें होता है । उसीकी स्वीकृतिपर अन्य मंत्रियोंका चुनाव होता है । यदि वह उनसे सन्तुष्ट न हो तो उनको उस पदसे पृथक् कर सकता है ।

फ्रांसमें मंत्रिविभागके हाथमें बहुत शक्ति दे दी गयी है । यह वहां की अवस्था जाननेसे ही स्पष्ट हो सकता है । फ्रांसकी प्रजामें पुनः राज्यक्रांति न हो जाय इसका भय राज्यको बना रहता है । इसलिए वहां इस बातका यत्न किया गया है कि किसी प्रकारसे राज्याधिकारी ही प्रजाके नेताका रूप धारण कर लें और यह तब तक हो ही नहीं सकता था जब तक कि राज्यमें कई व्यक्तियोंके हाथमें पर्य्याप्त शक्ति न दे दी जाती । यही कारण है कि मंत्रियोंके हाथमें पर्य्याप्त शक्ति है । एक कारण यह भी कहा जा सकता

है कि प्रजाके कार्य्योंमें राज्यको हस्तक्षेप न करना चाहिये। इस्माइल, एडमस्मिथ आदि अंग्रेज संपत्तिशास्त्रज्ञोंके सिद्धान्तके विरुद्ध प्रायः समस्त देश कार्य्य करने लगे हैं, इस दशामें फ्रांस संसारसे कैसे अलग रह सकता था।

फ्रान्समें प्रधानकी स्थिति बड़ी ही विचित्र है। नियामक सभाके द्वारा उसका चुनाव बहुत समयके लिये होता है और नये सिरेसे पुनः चुना जा सकता है। इन सब बातोंके कारण उसकी शक्ति बहुत ही अधिक होनी चाहिये थी। आश्चर्यकी बात है कि उसकी शक्ति इतनी कम है कि इंग्लैण्डके राजाके साथ उसकी उपमा दी जा सकती है। उसके प्रत्येक कार्यपर किसी न किसी मन्त्रीका हस्ताक्षर होना चाहिये-एक यही बात उसकी शक्तिको नष्ट कर देती है, क्योंकि फरांसीसी प्रधानके स्थानपर मन्त्री ही प्रतिनिधि सभाके प्रति उत्तरदायी है। फ्रान्सने इंग्लैण्डके परिमित एकतन्त्र तथा पार्लमेंटरी राज्यके ढांचेपर प्रधानतन्त्र राज्यकी स्थापना की और बहुत कुछ सफलता प्राप्त की। राजनीतिशास्त्रमें उसका यह नया ढांचा एक अपूर्व वस्तु है।

(ग) जर्मनी—लड़ाईसे पहले जर्मनीमें चान्सलर ही मुख्य शासक था। वहांकी शासन-पद्धतिकी मुख्य धाराओंके अनुसार सम्राट्के सैनिक कार्योंके अतिरिक्त प्रत्येक कार्यपर चान्सलरके हस्ताक्षरोंका होना आवश्यक है। राज्यका प्रत्येक विभाग चान्सलरके प्रति उत्तरदायी है। चान्सलरकी इच्छाके अनुसार सम्राट् जिस व्यक्तिको चाहे राजकीय विभागोंका अध्यक्ष नियत करे और जिस अध्यक्षको चाहे पदच्युत करे। जर्मनीमें चान्सलर नियुक्त करना सम्राट्के हाथमें था।

यही कारण है कि एक तरीकेसे संपूर्ण राजकीय विभाग जर्मनीमें सम्राट्के प्रति उत्तरदायी थे।

वास्तविक घटनाओंको सामने रखते हुए यह कहा जा सकता है कि लड़ाईसे पहले जर्मनीमें मंत्रिमंडल या सचिव-मंडल न था। वहां शासक विभागपर नियामक विभागका कुछ भी नियन्त्रण न था। संवत् १९६४ (१९०७) में रीस्टाग तथा सम्राट्के बीचमें बड़ा झगड़ा हुआ। इसपर चान्सलरने यह उद्घोषित किया कि आगेसे वह जनताके प्रति अपने आपको उत्तरदायी समझेगा। सम्राट्ने एक नये व्यक्तिको चान्सलरके पदपर नियुक्त किया और यही कारण है कि लड़ाईसे पूर्वतक जर्मनीमें प्रतिनिधितन्त्र शासन पूर्ण तौरपर स्थापित न होसका।

(घ) अमरीका—अमरीकामें प्रधानकी शक्ति बहुत ही अधिक है। सीनेटकी स्वीकृति लेकर वही भिन्न भिन्न व्यक्तियोंको भिन्न भिन्न राजकीय पदोंपर नियुक्त करता है। अमरीकामें मंत्रिमंडलकी कोई भिन्न स्थिति नहीं है। प्रधानकी ही शक्तिका वह अंग है। भिन्न भिन्न विभागोंके प्रबन्धमें जो गड़बड़ी हो उसका उत्तरदातृत्व प्रधानपर है। यही कारण है कि प्रधान किसी भी मन्त्रीकी इच्छा या सलाहके अनुसार चलनेको बाधित नहीं है। जिस मन्त्रीको चाहे वह पदच्युत कर सकता है। इसपर अन्य मन्त्री कुछ भी चूं चां नहीं कर सकते। राज्यनियमोंके अनुसार मन्त्रियोंको कांग्रेसमें बैठनेका अधिकार नहीं है। लोक-प्रथा इस बातकी बाधक है कि वह कांग्रेसमें जाकर अपने विभागके विषयमें कुछ भी संभाषण करें। अमरीकामें शासक विभागका कर्ता-धर्ता प्रधान है।

भिन्न भिन्न विभागोंके मन्त्रियोंको वही एकत्र करता है और काम चलानेके लिये और महत्त्वपूर्ण प्रश्नोंपर उनकी सलाह लेनेके लिये वही उनका मंत्रिमंडल बनाता है। चूंकि मंत्रिमंडलकी स्थिति कल्पित है और शासनपद्धतिकी धाराओंसे उसका कुछ भी संबन्ध नहीं है इसलिये उसकी सम्मतिके अनुसार चलनेके लिए प्रधान कुछ भी बाधित नहीं है। नियामक विभागका प्रधान तथा उसके सहकारी वर्गपर कुछ भी नियन्त्रण नहीं। जो कुछ वह कर सकता है वह यही है कि शासक वर्गमेंसे जिसको चाहे उसको दोषारोपण (इम्पीचमेंट) के द्वारा पदच्युत करके इच्छानुसार दंड दे और छोटे छोटे उपनियमोंके द्वारा शासक विभागके कार्योंकी गतिको निर्धारित करे। पिछले कामकी ओर आजकल नियामक विभागका विशेष तौरपर ध्यान है। इसीके द्वारा वह अमरीकन शासक विभागका नियन्त्रण कर रहा है।

शासक विभागके अध्यक्ष राज्यकी नीति तथा शासकोंके निरीक्षणके साथ साथ निम्न लिखित काम और अधिक करते हैं।

(क) नियुक्ति तथा विसर्जन—शासक विभागके अध्यक्ष ही अपने विभागके छोटे छोटे राज्यकर्मचारियोंको नियुक्त करते हैं। कभी कभी ऊंचे ऊंचे पदोंके पुरुषोंको भी यही नियुक्त करते हैं। इस विषयमें नियामक विभागने नियुक्त पुरुषोंकी योग्यता तथा स्थितिके मामलेमें बहुतसे राज्यनियम बना दिये हैं जिनका पालन करना अध्यक्षोंके लिये आवश्यक है। नियुक्तिके साथ साथ पदच्युत करना भी भिन्न भिन्न शासकविभागके अध्यक्षोंके ही हाथमें है। जर्मनीमें

राजकीय पद स्थिर हैं और कोई भी व्यक्ति तबतक पदच्युत नहीं किया जा सकता जबतक कि नियन्त्रण न्यायालय (डिसीप्लिनरी कोर्ट) उसको दोषी न ठहराये ।

(ख) निरीक्षण तथा निर्देश—भिन्न भिन्न राष्ट्रोंमें अध्यक्षोंके कार्य तथा अधिकार भिन्न भिन्न हैं । इंग्लैण्ड तथा अमरीकामें स्थानीय शासकोंपर मन्त्रियों तथा अध्यक्षोंका नियन्त्रण नाममात्रको ही था । जर्मनी तथा फ्रान्समें अध्यक्षगण स्थानीय शासकोंपर बहुत ही अधिक नियन्त्रण रखते थे । आजकल सभी राष्ट्र मध्यमार्गकी ओर झुक रहे हैं । इंग्लैण्ड तथा अमरीकामें अध्यक्ष तथा मन्त्रीगण स्थानीय राज्यकर्मचारियों-पर अपना नियंत्रण तथा निरीक्षण बढ़ा रहे हैं । इसके विपरीत जर्मनी तथा फ्रान्समें नियन्त्रण तथा निरीक्षण शिथिल हो रहा है ।

(ग) उपनियम—सभी राष्ट्रोंमें मुख्य शासक राज्यनियमोंको पूरे तौरपर प्रचलित करनेके लिये छोटे छोटे उपनियम बनाते हैं और उनको उद्घोषित करते हैं । शासन-पद्धतिकी शर्तें, ठेके आदिका धाराओंमें बहुत कम उल्लेख है । मुख्य शासक तथा उपशासक कार्यके अनुसार इसको स्वयं ही करते हैं । कौनसी चीज़का किसको कितने रुपयोंपर ठेका दिया जाय इसका निर्णय एकमात्र शासकोंके ही हाथमें है । शासक विभाग इस शक्तिका दुरुपयोग न करे इस उद्देश्यसे इंग्लैण्ड तथा अमरीकामें उनके उपनियमों, निर्देशों तथा आज्ञाओंके विरुद्ध न्यायालयसे प्रार्थना की जा सकती है और न्यायालय जो निर्णय करे उसे माननेको शासक विभाग बाधित हैं । फ्रान्समें स्टेट काउन्सिल ही

इस ढंगकी बातोंका निर्णय करती है। वही अन्तिम प्रामाणिक संस्था है।

§ ९९—राज्य सेवकोंकी नियुक्ति।

शासक विभाग ही अपने विभागके कर्मचारियों, अध्यक्षों तथा उपशासकोंकी नियुक्ति करता है। इनका निम्नलिखित राज्यकर्मचारियोंसे भेद है।

(क) नियामकविभागके राज्यकर्मचारी

(ख) निर्णायकविभागके राज्यकर्मचारी

(ग) जलस्थलसेनाके राज्यकर्मचारी

कार्य्यके विचारसे शासकविभागसे संबद्ध राज्यकर्मचारी निम्नलिखित भागोंमें विभक्त किये जा सकते हैं।

(१) वह शासक जिनको अपने विवेक तथा विचारके अनुसार नये नये कार्य्योंके करनेका कुछ अधिकार है।

(२) वह शासक जो बहुत ही नीचे पदपर काम करते हैं और जो अपने ऊपरके शासककी इच्छाओं तथा निर्देशोंपर ही चलते हैं, जिनको अपने विवेक तथा विचारको काममें लानेका अधिकार नहीं है।

राज्यसेवकोंकी नियुक्ति, पदच्युत करना तथा स्थिर बनाये रखना एक छोटा मोटा काम नहीं है। कुछ राष्ट्रोंमें मुख्य शासक वंशागत हैं। वही छोटे छोटे राज्यसेवकोंको नियुक्त करते हैं। जहां यह नहीं है वहां सचिवमंडल या अध्यक्षमंडल ही इस कामको करता है। अमरीका इन दोनों नियमोंका अपवाद है। वहां उत्तरदायी शासकोंका चुनाव जनता ही करती है। कभी कभी छोटे कमीशनों तथा उपसमितियों

द्वारा भी वहां शासनका काम किया जाता है। परन्तु अन्य देशोंमें यह बात नहीं है। आजकल राष्ट्रोंका झुकाव इसी ओर है कि शासकोंकी शक्ति बढ़ायी जाय और शासनको शिथिलके स्थानमें सुदृढ़ किया जाय।

स्थानीय राज्योंके प्रबन्धमें दो शैलियोंसे काम लिया जाता है। अमरीकामें स्थानीय राज्य-सेवकोंका नियंत्रण मुख्य शासक विभागके हाथमें है। कलक्टर, चुंगी अध्यक्ष आदि अपने २ मुख्य शासककी आज्ञाके अनुसार ही काम करते हैं। कुछ मामलोंमें उनको स्वतन्त्रतापूर्वक काम करनेका भी अधिकार है। जर्मनीमें तथा यूरोपीय राष्ट्रोंमें स्थानीय राज्यसेवक स्वतन्त्र तौरपर कुछ थोड़ेसे ही काम कर सकते हैं। साधारणतया उनको मुख्य शासककी आज्ञा तथा निर्देशको ही काममें लाना पड़ता है। इंग्लैण्ड तथा अमरीकामें मण्डलीय तथा राष्ट्रीय शासकोंका निर्वाचन जनता करती है। यही कारण है कि वह नाममात्रको ही मुख्य शासकके अधीन रहते हैं।

सिविलसर्विसके सभ्यों या राज्यसेवकोंकी नियुक्ति वंश, निर्वाचन आदि अनेक ढंगोंपर होती है। जहां मुख्य शासक राज्यसेवकोंका चुनाव करता है वहां चुनावमें योग्यता, सुशीलता तथा कर्मण्यता आदि अनेक बातोंका ध्यान रखा जाता है। कई राष्ट्रोंमें भिन्न भिन्न राज्यपदोंपर आजीवनके लिये भिन्न भिन्न पुरुष नियुक्त किये जाते हैं और कई राष्ट्रोंमें यह बात नहीं है। आमतौरपर मुख्य शासकोंका नियमित कालके लिये जनताके द्वारा या प्रधान तथा महामन्त्रीके द्वारा चुनाव होता है और नियमित कालके समाप्त होनेपर

उनका स्थान कोई दूसरा व्यक्ति ग्रहण कर लेता है। इसके विपरीत उपशासकों तथा स्थानीय राज्यसेवकोंका पद आजीवनके लिये होता है। मुख्य शासक बदलते रहते हैं परन्तु वह अपने अपने पदपर स्थिर बने रहते हैं इससे शासनका काम शिथिल नहीं होता।

अमरीकामें सिविलसर्विस या राज्यसेवकोंका झमेला बहुत ही विकट है। मुख्य न्यायाधीश आदि कुछ पदोंके व्यक्तियोंका पद तो स्थिर है परन्तु औरोंका नहीं। संवत् १८७७ और १८८६ (१८२० तथा १८२९) के राज-नियमोंसे राज्यसेवकोंकी नियुक्तिमें भिन्न भिन्न दलोंकी कृपाका भाग बहुत ही अधिक बढ़ गया। जो दल राज्यमें प्रधान हुआ उसने अपने दलके लोगोंको भिन्न भिन्न राज्यपद दे दिये। यह क्रम चिरकाल तक न चल सका। यही कारण है कि संवत् १९४० (१८८३) के सिविलसर्विस ऐक्टसे वहां राज्यसेवकोंकी नियुक्ति परीक्षाके अनुसार होने लगी।

§१०० शासक विभागका काम।

प्रत्येक राज्यमें शासक विभाग प्रायः दो प्रकारके काम करता है जो इस प्रकार हैं:—

(क) राजनीतिक काम—राज्यके अन्य विभागोंके साथ शासक विभागका क्या संबन्ध है, उसकी साधारण नीति क्या है और बाह्य तथा अन्तरीय संबन्धका झुकाव कैसा रहेगा इत्यादि विषय शासकविभागके राजनीतिक कामोंके ही अंग हैं। राष्ट्रकी एकताको शासकविभाग ही प्रगट करता

है। यही कारण है कि विदेशीय राष्ट्रोंके साथ राजनीतिक संबन्ध, संधि, युद्ध, जल तथा स्थल सेनाका प्रबन्ध, दूत प्रचार, तथा उपयुक्त नियुक्ति आदि संपूर्ण काम यही विभाग करता है। राष्ट्रमें कौन कौनसे सुधार किये जायेंगे, शासन-प्रणाली किस ढंगकी रहेगी और राज्यकी नीति क्या है इत्यादि बातोंकी उद्घोषणा यही विभाग करता है।*

(ख) शासन संबन्धी काम—इसमें अनेक प्रकारके काम सम्मिलित हैं। जो कार्य एक व्यक्ति या व्यक्तिसंघ नहीं कर सकता उसको करना इसी विभागका काम है। मनुष्य तथा धन एकत्र करना और राष्ट्रके उत्पादक स्थानोंका पता लगाकर उनकी उत्पत्ति बढ़ाना, नियन्त्रण रखना तथा राष्ट्रकी समृद्धिको बढ़ाना आदि अनेक काम इसीको करने पड़ते हैं। इन कामोंका महत्त्व इसीसे जाना जा सकता है कि शासनविभागका मुखिया ही राष्ट्रका मुखिया समझा जाता है। यह होना ही चाहिये क्योंकि मुख्य शासक ही अन्य राज्यकर्मचारियोंको नियुक्त करता है। भिन्न भिन्न विभागोंका संगठन, नियुक्त पुरुषोंको कार्य-वितरण तथा राष्ट्रके प्रबन्धका निरीक्षण वही करता है। यदि जनतामें राज्यनियमविरुद्ध विक्षोभ हो तो उसमें शान्ति स्थापित रखना तथा युद्ध-सेना और पुलिसके द्वारा अपनी आज्ञाओंका प्रचार करना भी मुख्य शासकका ही काम है।

अमरीका तथा इंग्लैण्डमें मुख्य शासकका स्वरूप फ्रान्सके सदृश प्रत्यक्ष तथा महत्त्वपूर्ण नहीं है। इंग्लैण्ड तथा फ्रांसमें मुख्य शासक सचिवमंडल है जो कि नियामक

* लीके लिखित 'दि डेवलप्मेन्ट आव् दि स्टेट' पृ० १४८।

सभाओंके प्रति उत्तरदायी हैं। अमरीकामें मुख्य शासक शासक-विभागका अध्यक्ष तथा राजनीतिका संचालक है। अमरीकन राष्ट्रोंमें गवर्नर नाममात्रका ही शासक है। शासनका काम प्रायः राजनीतिक संस्थायें ही करती हैं जो कि उसके प्रभुत्वमें नहीं हैं।

शासकविभागके आजकल जो जो अधिकार हैं वे इस प्रकार दिखाये जा सकते हैं।

(क) राजनीतिक (डिप्लोमेटिक)—सन्धि, विग्रह, दूत संचार, अपसर्पप्रणिधि, युद्ध, कृत्यपक्षोपग्रह आदि अनेक काम शासकविभागको ही करने पड़ते हैं। इन कार्य्योंके करनेमें शासकविभाग अपनी शक्तिका दुरुपयोग न करे इसका उपाय सभी राष्ट्रोंमें किया गया है। आम तौरपर शासन-पद्धतिकी धाराओंमें कुछ ऐसी शर्तें रखी गयी हैं जो शासक विभागको स्वेच्छाचारी होनेसे रोकती हैं।

(ख) नियामक (लेजिसलेटिव)—शासकविभागके पास यद्यपि नियामक शक्ति नहीं है तो भी नये नये प्रस्तावोंको पास कराना, नियामक सभाओंके अधिवेशन तथा विसर्जनका प्रबन्ध करना और खास खास मामलोंपर 'अस्वीकृति' की शक्तिको काममें लेना आदि ऐसी तुच्छ बातें नहीं हैं जो भुलायी जा सकें। नियम-निर्माणमें इन बातोंका पर्य्याप्त प्रभाव पड़ता है।

(ग) सैनिक—प्रायः मुख्य शासक या मुख्य शासकविभागही स्थल सेना तथा नौ सेनाका प्रबन्ध करता है। मुख्य सेनापति भी प्रायः वही होता है। राज्य-कर्मचारियोंको नियुक्त करना तथा बर्खास्त करना और समय पड़नेपर

मार्शल लाका प्रयोग करना उसीके हाथमें है । युद्धके समयमें उसकी शक्ति बहुत ही अधिक बढ़ जाती है ।

(घ) निर्णायक--शासक विभाग ही मुख्य न्यायाधीशको नियुक्त करता है । उसको यह शक्ति मिली हुई है कि वह चाहे जिस अपराधीका अपराध क्षमा कर दे ।

सभ्य राष्ट्रोंमें प्रायः शासक विभागके अधिकार तथा कार्य्य एक सदृश ही हैं । 'प्रायः' शब्द इसलिए लिखा कि कुछ महत्त्वपूर्ण मामलोंमें उनमें भेद भी है । दृष्टान्तस्वरूप, बचे बचाये शासन संबन्धी अधिकार इंग्लैण्डमें सम्राट्को, अमरीकामें अन्तर्वर्ती राष्ट्रोंको, तथा फ्रान्समें नियामक सभाको प्राप्त हैं । यही कारण है कि अमरीका तथा फ्रांसमें शासक विभाग उसी प्रकारकी आज्ञाओंका प्रचार कर सकता है जो शासनपद्धतिकी धाराओंके अनुकूल हों । इंग्लैण्डमें यही अधिकार सम्राट्का है । अन्य राष्ट्रोंमें शासक विभागको नियमानुकूल चलना पड़ता है परन्तु इंग्लैण्डमें शासक विभाग जो चाहे कर सकता है यदि नियामक सभायें उसको इन बातोंके करनेसे न रोकें । विपत्तिके समयमें इंग्लैण्डको इससे बहुत ही लाभ पहुंचता है । वहांके शासक विभागकी शक्ति युद्ध आदिके दिनोंमें अपरिमित सीमातक पहुंच जाती है । यह लाभ प्रायः अन्य प्रतिनिधितन्त्र राज्योंके शासक विभागको नहीं प्राप्त हैं । *

* बर्गेसलिखित, पोलिटिकल साइन्स एण्ड कान्स्टिट्यूशनल ला, भाग २ पृ० ३१७-१९ ।

चौथा परिच्छेद ।

निर्णायक विभाग ।

§१०१—*निर्णायक विभागका विकास।*

राज्यके निर्णायक विभागका विकास कई तरीकोंसे हुआ है * यही कारण है कि उसके भिन्न भिन्न अंगोंपर पृथक् पृथक् तौर पर प्रकाश डाला जायगा।

(क) निर्णायकविभागके संगठनका विकास—अति प्राचीन कालमें जनताका जीवन बहुत सरल था। राज्य नियम, शासक विभाग तथा निर्णायक विभागका विकास उसमें न हुआ था। पारस्परिक झगड़ोंका शान्त करना राज्य अपना कर्त्तव्य न समझता था। यही कारण था कि पुराने रीति-रिवाजोंको तोड़ना तथा एक दूसरेको नुक्सान पहुंचाना राजनीतिक अपराध न गिना जाता था। व्यक्तिगत मनोमालिन्य तथा पारस्परिक विद्वेषके शान्त करनेका एक तरीका द्वन्दयुद्ध था। अनेक दैवी विधियोंके द्वारा दूसरेके अपराधका पता लगाया जाता था। हाथको गरम लोहेसे जलाना, अग्नि-प्रवेश तथा जलमज्जन आदि अनेक तरीके प्रचलित थे। पारिवारिक झगड़ा बहुत बार बढ़कर पारस्परिक युद्धका रूप धारण कर लेता था परन्तु राज्य हस्तक्षेप न करता था!

शुरू शुरूमें लोक-प्रथाके सम्बन्धमें विवाद उठा। कौनसा रीतिरिवाज ठीक है और कौनसा नहीं-इसका निर्णय

* ढीले लिखित 'दि डेवलप्मेन्ट आफ़ दि स्टेट' पृ० १७५-१८०

कौन करे ? स्वाभाविक ही था कि राज्य इस काममें हाथ डालता, क्योंकि पुराने जमानेमें लोक-प्रथा या रीतिरिवाज-का सम्बन्ध पारिवारिक न था। समाजका समष्टिरूपसे इसके साथ संबंध था। लोक-प्रथाका निर्णायक होनेके बाद राज्य-ने नियमोंकी ओर ध्यान दिया। समय आया जब कि वह राज्य-नियमोंका निर्माता बन गया। सोलन, मनु आदि महा-पुरुषोंका उद्भव ऐसी ही सामाजिक परिस्थितिमें हुआ।

राज्यनियमोंके निर्माण तथा लोकप्रथाके निर्णयके साथ ही राज्यने उनके प्रचारको भी अपना कर्त्तव्य समझ लिया। राज्य तो शुरूसे ही शासनका काम करता था। शासनका आधार पुराने रीतिरिवाज ही थे। जब राज्यने रीति रिवाज-के निर्णय तथा राज्यनियमके निर्माणका काम अपने हाथमें लिया तब यदि वह उनके प्रचारका काम भी अपने हाथमें न लेता तो उसकी स्थिति तथा प्रभुत्व ही क्या रहता? यही कारण है कि इस घटनाके साथ ही साथ राज्यने व्यक्तिगत अपराधोंका निर्णय तथा दण्डका काम भी करना शुरू कर दिया।

कुछ समय तक राज्यके निर्णायक, शासक तथा नियामक काम एक दूसरेसे पृथक् न किये गये। एक ही व्यक्ति किसी न किसी अंश तक सभी कामोंको करता था। फ्यूडलकालमें यूरोपमें और मुसलमानी कालमें भारतमें राज्य-शासनकी यही व्यवस्था प्रचलित थी। परन्तु राज्यके कामोंके बढ़ने-के साथ ही साथ निर्णायक विभाग राज्यके अन्य विभागोंसे पृथक् किया गया। वैयक्तिक संपत्तिके पेचीदे झगड़ोंने भी इस पार्थक्यमें महत्त्वपूर्ण भाग लिया।

उपरिलिखित सम्पूर्ण घटनाएं सहसा ही पैदा न हुईं। बहुत धीरे धीरे राजनीतिक कामोंका विकास हुआ। राज्योंने किसी जमानेमें निर्णायक, शासक तथा नियामक आदि तीनों ही शक्तियोंको अपने हाथमें रखा था। इसके चिन्ह प्रत्येक राज्यमें अब तक विद्यमान हैं। राजाज्ञाओंको उद्घोषित करना तथा राज्यापराधियोंका अपराध क्षमा करना प्रायः सभी राज्योंके अधिकारमें अबतक है। यह अधिकार पुराने अधिकारोंका ही अवशेष है।

अर्वाचीन न्याय--प्रणाली बहुत ही विचित्र है। दीवानी तथा फौजदारी कचहरियां पृथक् पृथक् हैं। प्राचीन काल में भारतके अन्दर यही धर्म स्थीय तथा कंटकशोधनके नामसे प्रसिद्ध थीं। प्रत्येक कचहरीके नीचे अनेक कचहरियां हैं जोकि अपनी अपनी आकृतिके अनुसार छोटे बड़े अपराधों का निर्णय करती हैं। यहां पर ही बस नहीं। भिन्न भिन्न वर्गों तथा भिन्न भिन्न अपराधोंके लिये भी भिन्न भिन्न कचहरियां बनायी गयी हैं। दृष्टान्त स्वरूप सेनाके लिये सैनिक न्यायालय (कोर्ट मार्शल) पारिवारिक तथा वैवाहिक झगड़ोंके लिये संबन्धविच्छेद न्यायालय (डाइवर्सकोर्ट) धार्मिकविवादके लिये धर्म न्यायालय (एक्लीज़ियास्टिकल कोर्ट) तथा विदेशीय व्यापारके लिये व्यापारीय तथा जलसैनिक न्यायालय (कान्स्यूलर एंड एडमिरेल्टी कोर्ट) आजकल बनाये गये हैं। यूरोपीय महाद्वीपमें अन्तर्जातीय झगड़े बहुतही प्रबल हैं। जर्मनीको फ्रांस से डर है और फ्रांसको जर्मनीसे। यही बात रूस, टर्की आस्ट्रिया हंग्री आदि

सभी राष्ट्रोंके लिये सत्य है। प्रत्येक राष्ट्र एक दूसरेसे भयभीत है। इसी भयसे प्रत्येक राष्ट्रमें शासकोंकी शक्ति बढ़ा दीगयी है। जनता पर शासकोंका नियन्त्रण सुदृढ़ रहे इस उद्देश्यसे यूरोपीय महाद्वीपमें शासक न्यायालयों (एडमिनिस्ट्रेटिव कोर्ट) का प्रचार किया गया है। अमरीकामें मुख्य न्यायालय तथा राष्ट्रीय न्यायालय भिन्न भिन्न हैं। इससे वहां निर्णायक विभाग बहुत ही पेंचीदा होगया है।

आजकाल न्यायालय तथा निर्णायक विभाग शासक विभागका ही एक अंश समझा जाता है। पुलिससे लेकर ऊपर तकके राज्य-शासक भिन्न भिन्न व्यक्तियोंको अपराधी ठहराते हैं और उनके अपराधके निर्णयमें राज्यको सहायता पंहुचाते हैं। भारतके सदृश देशोंमें राज्यके उत्तरदायी न होनेसे निर्णायकविभाग अपराधियोंके अपराधके निर्णय करनेमें असमर्थ है। वह राजकीय इच्छाओंका ही प्रतिबिंब है। बहुत बार अपराधियोंको क्या दण्ड देना है इसका निर्णय शासक गण पहलेसे ही करलेते हैं और व्यक्तियोंपर मुकदमा बादको चलाते हैं। मुन्सिफसे लेकर जजोंतक की उन्नति तथा अवनतिके सूत्रधार एक मात्र अंग्रेज शासक हैं। यही अर्थ तृष्णा है जोकि भारतीय न्यायाधीशोंके हृदयोंको पाप तथा अन्यायके कार्य करनेको प्रेरित कर रही है। स्थानीय न्यायालय तो भारतमें शासकविभागका पूर्णरुप से अंग बनगया है। मैजिस्ट्रेट एक ओर न्यायाधीश और दूसरी ओर शासक है। उसको मुसल्मानी जमानेके नव्वाबोंका प्रतिबिंब समझना चाहिये, क्यों कि

यदि कोई व्यक्ति प्रजाको एक ओर अपराधी "ठहरावे और दूसरी ओर उसके अपराधका निर्णय करे तो उससे बढ़कर स्वेच्छाचारी तथा निरंकुश शासक कौन हो सकता है! परन्तु अमरीकामें यह बात नहीं है। वहां राजकीय सेवकों तथा न्यायाधीशोंकी नियुक्तिमें प्रजाका बहुत ही अधिक भाग है। प्रजा जिस व्यक्तिको चाहे राजकीयपदसे पद-च्युत कर सकती है। यही कारण हैं कि वहां न्यायका प्रचार है। शासकगण प्रजाके असंतोष तथा क्रोधके भयसे अन्याय तथा अत्याचारके कार्यों से डरते हैं। लूटमार चोरी डकैती को सर्वथा ही रोकनेके उद्देश से अपने अपने कार्योंमें तत्पर रहते हैं और अपराधियोंको दण्ड दिलानेमें पूरी तैयारीसे काम लेते हैं।

(ख) राज्यनियमोंके सन्मुख व्यक्तियोंकी स्थिति—अति प्राचीन कालमें जनतामें असमानता बहुत ही अधिक थी। ब्राह्मण तो ईश्वरके पुत्र समझे जाते थे और सब प्रकारके अपराधों को करते हुए भी अदंडनीय थे। राजा उनका बाल बांका न कर सकता था। जनतामें उनकी प्रतिष्ठा बहुत ही अधिक थी। यही कारण है कि राजा ब्राह्मणोंको दण्ड देनेमें असमर्थ थे। जिन राजाओंने ब्राह्मणोंको मृत्यु दण्ड दिया उनपर ब्रह्महत्याका पाप मढ़ा गया और उनसे प्रजा इस हद्द तक असंतुष्ट हुई कि प्रायः उनको राजगद्दी छोड़नी पड़ी। ब्राह्मणोंके सदृश ही वैश्यों, क्षत्रियों तथा शूद्रोंके लिये भिन्न भिन्न राज्यनियम प्रचलित थे। परन्तु यह स्थिति देर तक न चल सकी। ब्राह्मणोंने दिनपर दिन बुरे बुरे अपराध करते शुरू किये। धीरे धीरे प्रजामें उनका महत्त्व भी कम हो

गया। बहुतसे विचारकोंका ख्याल है कि रुपये पैसेके लोभसे ही ब्राह्मणोंका अधःपतन हुआ क्योंकि मनुके राज्य-नियमोंके अनुसार कोई भी ब्राह्मण अपने घरमें तीन दिनसे अधिकका भोजन न रख सकता था। चाणक्यके बहुत पूर्व ही ब्राह्मण वर्ग व्यापार आदिके काममें लीन हो गये थे। राजकीय सेवाओंके लोभने भी उनको वशीभूत कर लिया था। यही कारण है कि चाणक्यके समयमें उनको खानोंमें निर्वासित किये जानेका दण्ड दिया जाने लगा। यही बात अन्य वर्गके लोगोंके साथ हुई। क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रको समान अपराधके लिये असमान दण्ड दिया जाने लगा। परन्तु दण्डसे मुक्त कोई भी न किया गया। भारतके सदृश ही प्राचीन कालमें यूरोपकी दशा थी। वहां भी असमानता विद्यमान थी। राज्यनियमोंके सामने सर्व व्यक्ति समान न थे। दासताके कारण यह बात और भी अधिक बढ़ गयी थी। स्त्रियोंका तथा बालकोंका कुछ भी अधिकार न था। पति जिस ढंगका चाहे स्त्रियोंके साथ व्यवहार करे और पिता बालकोंको जिधर चाहे भेजे। समाज भिन्न भिन्न श्रेणीके लोगोंमें विभक्त था जिनके भिन्न भिन्न अधिकार थे। मध्य कालमें तो पादरियोंकी स्थिति बहुत ही ऊंची हो गयी। वे राज्यकी शक्तिसे पृथक पृथक हो गये। उनके अपने कानून और अपने न्यायालय बन गये। एक ही राष्ट्रमें दो प्रकार-का राज्य चलने लगा। पादरियोंके लिये धर्म्म राज्य और प्रजाके लिये साधारण राज्य। परन्तु यह द्वित्वराज्य कब-तक चल सकता था?

यूरोपमें प्रजातन्त्र राज्यके प्रचारके साथ ही साथ

समानताका सूत्र काममें लाया गया। श्रेणी-राज्यके स्थानपर लोकराज्य प्रचलित हुआ। प्रत्येक नागरिक राज्यनियमोंके सामने समान माना गया। पुराने जमानेकी असमानता अब भी किसी अंश तक बची हुई है। यही कारण है कि प्रायः धनाढ्य अपराध करते हुए भी राज्यनियमोंसे बच जाते हैं। उनके लिये राज्यनियम उतने सख्त नहीं हैं जितने कि दरिद्रोंके लिये। यही बात भारतमें अब तक मौजूद है। ताल्लुकेदार किसानोंके साथ भयंकर अत्याचार करते हैं और रुपयोंके बलपर राज्यापराधसे बच जाते हैं। अंग्रेजोंके अपराधके लिये तो भारतमें कोई दण्ड ही नहीं है। वे भारतीय कुलियोंको जानसे मार डालते हैं परन्तु उनको प्रायः कुछ भी दण्ड नहीं मिलता। सारांश यह है कि सभी राष्ट्रोंमें न्यायालयोंने राज्यनियमके सन्मुख व्यक्तियोंकी समानता मानी है। परन्तु चूंकि उनका उद्भव उस समाजमें हुआ जिसमें कि प्राचीन कालमें अराजकताका नियम ही काम करता था, यही कारण है कि अब तक पूर्ण समानता नहीं उत्पन्न हुई। भारतमें अंग्रेजोंका शासन है और वे हैं विदेशी इस दशामें अन्यायका होना स्वाभाविक हीं है।

(ग) दण्ड—विधि—अपराधियोंके अपराधनिर्णयके तरीकोंमें भी पर्याप्त भेद आगया है। आगमें जलाकर, जलमें डुबाकर तथा अनेक प्रकारके अत्याचारों द्वारा अपराधका पता लगाना आजकल असभ्यताका चिन्ह समझा जाता है। एक दूसरे व्यक्तिके अपराधको द्वन्द्व-युद्धके द्वारा निर्णय करना भी अब लोगोंको पसन्द नहीं है। पुलिस तथा खुफिया पुलिसकी संस्थाको दूढ़कर व्यक्तियोंके अपराधोंका

जांचना राज्यने अपना कर्त्तव्य समझ लिया है । जहां यह संभव नहीं है वहां साक्षियोंसे सहारा ले लिया जाता है । इन सब सुधारोंके होते हुए भी पुराने जमानेके चिन्ह अब तक सभी राष्ट्रोंमें मौजूद हैं । खून करनेके बदले अपराधियों-को फांसीपर चढ़ाना कौनसा न्यायका काम है ? क्या यह पुराने जमानेके बदलेका रूपान्तर नहीं है ? अति प्राचीन कालमें इंग्लैण्डमें अपराधियोंको समान अपराधके लिये समान दंड भुगतना पड़ता था । जो किसी दूसरे व्यक्तिके हाथको चोट पहुंचाता था उसका हाथ काट दिया जाता था और जो दूसरेको जानसे मार डालता था वह फांसी-पर चढ़ाया जाता था या अन्य बहुतसे तरीकोंसे मारा जाता था । अर्वाचीन फांसीका दंड इसी दंडका विकसित रूप है । न्याय तो यह कहता है कि यदि किसी व्यक्तिने अप-राध किया है तो उसको सुधारना चाहिये । उसके जीवनको इस हद्दतक पवित्र बनानेका यत्न करना चाहिये कि वह समाजके लिये उपयोगी बन सके । जुरमानेका दंड भी पुराने जमानेके न्यायका सूचक है । अपराधके बदले रुपया लेना कौनसा न्याय है ? क्या अपराधोंका भी कोई मूल्य है ? और उस मूल्यको किसने निश्चित किया, इत्यादि प्रश्नोंका उत्तर ही इस बातको सूचित कर देगा कि इसका भी विकास बदलेसे है । यह सब होते हुए भी अर्वाचीन राष्ट्र बहुत कुछ उन्नति कर रहे हैं । उन्होंने रिफार्म स्कूलोंके द्वारा बालकोंको पाप-कर्मकी ओरसे रोका है । जेलोंका पैशाचिक रूप नष्ट कर उनको मनुष्योंके निवासके योग्य बनाया है । राजनीतिक अपराधियोंको विशेष सुविधाएं दी जाती हैं । मतभेदसे जहां

राष्ट्र-नाशकी सम्भावना है वहां निर्वासनके दंडका प्रयोग किया है। संसारके किसी भी राष्ट्रमें वह रह सकता है और अपने विचारोंको पुस्तकाकार कर सकता है। जो कुछ उसको दंड दिया गया वह यही है कि वह एक विशेष राष्ट्र का नागरिक नहीं बन सकता। फ्रेडरिक लिस्ट, मेजनी आदि महापुरुष यदि फांसीपर चढ़ा दिये जाते तो संसारका कितना नुकसान होता। निस्सन्देह उनको अपनी मातृभूमिसे चिरकाल तक पृथक् रहना पड़ा, परन्तु अन्तमें उन्होंने अपनी मातृभूमिके उद्धारके लिये जो कार्य किया वह भुलाया नहीं जा सकता। रूसका सूत्रधार लेनिन चिरकाल तक प्रवासमें रहा परन्तु आज संसारके महापुरुषोंमें वह भी एक गिना जाता है। ये सब दृष्टान्त इस बातके सूचक हैं कि दंड-विधिमें संसारने कितनी उन्नति की।

§ १०२—निर्णायक विभागका कार्य तथा स्वरूप।

लोक प्रथा, राज्यनियम तथा राजाज्ञाओंके अनुसार ही न्यायालय अपराधका निर्णय करते हैं। ये इस बातका पता लगाते हैं कि अमुक अपराध किन किन प्रमाणोंपर आश्रित है। साक्षियोंका क्या मत है और वे कहां तक प्रामाणिक हैं। भिन्न भिन्न श्रेणीके स्वार्थोंका इसके साथ क्या संबन्ध है। बहुत बार यह हो जाता है कि विशेष प्रकारके अपराधमें कोई भी राज्यनियम नहीं लगता और न्यायाधीशको अपने विवेकसे काम लेना पड़ता है। पूर्ववर्ती नियमोंके तात्पर्यको सामने रखकर ही न्यायाधीश फैसला करते हैं। अच्छे अच्छे न्यायाधीशोंका

फैसला प्रामाणिक समझा जाता है और तत्सदृश मुकदमोंमें राज्यनियमके सदृश काममें लाया जाता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि न्यायालय पुराने राज्यनियमोंके अनुसार चलते हुए विशेष विशेष अवस्थाओंके लिये नये नये राज्यनियम भी बनाते हैं। इंग्लैण्ड तथा अमरीकामें न्यायाधीशनिर्मित कानून विशेष तौरपर प्रामाणिक माने जाते हैं और यही कारण है कि वकीलोंको इनका अध्ययन विशेष तौरपर करना पड़ता है। न्यायाधीशोंका कर्त्तव्य-क्षेत्र भी इसी कारण पूर्वापेक्षा बढ़ गया है और उनमें निम्न लिखित दो गुणोंका होना आवश्यक हो गया है।

(क) राज्यनियमोंका पूर्ण अध्ययन—न्यायाधीशोंको राज्यनियमों तथा पूर्व न्यायाधीशके निर्णयोंका ज्ञान पूरे तौरपर होना चाहिये। इसी उद्देश्यसे आजकल वे वकील मुख्य न्यायाधीशके तौरपर चुने जाते हैं जिनका ज्ञान विस्तृत हो, जिनका अध्ययन परिपूर्ण तथा गंभीर हो और जो अपने विवेकसे अच्छी तरह काम लेसकें। न्यायाधीशोंकी अयोग्यताको आजकल कोई भी पसन्द नहीं करता। लोकतंत्र राज्योंमें तो इस ओर विशेष ध्यान दिया जाता है। योग्यसे योग्य व्यक्ति ही मुख्य न्यायाधीश चुना जाता है।

(ख) निष्पक्ष होना—न्यायाधीशोंका आराध्य देव न्याय है। श्रेणी युद्धों, तथा राजनीतिक विवादोंसे उनका न प्रभावित होना आवश्यक है। उनकी तनखाह इतनी अधिक होनी चाहिये कि पारिवारिक व्यय उनको पापकी कमाईके लिये उत्तेजित न करें। उनका पद इतना स्थिर होना चाहिये

कि शासकोंकी धमकीका उनपर कुछ भी असर न हो सके। जहांतक हो सके, किसी भी राजकीय विभागसे उनका लगाव न हो।

अमरीकन राष्ट्र न्यायाधीशोंके मामलेमें बहुत ही पीछे हैं। उनमें उनकी तनखाहें कम हैं और उनका पद अस्थिर है। थोड़े समयके लिये ही वे जनता द्वारा चुने जाते हैं। स्वाभाविक ही है कि वे न्यायको स्वार्थपर बलि चढ़ादें। राजनीतिक विवादों तथा श्रेणी युद्धोंमें उनका भाग लेना भी बहुत संभव है। बहुत बार ऐसा हो भी जाता है। महाशय ब्राइसने ठीक लिखा है कि कई रियासतोंमें ऐसे मनुष्य न्यायाधीशके तौरपर चुने गये हैं जिनको कि जेलमें भेजना चाहिये। यह भी प्रायः देखनेमें आया है कि लोग पापकी कमाई कर किसी तरीकेसे अपने आपको न्यायाधीशके तौरपर चुनवा लेते हैं और इस प्रकार अपने अपराधोंका दण्ड न भुगतकर मौज उड़ाते हैं।

इंग्लैण्डमें न्यायालय विभागका बहुत महत्त्व है। परन्तु इसके साथ ही साथ वह शासक विभागपर निर्भर है। शासक विभागकी इच्छाओंके अनुसार ही उसको निर्णय करना पड़ता है। नियामक विभाग जिस जिस प्रकार राज्यनियम बदले उसको उन्हींके अनुसार फैसला देना होता है। शासक जिनका मुकद्दमा उसके सामने पेश करते हैं और उनके अपराधमें जो युक्तियां देते हैं उसीके अनुसार वह निर्णय करता है। यह सब होते हुए भी इंग्लैण्डमें न्यायका अधिक प्रचार है और शासकोंका स्वेच्छाचार तथा निरंकुश शासन बहुत कम है। शासक विभागपर यदि निर्णायक

विभाग इंग्लैण्डमें निर्भर न रहता तो निर्णायक विभागका स्वेच्छाचार वहां बहुत बढ़ जाता ।

§१०३—निर्णायक विभागका शासक विभागके साथ संबंध ।

निर्णायक विभागका शासक विभागके साथ क्या संबंध है, इसका विचार करनेसे पूर्व निम्नलिखित दो बातोंपर विचार करना अत्यन्त आवश्यक है ।

(क) शासक विभागकी निर्णायक शक्ति कितनी है और उसका निर्णायक विभागपर नियन्त्रण किस हद्द तक है ?

(ख) निर्णायक विभागकी शासक शक्ति कितनी है और उसका शासक विभागपर नियन्त्रण किस हद्द तक है ?

उपरिलिखित दोनों प्रश्नोंमेंसे पहला प्रश्न तो इतिहासके साथ सम्बद्ध है । यह शासक विभागकी अपरिमित शक्तिको सूचित करता है । दूसरा प्रश्न भिन्न भिन्न राष्ट्रोंकी स्थितिके साथ जुड़ा हुआ है । भिन्न भिन्न राष्ट्रोंमें व्यक्तिगत स्वतन्त्रताका क्या तात्पर्य्य लिया जाता है ? शक्ति-संविभागके सिद्धान्तका उनमें कहांतक प्रयोग है ? इत्यादि बातोंपर ही दूसरे प्रश्नका उत्तर निर्भर है ।

शासक विभागका यदि निर्णायक विभागपर नियन्त्रण है तो वह केवल इसी लिये कि निर्णायक विभागके निर्णयोंको काममें लाना शासक विभागके ही अधीन है । उसके अतिरिक्त एक और बात है जो कि शासक विभागको निर्णायक विभागपर महत्त्व देती है । शासक विभाग ही निर्णायक विभागके कर्मचारियोंको नियुक्त करता है । नियुक्तिके बाद न्यायाधीश शासक विभागके नियन्त्रणमें नहीं रहते चूंकि

उनका पद स्थिर होता है और उनको पदच्युत करना शासक विभागके हाथमें नहीं रहता। अमरीकामें जोन्हमार्शल मुख्य न्यायालय (सुप्रीम कोर्ट) का न्यायाधीश नियुक्त किया गया। इसने लोक तन्त्र राज्यके मामलेमें अपने बहुत से निर्णय किये और विपक्षी दलकी कुछ भी परवाह न की।

शासक विभागके पास आजकल जो निर्णायकशक्ति है वह भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। स्थलसेना, नौसेना, राजकीय सेवक आदिके अपराधोंका निर्णय तथा भिन्न भिन्न व्यक्तियोंको पदच्युत करना तथा उन्नति देना शासकविभागके ही हाथमें है। देशद्रोह तथा जनविक्षोभमें मार्शललाका प्रयोग करना भी इसीके ही हाथमें है। ऐसे समयोंमें यह क्या क्या कर सकती है, इसका ज्ञान पंजाबके मार्शल लासे अच्छी तौरपर हो सकता है।

शासक विभागकी उपरिलिखित भयानक शक्तिसे बचनेके लिये भारतीयोंके पास कोई उपाय नहीं। अंग्रेज स्वार्थसे प्रेरित होकर जब चाहें इन शक्तियोंका प्रयोग कर सकते हैं। परन्तु यूरोपीय जनताकी स्वतन्त्रता भारतीयोंके सदृश अरक्षित नहीं है। उन्होंने शासन पद्धतिकी धाराओंमें अपने संरक्षणके लिये कुछ शर्तें रख ली हैं। न्यायालयका अपमान (Contempt of Court) भी आजकल एक अपराध समझाजाता है। यह उस ऐतिहासिक तन्त्रको सूचित करता है कि न्यायालओंके पास किसी जमानेमें शासनकी शक्तिकी और उसकी भी अपनी एक प्रतिष्ठा थी। अर्वाचीन शासक अपराध क्षमा कर सकते हैं यह उनकी निर्णायक शक्तिका सूचक है।

यूरोपीय महाद्वीपके शासक शक्तिशाली हैं । वहांकी परिस्थितिही ऐसी है कि उनको शक्तिशाली बनना आवश्यक है । शासक न्यायालयोंके द्वारा ही वहां शासकोंके अपराधका निर्णय किया जाता है । इंग्लैण्ड तथा अमरीकामें यह बात नहीं है । इन देशोंमें शासकगण अपने कार्य्योंके लिये साधारण न्यायालयोंके प्रति उत्तरदायी हैं । यदि न्यायालय यह समझे कि उन्होंने अपने कर्त्तव्य का अति-क्रमण किया है और अपनी शक्तिका दुरुपयोग किया है तो उनको वह दण्ड दे सकता है । राजा तथा प्रधानके लियेही दोनों देशोंमें उस मामलेमें नियम बदला गया है । इंग्लैण्डमें राजा निर्दोष समझा गया है और अमरीकामें प्रधानपर दोषारोपण करनेके लिये नि-यामक सभाओंको ही मुख्य न्यायालयका रूप धारण करना पड़ता है । अमरीका तथा इंग्लैण्डमें स्थल तथा जलसेनाके नायक तथा उच्चराज्याधिकारी भी अपने अपने कार्य्योंके लिये साधारण न्यायालयोंके प्रति उत्तरदायी हैं । यदि उन्होंने कोई काम अपने ऊपरके अधिकारीकी आज्ञासे भी किया है तो भी उनको न्यायालय दण्ड दे सकता है । सारांश यह है कि दोनों ही देशोंमें शासन तथा सैनिक प्रबन्ध नागरिक प्रबन्धके अन्दर ही समझा जाता है । राष्ट्रके नियमोंका कोई भी अति क्रमण नहीं कर सकता है ।

ऐंग्लो सैक्सन्स जातिने वैयक्तिक स्वतन्त्रताको बचानेके लिये, जो जो उपाय किये हैं उनपर प्रकाश डाला जा चुका है । इन उपायोंका ही यह प्रभाव है कि उनमें निर्णायक विभाग की शक्ति बहुत ही अधिक है । वह शासकोंको जिस कामके करनेसे चाहें रोक सकती हैं और जिधर चाहें मोड़ सकती हैं ।

परन्तु यूरोपकी दशा बड़ी विचित्र है। यूरोपके राष्ट्रोंका ध्यान वैयक्तिक स्वतन्त्रताकी ओर बहुत नहीं है। वे राज्य को सुदृढ़ बनाना चाहते हैं। उनका ख्याल है कि शासकोंके लिये बहुत बार यह आवश्यक हो जाता है कि वे साधारण नियमों का पालन न करें। इसलिये उचित यही है कि योग्य योग्य शासकोंका एक शासक न्यायालय बनाया जाय और उन्हीं के सामने उनके अपराधका निर्णय हो। इस एक बातने ही यूरोपमें नये नये नियमोंकी सृष्टि की है। वहां शासकोंके लिये साधारण नागरिकोंसे भिन्न राज्यनियम बनाये गये हैं। न्यायका सिद्धान्त शासकोंके लिये एक भिन्न विधिपर ही प्रयुक्त किया गया है। शासनकी स्थिरताके लिये कौन कौनसी बातें आवश्यक हैं, देशकी राजनीतिक स्थिति कैसी है, किन किन बातोंका राष्ट्रको खतरा है, कौन कौनसी बातोंका पालन होना राष्ट्रके लिये जरूरी है इत्यादि बातोंको सामने रखकर ही शासक-न्यायालय शासकोंके अपराधका निर्णय करते हैं। यूरपमें शासक-न्यायालय तथा साधारण न्यायालय अपना अपना काम करते हैं। एकमें शासकोंका और दूसरेमें नागरिकोंका निर्णय होता है।

फ्रान्समें ही पहले पहल शासक न्यायालयोंका विकास हुआ। वहां शुरू शुरूमें शासक विभाग बहुत ही शक्ति शाली था। राजाओंको न्यायालयोंका हस्तक्षेप पसन्द न था। अच्छे घरानेके लोग ही न्यायाधीशके पदपर विद्यमान थे। मान्टस्क्यूके शक्ति संविभाग सिद्धान्तका अर्थ वहां दूसरा ही लगाया गया। निर्णायक विभाग तथा शासक विभागके पार्थक्यको पूरे तौरपर काममें लानेके लिये संवत् १८४६ (सन् १७८९) के

बाद प्रत्येक राज्यने शासकोंके लिये शासक न्यायालय बनाये और साधारण न्यायालयोंके हस्तक्षेपसे उनको पृथक् कर दिया। फ्रान्सकी देखा देखी यूरोपके अन्यराष्ट्रोंने भी साधारण न्यायालयोंसे शासक न्यायालयोंको जुदा किया। यह पूर्व ही लिखा जा चुका है कि अमरीकामें वैयक्तिक स्वतन्त्रताका बहुत ही ख्याल है और यही कारण है कि वहां यूरोपके सदृश शासक तथा नागरिकके लिये पृथक् पृथक् न्यायालय नहीं हैं। इसका यह मतलब नहीं है वहांके निवासी शासकोंकी शक्तिसे सर्वथा ही बच गये, क्योंकि वहां पर शासकोंके नीचे कुछ ऐसी संस्थायें तथा कमीशन काम करते हैं जो कि अपने निर्णयोंको किसी हद तक राष्ट्रमें प्रचलित करा देते हैं।

न्यायालयोंकी आंग्ल-अमरीकन तथा यूरोपीय विधियों के कुछ लाभ और कुछ दोष हैं। इंग्लैण्ड तथा अमरीकामें वैयक्तिक स्वतन्त्रता सुरक्षित है और योरुपमें शासन सुदृढ़ तथा सूक्ष्म है। यूरोपमें कभी कभी दोनों ही न्यायालयोंमें झगड़ा हो जाता है। बहुतबार दोनों ही न्यायालय अपराधी को अपने कार्यक्षेत्रमें और कभी कभी अपने कार्यक्षेत्रसे बाहर समझ बैठते हैं। ऐसे विवादोंके निर्णयके लिये भी वहां नियम बनाये गये हैं परंतु इससे देर बहुत हो जाती है। राज्यका धन भी बहुत खर्च होता है। शासक न्यायालयमें एक यह भी दोष है कि राज्यकी नीतिके बदलते ही उनको बहुतसे अन्याययुक्त कामोंको करना पड़ता है। भिन्न भिन्न राष्ट्रोंका कार्यक्रम देखनेसे यही परिणाम निकला है कि शासक न्यायालयों के द्वारा शासकोंकी शक्ति बहुत ही अधिक बढ़ जाती है।

§ १०५ निर्णायकविभागका नियामकविभागके साथ संबन्ध-

निर्णायक विभाग राज्यनियमोंको नहीं बनाता। यह काम नियामक विभागका ही है। निर्णायक विभागका जो कुछ काम है वह यही है कि नियामक विभाग द्वारा बनाये गये नियमोंके अनुसार अपराधियोंका निर्णय करे। इस प्रकार स्पष्ट है कि निर्णायक विभाग नियामक विभागपर निर्भर है। नियामक विभागकी स्वीकृतिसे ही निर्णायक विभाग की रचना की जाती है। यदि कहींपर यह बात नहीं है तो वह एक मात्र अमरीकामें ही। अमरीकामें शासनपद्धतिकी धाराओं के अनुसार निर्णायक विभाग एक स्वतन्त्र विभाग है। परन्तु अन्य राष्ट्रमें नियामकविभागही निर्णायक विभागको नियुक्त-करता है और वही अन्तमें उसको नष्ट कर सकता है। उसका संशोधन तथा उसके रूपका परिवर्तन आदि भी वहां नियामक विभागके ही हाथमें है। शासन पद्धतिकी धाराओंके अनुसार अमरीकामें निर्णायक विभागका पृथक् अस्तित्व होते हुए भी उसका संगठन कांग्रेस ही करती है। कांग्रेस चाहे तो एक एक न्यायालयको नष्ट करते हुए सारेके सारे निर्णायक विभागको ही खतमकर दे।

कुछ राष्ट्रोंमें नियामक सभाओंकी प्रथम सभाके हाथमें किसी अंशतक निर्णायक शक्ति दी गयी है। उसका मुख्यकारण ऐतिहासिक है, अर्थात् प्रारम्भसे ही उनके पास यह शक्ति मौजूद है। कहां कहां तथा किन किन मामलोंमें वह अपनी निर्णायक शक्तिका प्रयोग कर सकती है इसपर बहुतही अधिक मत-भेद है।

इंग्लैण्डमें लार्ड सभाही मुख्य न्यायालय समझी जाती है। अन्तिम प्रार्थनाओंका निर्णय वही करती है । वस्तुतः लार्ड चान्सलर ही निर्णयका काम करता है वह कामन्स सभा अर्थात् प्रतिनिधि सभाका सभ्य हो सकता है । दोषारोपणका काम भी लार्ड सभामें ही होता है परन्तु आजकल इसका प्रयोग नहीं रहा, क्योंकि सचिवमंडल लोक-सभाके प्रति उत्तरदायी होगया है। अमरीकाके राजनीतिक सूत्रधार शक्तिसंविभाग सिद्धान्तके अनुगामी थे । यही कारण है कि उन्होंने सीनेटकी निर्णायक शक्तिको बहुत अधिक नहीं बढ़ाया। वह केवल यही कर सकती कि है राज्याधिकारियोंके अपराधोंका निर्णय करे और अपराध सिद्ध होनेपर उनका पदच्युत कर दे । दोषारोपणकी शक्तिका प्रयोग प्रायः बहुतही कम किया जाता है । इससे निर्णायक तथा शासक विभाग पृथक पृथक अपना काम करते हैं और किसीकी भी शक्तिको धक्का नहीं पहुंचता । लड़ाईसे पहले जर्मन वन्देस्राथको दोषारोपणकी शक्ति न प्राप्त थी । जो कुछ वह कर सकती थी वह यही था कि राष्ट्रको राज्य विप्लव तथा विक्षोभसे बचावे । फ्रांसकी सीनेट दोषारोपण कर सकती है और उसकी शक्ति इस मामलेमें बहुत ही अधिक है। वह राज्यके प्रत्येक कर्मचारी तथा नागरिकके अपराधका निर्णय कर सकती है और राष्ट्रके लिये जिस व्यक्तिको खतरनाक समझे उसको दण्ड दे सकती है। आम तौरपर यह शक्ति काममें नहीं आती है, क्योंकि फरांसीसी प्रधान तथा सचिवमंडल प्रतिनिधि सभाके प्रति उत्तरदायी है और साधारण न्यायालयोंको प्रत्येक नागरिक के अपराधोंके निर्णय करनेका अधिकार मिला हुआ है ।

बहुतसे राष्ट्रोंमें मुख्य न्यायालयोंको यह अधिकार मिला हुआ है कि वे नियामक सभाके द्वारा पास किये गये राज्यनियमोंको रद्द करदें बशर्ते कि वे उनको शासनपद्धतिकी धाराओंके प्रतिकूल समझें। अमरीकामें यह अधिकार चहुतसमयसे काममें लाया गया है। इंग्लैण्डमें बड़े न्यायालय छोटे न्यायालयोंके निर्णयोंको रद्द कर सकते हैं। लड़ाईसे पहले जर्मनीमें राष्ट्रीय न्यायालयके निर्णयोंका यह कहकर रद्द कर देते थे कि वे राष्ट्रीय शासनपद्धतिकी धाराओंके अनुकूल नहीं हैं। कनाडा तथा आस्ट्रेलियामें निर्णायक विभाग पार्लमेन्टके नियमोंका तात्पर्य लगाकर इसी ढंगकी शक्तिको काममें लाते हैं। यह सब होते हुए भी उपरिलिखित देशोंमें कोई भी न्यायालय नियामक सभाके नियमोंको रद्द नहीं कर सकता है। इंग्लैण्ड, फ्रांस तथा जर्मनीकी नियामक सभाओंके द्वारा पास किये गये प्रस्ताव राज्य नियम हो जाते हैं। उनको कोई अन्य विभाग रद्द नहीं कर सकता है, चाहे वह पुरानी शासनपद्धतिको धाराओंके प्रतिकूल क्यों न हो। स्विटजर्लैण्डकी शासनपद्धतिकी धाराओंमें तो यह स्पष्ट शब्दोंमें लिखा हुआ है कि नियामक सभाके द्वारा पास किये गये प्रस्ताव ही राज्य नियम समझने चाहिये। उनको कोई भी पलट नहीं सकता है।

परन्तु अमरीकामें यह बात नहीं। राष्ट्रीय न्यायालय राष्ट्रीय नियामक सभाओंके पास किये हुए राज्य नियमोंको यदि वह उनको राष्ट्रीय शासनपद्धतिकी धाराओंके प्रतिकूल समझे रद्दकर सकता है। यहांपर ही बस नहीं। मुख्यराज्य भी राष्ट्रीय नियामक सभाओंके नियमोंको यदि उसके विचार-

में वे शासनपद्धतिकी धाराओंके प्रतिकूल हैं रद्द कर सकता है। अमरीकाकी शासनपद्धतिमें निर्णायक विभागकी इस शक्तिका उल्लेख नहीं है। न्यायालयोंने धीरे धीरे यह शक्ति प्राप्त कर ली। इसबात पर इंग्लैण्डमें भी विवाद उठ चुका है कि यदि पार्लमेन्टका कोई कानून अन्याय युक्त है और पुरानी शासन पद्धतिके सर्वथा ही प्रतिकूल है तो क्या न्यायालय उसको काममें न लावें। अभी तक वहां न्यायालयको यह शक्ति नहीं दी गयी है। इससे विपरीत वहांपर यह राज्यनियम बनाया गया है कि पार्लमेन्टके कार्योंपर न्यायालय कुछ भी वाद विवाद नहीं कर सकते। उनको उसके अनुसार काम करना ही पड़ेगा। उपनिवेशोंके नियामक विभाग यदि चार्टर द्वारा प्राप्त अधिकारका अतिक्रमण करें और नये नये राज्यनियम बनावें तो उनको ग्रेटब्रिटनके न्यायालय रद्द कर सकते हैं।

अमरीकामें संघराज्यकी स्थापनासे बहुत पूर्व ही नियामकविभाग द्वारा पास किये गये राज्यनियमोंको न्यायालय रद्द कर चुके हैं। न्यूजर्सीमें संवत् १८३७ (सन् १७८०) के अन्दर हाल्मस तथा वाल्टनके मामलेमें यही बात की गयी थी। संघराज्यके इतिहाससे यह मालूम पड़ता है अमरीकामें मुख्य न्यायालयोंको शनैः शनैः यह अधिकार दिया गया है कि वे राष्ट्रीय नियामक विभागके पास किये गये राज्य नियमोंको यदि वे संघराज्यकी शासनपद्धतिकी धाराओंके प्रतिकूल हों रद्द कर दें। मार्बरी तथा मैडीसनके मामलेमें संवत् १८६० (सन् १८०३) में मुख्य न्यायालयने कांग्रेसके पास किये गये कानूनको यह कहकर रद्द कर दिया कि वह शासनपद्धतिकी

धाराओंके प्रतिकूल है। संवत् १८६७ (सन् १८१०) में फ्लैचर तथा पैकके मामलेमें राष्ट्रीय नियामक सभाके नियम रद्द कर दिये गये। संवत् १९०८ में भी ऐसी घटनायें हुईं। संवत् १९१४ (सन् १८५७) में ड्रेडस्काट्के अभियोगमें न्यायालय विभागने अपरिमित शक्ति प्रगट की। गृहयुद्धके बाद लीगल टण्डरकेस, सिविल राइट्सकेस, इञ्कम टैक्स केस, तथा दि इन्सुलरकेस आदि महत्त्व पूर्ण अभियोग हैं जिनमें कांग्रेसके अधिकारोंपर हस्तक्षेप किया गया। अमरीकामें मुख्यराज्यके न्यायालय जो निर्णय करते हैं उसके अनुसार राष्ट्रोंको अपने राज्यनियम परि- वर्तन करने पड़ते हैं।

मुख्य न्यायालयोंकी नियामक शक्तिपर प्रभुत्व होनेसे अमरीकामें राज्य नियमोंके बनानेमें नियामक विभाग साव- धानीसे काम लेते हैं। राष्ट्रीय नियामक सभाएं भी प्रमाद नहीं करती हैं। इससे अमरीका निवासियोंमें अपनी पुरानी शासनपद्धतिके प्रति श्रद्धा बढ गयी है। मुख्य न्यायालयके अनुसार राज्य नियमोंमें संशोधन कर दिया जाता है।

अमरीकामें मुख्य न्यायालय अपना निर्णय तबतक नहीं दे सकते हैं जब तक कि उनसे पूछा न जाय या उनके सामने कोई ऐसा अभियोग न आजाय जिसमें उनको नियामक सभाके नियमके विरुद्ध अपनी सम्मति देनी पड़े। यह सब होते हुए भी एकमात्र नियम विरुद्ध निर्णयपर राज्य नियम खण्डित नहीं हो जाता। अमरीका निवासी अपने न्यायालयोंको आदर बुद्धिसे देखते हैं। यही कारण है कि सबके सब राजनीतिक दल न्यायालयके निर्णयके सामने सर झुकाते हैं और पुराने बने नियमोंको रद्दकर देते हैं।

§१०५—निर्णायक विभागका संगठन ।

यूरोपके भिन्न भिन्न राष्ट्रोंमें तथा अमरीकामें निर्णायक विभागका संगठन निम्न लखित प्रकार है।

(क) इंग्लैण्ड—इंग्लैण्डमें शुरूसे ही निर्णायक विभाग संगठित था। न्यायाधीश स्थान स्थानके झगड़ोंका फैसला करनेके लिये भ्रमण करते थे। वेस्ट मिनिस्टरके चान्सरी न्यायालय (Court of Chancery) का निर्णय सारे इंग्लैण्डमें माना जाता था। संवत् १९३०-३६ (सन् १८७३-१८७९) के निर्णायक विभाग संबंधी राज्यनियमोंके अनुसार स्थानीय न्यायालयोंका प्रचार किया गया। इससे भ्रमणकारी न्यायालयों तथा न्यायाधीशोंकी बहुत ही कम जरूरत रह गयी। आजकल इंग्लैण्डके निर्णायक विभागका संगठन निम्नलिखित प्रकारका है। इंग्लैण्डकी लार्ड सभा ही साम्राज्यका सबसे बड़ा न्यायालय है। लार्ड चान्सलर चार राज्यनियमके प्रतिनिधि लार्डों (law lords) के साथ न्यायालयके रूपमें बैठता है और विवादग्रस्त मामलोंपर अपना अन्तिम निर्णय देता है। इसके बाद प्रार्थना-न्यायालय (Court of Appeal) तथा हाईकोर्ट (High Court of Justice) की स्थिति है। हाईकोर्ट विवाह-संबन्ध-विच्छेद-विभाग, जल-सेना-विभाग तथा राजकीय विभाग आदि अनेक विभागोंमें विभक्त है। चान्सरी तथा राजकीय विभागके न्यायाधीश महामंत्रीकी अनुमतिसे सम्राट्की ओरसे चुने जाते हैं और शेष न्यायाधीशोंकी नियुक्ति लार्ड चान्सलर ही करता है। सबसे नीचे दर्जेपर मांडलिक न्यायालय तथा शान्ति स्थापक न्यायालय हैं। शान्तिस्थापक न्यायालयको एक प्रकारकी

पञ्चायत ही समझना चाहिये, क्योंकि इसके न्यायाधीश विना तनखाहके ही काम करते हैं और छोटे मोटे झगड़ोंको सुगमतासे ही निपटा देते हैं। फौजदारी मुकदमेंका निर्णय इंग्लैण्डमें प्रायः जूरी द्वारा ही होता है। दीवानी मुकदमोंमें जूरी पद्धति इंग्लैण्डमें उठती जाती है। यदि परस्पर विरोधी दोनों ही दल जूरी द्वारा निर्णय कराना चाहें तो जूरी द्वारा ही निर्णय होता है।

(ख) फ्रान्स-फ्रान्समें शासक न्यायालय तथा नागरिक न्यायालयका प्रचार है। शासकोंके अपराधका निर्णय शासक न्यायालय ही करते हैं। नागरिकोंके पारस्परिक झगड़े नागरिक न्यायालयोंके द्वारा ही तय होते हैं। फ्रान्समें शासक न्यायालय बहुतसे हैं। वहां मुख्य शासक न्यायालय राष्ट्रसभा (Council of State) के नामसे पुकारा जाता है। शासक संबन्धी विवादोंमें अन्तिम निर्णय यही सभा देती है। इसके नीचे अनेक छोटे मोटे शासक न्यायालय हैं जो अपनी अपनी स्थितिके अनुसार भिन्न भिन्न अभियोगोंका फैसला करते हैं। नागरिक न्यायालयोंमें फ्रान्सके अन्दर पैरिसकी सैशन कोर्ट ही मुख्य है। इसके नीचे कई प्रार्थना न्यायालय (Courts of Appeal) हैं। स्थानीय न्यायालयों तथा स्थानीय विकट प्रश्नोंका निर्णय यही न्यायालय करते हैं। शान्ति न्यायाधीश (Justice of Peace) छोटे छोटे अभियोगोंका ही फैसला करता है। सबके सब न्यायाधीश नामको तो प्रधानके द्वारा और वस्तुतः न्याय सचिव (Minister of Justice)के द्वारा नियुक्त होते हैं। यदि अभियोगके मामलेमें शासक तथा नागरिक न्यायालयका

आपसमें विवाद हो तो इसका निर्णय विवाद निर्णेता (Tribunal of courts) ही करता है। फ्रान्समें दीवानी मुकदमोंके अन्दर जूरी नहीं बैठायी जाती। न्यायाधीश ही दीवानी मुकदमोंका निर्णय करते हैं।

(ग) जर्मनी—लड़ाईसे पहले जर्मनीमें लीप्जिगके अन्दर एक प्रार्थना न्यायालय था। इसके न्यायाधीशको सम्राट् ही नियुक्त करता था। इसके अतिरिक्त वहां कोई और न्यायालय न था जो मुख्य राज्य (federal Government)का प्रतिनिधि कहा जा सके। भिन्न भिन्न राष्ट्रोंके अपने अपने न्यायालय थे जिनके न्यायाधीशोंकी नियुक्ति राष्ट्रीय राज्योंकी ओरसे ही होती थी। राष्ट्रीय न्यायालयोंका संगठन तथा स्वरूप मुख्यराज्यके नियमोंके द्वारा नियत था। यह इसी लिये कि साम्राज्यके सभी न्यायालयोंमें वैषम्य न पैदा हो जाय। इंपीरियल कोर्टका निर्णय ही साम्राज्यके अभियोगोंमें अन्तिम निर्णय समझा जाता था। इससे वहां सभी न्यायालयोंको एक सदृश राज्यनियमोंका ही प्रयोग करना पड़ता था। फ्रान्सके सदृश ही जर्मनीमें नागरिक न्यायालयोंके साथ साथ शासक न्यायालयोंका प्रचार था। भयंकर भयंकर फौजदारी मुकदमोंमें ही जर्मनीके अन्दर जूरी का प्रयोग किया जाता था।

(घ) अमरीका—अमरीकामें मुख्य राज्यके न्यायालय तथा राष्ट्रीय राज्यके न्यायालय पृथक् पृथक् हैं। वहां प्रत्येक राष्ट्रके अपने अपने न्यायालय हैं जिनके तीन क्रम हैं। कहीं कहीं न्यायाधीश नियुक्त किये जाते हैं और कहीं कहीं उनका जनताके द्वारा निर्वाचन होता है। शासनपद्धतिकी धाराओंके

अनुसार ही मुख्य राज्यके न्यायालयका संगठन किया जाता है। इसके तीन भेद हैं।

(क) मुख्य न्यायालय (सुप्रीम कोर्ट)

(ख) भ्रमणकारी न्यायालय (सर्किट कोर्ट)

(ग) मांडलिक न्यायालय (डिस्ट्रिक्ट कोर्ट)

इनमेंसे मुख्य न्यायालयके न्यायाधीशकी नियुक्ति सीनेट की अनुमतिपर प्रधानके द्वारा ही होती है। मुख्य न्यायालय के निर्णयका क्षेत्र निम्न लिखित दो ढंगके अभियोगों तक विस्तृत है।

(ङ) राष्ट्रीय अभियोग—विदेशीयदूत, राष्ट्रीय विवाद तथा अन्य ऐसे ही सार्वजनिक झगड़ों तथा अभियोगोंका निर्णय मुख्य राज्यके न्यायालय ही करते हैं। भिन्न भिन्न राष्ट्रोंके नागरिकोंके पारस्परिक झगड़ोंका निर्णय भी मुख्य राज्यके न्यायालयोंके ही हाथमें है।

(१) महत्व पूर्ण प्रश्न तथा विवाद—सैनिक विवाद जल तथा समुद्र संबन्धी झगड़े, विदेशीय सन्धियाँ आदि अनेक महत्व पूर्ण प्रश्नों तथा विवादोंका निर्णय राष्ट्रीय न्यायालयोंके हाथमें नहीं है। मुख्य न्यायालय ही इनका फैसला करता है। इसका लाभ यह है कि अमरीकन राष्ट्र-संघके सभी राष्ट्रोंमें मुख्य राज्यकी शासनपद्धतिकी धाराओंका आदर है और न्यायालयोंमें एक सदृश राज्य नियमका प्रचार है। कांग्रेसने अन्य बहुतसे विशेष विशेष प्रकारके न्यायालय बनाये हैं जिनमें कुछ ये हैं।

कोर्ट आव् क्लेम्ज—अमरीकाके विरुद्ध दूसरे राष्ट्रोंकी जो जो शिकायतें हैं उनका निर्णय यही कोर्ट करता है। यही दूसरे राष्ट्रोंके नागरिकोंके अधिकारोंका फैसला करता है।

र्ट आफ प्राइवेट् लैंड क्लेम्ज—यह कोर्ट भिन्न भिन्न राष्ट्रों मा संबन्धी विवादोंका निर्णय करता है।

मरीकामें कोलंबियाके डिस्ट्रिक्ट तथा इंडियन्जके लिये भिन्न न्यायालय हैं। अमरीकन न्यायालयोंमें जूरीके हाँ आमतौर पर फैसले होते हैं।

शुरू शुरूमें अमरीका इंगलैण्डका ही एक उपनिवेश था। कारण है कि इंग्लैंडके सदृशही अमरीकन न्यायालयोंका न तथा स्वरूप है। संघका प्रत्येक राष्ट्र एक दूसरे राष्ट्रके यों को आदरकी दृष्टिसे देखता है। प्रायः भिन्न भिन्न य प्रमाणके तौरपर उद्धृत भी किये जाते हैं। जिन योगोंमें मुख्य न्यायालय तथा राष्ट्रीय न्यायालयका आपसमें मिलता हो उनमें अभियोगीका यह अधिकार कि वह अपना निर्णय जिस न्यायालयसे चाहे करवाये। कभी सुप्रीमकोर्ट अर्थात् मुख्य न्यायालयको भी नि- करना पड़ता है। साधारणतया अमरीकामें राष्ट्रीय यालय तथा संघराज्यके न्यायालयका आपसमें बहुत वाद नहीं है। दोनों ही एक दूसरेका ख्याल रखते हैं। का काम बहुत ही शांति पूर्वक होता है और बहुत झगड़ा बढ़ता है।

पांचवां परिच्छेद ।

निर्वाचन ।

§ १०६--लोकतन्त्रराज्य ।

अर्वाचीन राष्ट्रोंकी शक्ति तथा रियासतमें लोकतन्त्र राज्यपद्धति ही मुख्य कारण समझी जाती है। लोकतन्त्र राज्यपद्धतिके दो मतलब हैं जिनको इस प्रकार दिखला सकते हैं।

(क) नागरिक स्वतंत्रता—नागरिक स्वतन्त्रताका तात्पर्य यह है कि प्रत्येक नागरिक राज्यके हस्तक्षेप तथा प्रबल व्यक्तियोंके अत्याचारसे सुरक्षित है। किसी हद्दतक प्रत्येक नागरिक स्वच्छंद तौरपर विचार सकता है। कोई भी उसकी स्वतन्त्रतामें बाधा डालनेका साहस नहीं कर सकता।

(ख) राजनीतिक स्वतंत्रता—राजनीतिक स्वतन्त्रताका मतलब यह है कि प्रत्येक नागरिक राजनीतिक अधिकारोंको काममें ला सकता है।

उपरि लिखित तात्पर्योंको सामने रखते हुए लोकतन्त्र राज्यका मतलब यह हुआ कि प्रत्येक नागरिक किसी हद्दतक समान तौरपर स्वतन्त्र हो और राजनीतिक अधिकारोंको काममें ला सकता हो। परन्तु संसारका कोई भी राष्ट्र पूर्ण नहीं है। सभी राष्ट्रोंमें सारेके सारे नागरिक राज्यनियमके सामने समान नहीं है और न सभीको पूरे तौरपर राजनीतिक

ता मिली हुई है। परन्तु आदर्श या परिपूर्ण लोकतन्त्र में यह बात न होनी चाहिये। आदर्श लोकतन्त्र राज्य है जिसमें प्रत्येक नागरिक राज्यनियमके सन्मुख समान और सभी नागरिकोंका राजनीतिक अधिकारोंका काम नेका एक सदृश अधिकार हो। अर्वाचीन लोकतन्त्र ोंकी दशा बहुत ही विचित्र है। उनका आकार विशाल से प्रत्येक नागरिक प्रत्यक्ष तौरपर राजनीतिमें भाग नहीं और उनका विकास पपूडलिज्मसे होनेसे प्रत्येक नागरिका अधिकार भी समान नहीं है। उनमें नागरिकोंके नीतिक अधिकारोंका आधार निम्नलिखित है।

(क) निर्वाचनके क्षेत्रका विस्तार—अर्वाचीन राष्ट्रोंमें सभी नारिकोंको निर्वाचनका अधिकार नहीं है। धन, सभा, संपत्ति ि अनेक बातें हैं जो कि निर्वाचनके अधिकारका कारण आजकल कोशिश यही है कि निर्वाचनका क्षेत्र जहां विस्तृत किया जा सके विस्तृत किया जाय।

(ख) निर्वाचकोंका राज्यपर नियन्त्रण—कहां लोकतन्त्र राज्य है कहां ऐसा नहीं है इसका ज्ञान आज कल निर्वाचकोंके धिकारोंसे ही किया जाता है। निर्वाचकोंका राज्यपर तक नियन्त्रण है इसीसे शासनपद्धतिका अनुमान र लोकतन्त्र शासनपद्धतिका ज्ञान होता है। आदर्श लोकराज्यमें निर्वाचकोंका राज्यके प्रत्येक विभागपर प्रत्यक्ष रपर नियन्त्रण होना चाहिये। अर्वाचीन राष्ट्रोंमें इसी बात अभाव है। निर्वाचकोंका राज्यके किसी भी विभागपर क्ष तौरपर नियंत्रण नहीं है। उनकी स्वतंत्रता इसीमें कि वे नियामक सभाओंके सभ्योंका निर्वाचन कर सकते

हैं। नियामक सभाके सभ्य निर्वाचित होकर निर्वाचकोंके हाथसे निकल जाते हैं। वे जो चाहें नियामक सभाओंमें पास करें और जिस ढंगके चाहें राज्य नियम बनावें। निर्वाचक उनके कार्य्यको रद्द नहीं कर सकते हैं। परन्तु इस ओर अर्वाचीन राष्ट्रोंका विशेष ध्यान नहीं है। उनका ख्याल है कि निर्वाचनके अधिकारको जहां तक हो सके प्रत्येक व्यक्तिको दे देना चाहिये जिससे राज्यमें सभी श्रेणीके व्यक्तियोंके प्रतिनिधि आसकें।

§ १०७ *निर्वाचनके अधिकारका विस्तार।*

अर्वाचीन राष्ट्र दिनपर दिन निर्वाचनके अधिकारको विस्तृत करते जाते हैं। शुरू शुरूमें सभी राष्ट्रोंमें अनागरिक (Uncitizens) तथा नागरिक (citizens) का भेद विद्यमान था। इसका मुख्य कारण यह था कि सभी राष्ट्र स्वेच्छाचारी कुलीनों तथा मांडलिक शासकोंके द्वारा शासित थे। मांडलिक शासनकी तहमें वंश तथा सम्पत्तिका भेद काम करता था। कुलीन तथा उच्च घरानेके लोग साधारण लोगोंसे मिलना न पसन्द करते थे। दासताके प्रचारने भी इस बातको बहुत अधिक बढ़ा दिया था। अति प्राचीनकालमें रोमके नागरिकोंका अधिकार जनताकी बहुसंख्यातक विस्तृत था। ग्रीसमें भी यही बात थी। परन्तु साम्राज्यके बढ़नेके बाद रोममें यह बात नहीं रही। इंग्लैण्डमें जातीय राज्यके स्थापनसे पूर्व पूर्वतक जनताको राज्यमें कुछ भी अधिकार न था। रोम राज्यके समयमें और उससे बहुत पूर्व ही इंग्लैण्ड स्थानीय राज्य पूरे तौरपर स्वतंत्र था।

द्धा तथा स्वतंत्र पुरुष अपना प्रबन्ध अपने आप करते थे। त्येक कस्बा पांच मनुष्योंको अपनी ओरसे मण्डलकी भामें भेजता था। इंग्लैंडमें फ्यूडलिज़्म या मांडलिक सनके प्रचारसे ताल्लुकेदारों तथा जमींदारोंका प्रभुत्व बढ़ या। धीरे धीरे शासकों तथा राजकीय अधिकारियोंके निर्वाचनका अधिकार उन्हींके हाथमें चला गया। धर्म्म-रिवर्तनके बाद धार्मिक-नेताओं तथा महन्तोंका भी राज्यमें ाग बढ़ गया।

अठारहवीं सदीमें यूरोपके अन्दर समानता स्वतंत्रता तथा न्धु भावके विचारोंका प्रचार हुआ। सभी दार्शनिक आदर्श माजके लिये इन बातोंका होना आवश्यक समझने लगे। ांसासी राज्यक्रांतिमें इन्हीं सिद्धांतोंपर समाजका निर्माण किया गया। अमरीकापर भी इन सिद्धांतोंका प्रभाव पड़ा। ही कारण है कि वहां निर्वाचनका अधिकार बहुत ही विस्तृत खा गया। इंग्लैंडने भी संवत् १८८६ (सन् १८३२) के रिफार्म एक्ट-के द्वारा प्रतिनिधि चुननेका अधिकार विस्तृत किया। आज-कल स्त्रियोंको भी धीरे धीरे भिन्न भिन्न राष्ट्र निर्वाचनका अधिकार देते जाते हैं। गणनासे मालूम पड़ता है कि सभी राष्ट्रोंमें लगभग आबादीका एक पांचवां भाग सभ्योंको निर्वाचित करता है। न्यूज़ीलैंडमें तो आधी आबादीको निर्वाचनका अधिकार है। व्यक्तियोंको निर्वाचनका अधिकार देते समय आजकल निम्नलिखित बातोंका ध्यान खा जाता है।

(क) आयु—प्रायः सभी राष्ट्र निर्वाचनका अधिकार देते समय आयुका विशेष तौरपर ध्यान रखते हैं। अमरीका

फ्रांस तथा इंग्लैंडमें इक्कीस सालकी उमरसे छोटी उमरका मनुष्य नियामक सभाके सभ्योंको निर्वाचित नहीं कर सकता है। जर्मनीमें निर्वाचनके मामलेमें पचीस सालकी उमर और स्विटजलैंण्डमें बीस सालकी उमर यथेष्ट समझी जाती है। लगभग आधी आबादी तो इसी एक शर्तके कारण निर्वाचनके कामसे पृथक् हो जाती है।

(ख) पुरुष-स्त्री-विचार—शुरू शुरूमें जो लोग सैनिक कार्यमें भाग लेते थे उन्हींको राजनीतिक अधिकार था। ग्रीस, रोम तथा स्यूडलजमें हथियारोंसे सुसज्जित योद्धाओं तथा वीर पुरुषोंको ही निर्वाचनका अधिकार मिला हुआ था। स्वाभाविक ही है कि उस समय स्त्रियोंकी स्थिति सन्तोषजनक न हो। अर्वाचीन शासनपद्धतिके उदयके समयमें भी स्त्रियां एक तरीकेसे पराधीन थीं। इसमें सन्देह नहीं है कि कई एक रियासतोंमें स्त्रियोंको राजगद्दी मिल जाती थी। परन्तु स्त्री जाति स्वतंत्र नहीं समझी जाती थी। समानता स्वतंत्रता तथा बन्धुभावके सिद्धान्तोंका प्रचार होते ही बहुतसे दार्शनिकोंने स्त्रियोंको भी स्वाधीन नागरिक बनाना चाहा और उनको भी निर्वाचनका अधिकार मिलना चाहिये इसको युक्तियोंसे पुष्ट किया। वस्तुतः वह समय स्त्रियोंके निर्वाचन अधिकारके लिये अनुकूल समय न था। उन्नीसवीं सदीके अन्तिम वर्षोंमें स्त्रियोंकी ओर सभी राष्ट्रोंका ध्यान गया। उनको भी निर्वाचनका अधिकार मिलना चाहिये इसके लिये तरीके सोचे गये। स्त्रियोंने भी निर्वाचन संम्बन्धी आन्दोलनको इंग्लैण्डमें शुरू किया। यही कारण है

कि बहुतसे नये राष्ट्रोंमें तथा कुछ पुराने राष्ट्रोंमें स्त्रियोंको किसी हद्द तक नागरिकताका अधिकार दे दिया गया है। न्यूजीलेंण्ड तथा आस्ट्रेलियामें तो स्त्रियां पूरे तौरपर स्वतंत्र हैं। उनको पुरुषोंके सदृश ही निर्वाचनका अधिकार भी प्राप्त है। अमरीकाकी निम्नलिखित नौ रियासतोंने भी स्त्रियोंको पुरुषोंके सदृश ही निर्वाचनका अधिकार दे दिया है।

(१) कोलोरिडो।
(२) ईदाहो।
(३) यूटा।
(४) वोयोमिंग।
(५) वाशिंगटन।
(६) कैलिफोर्निया।
(७) आरेगान।
(८) कन्सास।
(९) अरिजोना।

शेष रियासतोंमेंसे कुछ रियासतोंने स्थानीय कार्योंके सम्बन्धमें ही स्त्रियोंको निर्वाचनका अधिकार दिया है। अमरीकाके आधेसे अधिक राष्ट्रोंने नियामक जनसंमति तथा निर्वाचनमें पुरुषोंके साथ साथ स्त्रियोंको भी कुछ कुछ निर्वाचनका अधिकार दिया है। इंग्लैण्डमें पार्लमेन्टके सभ्योंका निर्वाचन स्त्रियां नहीं कर सकती हैं, परंतु स्थानीय कार्य्योंमें उनको भी निर्वाचनका अधिकार दे दिया गया है। इटलीमें पुरानी संपत्तिको हस्तगत करनेवाली विधवाओंको ही जातीय सभाके सभ्योंके निर्वाचनका अ-

२४

धिकार है। सारांश यह है कि सभी अर्वाचीन राष्ट्रोंमें स्त्रियोंके निर्वाचन संबधी अधिकारका प्रश्न उठा हुआ है। समय आयेगा जब कि स्त्रियोंकी भी वही राजनीतिक स्थिति होगी जो कि पुरुषोंकी है।

(ग) नागरिकता—आजकल अर्वाचीन राष्ट्रोंमें नागरिकताका प्रश्न बहुत ही टेढ़ा है। अमरीकाके बहुतसे राष्ट्रोंमें उन विदेशियोंको निर्वाचनका अधिकार है जो यह कह दें कि हम अमरीकामें ही बस जायंगे। परन्तु विदेशी शब्दसे वही यूरोपके निवासियोंका ही अर्थ लिया जाता है। मंगोलियन तथा एशियाके निवासियोंके साथ यह उदारताका भाव नहीं है। अधिक दूर क्या जाना? सैकड़ों सालोंसे बसे नीग्रो लोगोंको शासनपद्धतिकी धाराओंके अनुसार निर्वाचनका अधिकार है, परन्तु व्यवहारमें वह इस अधिकारको काममें नहीं ला सकते। भिन्न भिन्न दक्खिनी रियासतोंने ऐसे उपनियम बना दिये हैं जिनसे उनका निर्वाचनका अधिकार निरर्थक हो जाता है। अफ्रीकाके आंग्ल उपनिवेशोंने इसी प्रकार भारत-निवासियोंका बहिष्कार किया है। इंग्लैण्डमें प्रत्येक व्यक्ति प्रत्येक ज़िलेसे नियामक सभाके सभ्योंका निर्वाचन कर सकता है, यदि उसमें वह सब गुण मौजूद हों जो कि ज़िलेके नियमोंके अनुसार एक निर्वाचकमें होने चाहियें। इसी नियमसे लाभ उठाकर कुछ एक भारतवासी भी पार्लमेन्टके सभ्य बन चुके हैं।

(घ) संपत्ति—शुरू शुरूमें निर्वाचनका अधिकार ताल्लुकेदारों तथा जमीदारोंका था, अतः अबतक इसका संबध संपत्तिसे जुड़ा हुआ है। अति प्राचीनकालमें इंग्लैण्डका

यह राजनियम था कि जिसकी आमदनी ४० शिलिंग सालाना हो वह निर्वाचनका अधिकारी है। चिरकालतक राजकर देनेवाले धनिकोंको ही निर्वाचनका अधिकार रहा। तत्कालीन प्रचलित सिद्धान्तके अनुसार निर्वाचनका संबन्ध संपत्तिसे था। परन्तु अब इस सिद्धान्तका निर्वाचनके संबधमें कुछ भी महत्व नहीं रहा। इसमें सन्देह भी नहीं है कि कुछ पुरानी बातें अबतक भिन्न भिन्न समाजमें प्रचलित हैं। दृष्टान्त स्वरूप अमरीकाकी कुछ रियासतोंमें निर्वाचकोंका थोड़ा न थोड़ा टैक्स देना जरूरी है। प्रशियामें तो राज्यकरके अनुसार ही व्यक्तियोंको निर्वाचनका अधिकार था।

(ङ) शिक्षा तथा सदाचार—निर्वाचन संबन्धी अधिकारमें धर्मका तत्व अबतक नहीं रहा। इसमें सन्देह भी नहीं है कि अमरीकाकी कुछ रियासतोंमें अबतक यह नियम है कि नास्तिक लोग सभ्योंका निर्वाचन नहीं कर सकते। अपराधी राज्यदंडित, पागल, कोढ़ी तथा स्पर्शज बीमारीसे ग्रस्त व्यक्तियोंको प्रायः सभी राष्ट्रोंमें निर्वाचनका अधिकार नहीं है। आजकल निर्वाचनके मामलेमें लिखपढ़ सकनेकी शक्ति भी जोड़ दी गयी है।

इंग्लैण्डमें विश्वविद्यालयोंके ग्रेजुएट् निर्वाचनके अधिकारी समझे जाते हैं। बहुतसे राष्ट्रोंमें यह नियम है कि सेनामें जबतक कोई नागरिक रहे तबतक वह निर्वाचनका काम न कर सके। जर्मन साम्राज्यमें निर्वाचकके गुण एक ही नियमके द्वारा निश्चित कर दिये गये हैं। फ्रान्समें २२ मिथुन सं० १९३१ (१८७४ की ६ ठीं जुलाई) के नियमसे यही बात की

गयी है । इंग्लैण्डमें इस सम्बन्धमें अनेक नियम हैं । अमरीका की शासनपद्धतिकी पचीसवीं धारामें लिखा है कि "कोई भी राष्ट्र अमरीका निवासियोंके निर्वाचनका अधिकार जाति, रंग तथा पूर्वकालीन दासताके आधारपर नहीं छीन सकता।" साधारणत या राष्ट्रीय शासनमें निर्वाचकोंके गुणोंका निर्णय राष्ट्रीय नियमोंपर छोड़ दिया गया है ।

§ १०८ निर्वाचकोंका राज्यपर नियंत्रण ।

भिन्न भिन्न राष्ट्रोंमें निर्वाचकोंका राज्यपर नियंत्रण भिन्न भिन्न है । जिन राष्ट्रोंमें राज्यपद्धतिका संशोधन तथा परिवर्तन जनताके बहुमतपर निर्भर है उनमें निर्वाचक किसी न किसी हद्द तक राज्यको अपनी इच्छाओंके अनुसार चलाते हैं । यदि वह यह भी नहीं कर सकते तो इतना तो अवश्य ही करते हैं कि राज्यको खास खास प्रकारके काम करनेसे रोक देते हैं । शुरू शुरूमें जनताने जो कुछ किया वह यही था कि राज्यके अत्याचारोंसे अपने आपको बचाया । इसी उद्देश्यसे उसने राज्यके कार्योंपर नियंत्रण स्थापित किया । अपना शासन अपने आप करनेका विचार उस समय जनताके हृदयमें न था । यही कारण है कि अब तक निर्वाचकोंके अधिकार इस हद्द तक नहीं बढ़े हैं कि वह राज्यपद्धतिको इच्छाके अनुसार ही बदल दें और उनके निर्वाचित सभ्य उन्हींकी इच्छानुसार चलें । ईसासे बहुत पूर्व यूनानमें लोकतन्त्रशासनपद्धतिका प्रचार था । जनताने अपना शासन अपने आपही करनेका इरादा किया । उसी नगरके सब लोग एक सभामें एकत्र हो गये और

सभाके द्वारा राज्यकार्य चलाने लगे । प्रत्येक नागरिकको सभामें व्याख्यान देनेका अधिकार था । बहुमतसे जो प्रस्ताव पास होता था वही कानून बन जाता था । इस ढंगका शासन तबतक सफलतासे चलता रहा जबतक यह एक नगरकी चहार दीवारी तक ही परिमित था। परन्तु ज्यों ही उसको एक विस्तृत साम्राज्यसे काम पड़ा वह कुछ भी समयतक न चल सका। रोमने भी कुछ समयतक जनसभाके द्वारा काम किया। परन्तु उसने उसमें विशेष उन्नति की। सभाको कई भागोंमें विभक्त कर भिन्न भिन्न मैजिस्ट्रेटोंके आधिपत्यमें उसने राज्यकार्य चलाना शुरू किया। साम्राज्यके बहुत ही अधिक बढ़नेपर नागरिकोंका स्वयं उपस्थित होकर राज्यकार्यमें भाग लेना कठिन होगया। यही कारण है कि अर्वाचीन राष्ट्रोंमें प्रतिनिधियोंके द्वारा ही राज्यकार्य चलाया जाता है। निर्वाचन तथा प्रतिनिधि यह दो ही संस्थायें हैं जिनके द्वारा जनता राज्यके कार्योंको नियंत्रित करती है। परन्तु इसमें वह सौन्दर्य तथा स्वातन्त्र्य नहीं है जो कि प्रत्यक्ष रूपसे राज्यकार्य चलानेमें जनताको होता। इसी बातको सामने रखकर धीरे धीरे सभी राष्ट्र स्थानीय स्वराज्यके सिद्धान्तको प्रचलित कर रहे हैं। स्थानीय स्वराज्यका क्षेत्र परिमित होनेसे जनता प्रतिनिधियों तथा राज्य-संचालकोंपर अपना नियंत्रण बढ़ा सकती है और किसी हद्दतक पूर्वापेक्षया अधिक स्वतन्त्रता प्राप्त कर सकती है।

कई राष्ट्रोंमें वंशागत तथा नियुक्त राज्यसेवकोंके कारण राज्यपर निर्वाचकोंका नियंत्रण कम हो गया है।

प्रतिनिधियोंका निर्वाचनके बाद पूर्ण स्वतन्त्र हो जाना और निर्वाचकोंकी इच्छाओंका ख्याल न करना भी राज्यपर निर्वाचकोंके नियंत्रणको कम कर रहा है। प्रतिनिधियोंका समय परिमित होता है। इसीसे निर्वाचकोंकी कुछ कुछ शक्ति तथा अधिकार है। पुनर्निर्वाचनकी इच्छासे प्रतिनिधि किसी अंशतक निर्वाचकोंके मतका आदर करते हैं। कुछ अमरीकन नगरोंमें निर्वाचकोंने प्रतिनिधियोंके अदल बदलको अपने काममें लानेका यत्न किया। उन्होंने विशेष प्रार्थनाके द्वारा पुराने प्रतिनिधिके स्थानपर नया प्रतिनिधि भेजा। यदि यह सभी राष्ट्रोंमें प्रचलित हो गया और नगरोंके साथ साथ स्थानीय तथा मुख्य राज्यमें भी प्रतिनिधियोंका बदला निर्वाचकोंके हाथमें आगया तो निर्वाचकोंका राज्यपर पूरे तौरपर नियंत्रण स्थापित हो जायगा।

छापाखाना, अखबार, ट्रैकट, व्याख्यान तथा सभा समितियों द्वारा निर्वाचक आजकल अपने प्रतिनिधियोंको अपनी इच्छाओंका ज्ञान कराते हैं। यही बात भिन्न भिन्न दलोंमें संगठित होकर भी निर्वाचकगण करते हैं। ज्यों ज्यों राजनीतिक दल राज्यके अंश बनते जायंगे और राज्य उनके अस्तित्वको मान लेगा त्यों त्यों निर्वाचकोंका राज्यपर नियन्त्रण बढ़ता जायगा।

§ १०९—जनसंमति विधि

कुछ राष्ट्रोंमें निर्वाचकोंने प्रत्यक्ष तौरपर राज्यकार्यमें भाग लेना शुरू किया है। जूरी विधिसे निर्वाचकोंका कई एक स्थानोंमें निर्णायक विभागके कामोंमें भाग है और कई

एक स्थानोंमें उन्होंने राज्यनियमोंके पास करने तथा बनवानेमें भी प्रत्यक्ष तौरपर भाग लेना शुरू किया है। स्विट्ज़र्लैण्ड बहुत छोटा देश है। उसके अन्तर्गत राष्ट्र बहुत ही छोटे हैं। वहांकी जनतापर रूसोके विचारोंका भी बहुत ही अधिक प्रभाव पड़ा। यही कारण है कि वहां निर्वाचकोंने नियमनिर्माणमें प्रत्यक्ष तौरपर भाग लेना शुरू किया है। प्रतिनिधि सभाके दोषोंको दूर करनेके लिये कुछ स्विस राष्ट्रोंमें एथेन्ज़के सदृश प्रत्यक्ष तौरपर जनता राज्यकार्यमें भाग लेने लगी है। लोकसभामें सभ्योंको उपस्थित होनेमें प्राचीन कालमें जो कठिनाई होती थी रेलों तथा ट्रामोंके द्वारा वह कठिनाई अब नहीं रही। स्विट्ज़र्लैण्डमें नियम-निर्माण तथा राजनीतिके निश्चयमें जनता निम्नलिखित तीन तरीकोंसे भाग लेती है।

(क) जनसंमति (Initiative)—जनसंमतिके द्वारा बहुतसे निर्वाचक स्विस् राज्यके पास एक प्रार्थना पत्र भेजते हैं कि अमुक अमुक प्रस्तावको अपनी नियामक सभामें पास करो और उसपर सारे निर्वाचकोंकी संमति ले लो।

(ख) बाधितजनसंमति (Referendum)—स्विट्ज़र्लैण्डमें यह नियम है कि विना निर्वाचकोंकी अनुमतिके शासनपद्धतिकी धाराओंमें परिवर्त्तन या संशोधन नहीं किया जा सकता। कुछ नियमोंमें निर्वाचकोंकी संमति लेना बाधित है और कुछ नियमोंमें अबाधित है।

(ग) जनसंमतिज्ञान (Plabiacite)—कभी कभी स्विस् राज्य कुछ प्रश्नोंपर जनसंमति लेलेता हैं। यह इसी-

लिए कि उसको मालूम हो जाय कि अमुक प्रश्नोंपर जनताका क्या मत है और वह अपनी नीति निश्चत कर सके। ऐसी दशामें स्विस राज्य जनताकी संमतिपर चलनेके लिये बाधित नहीं होता है।

स्विट्जर्लैंण्डमें लोकसभाका प्रचार बहुत पुराना है। बाईस राष्ट्रोंमेंसे चार राष्ट्रोंमें तो वहां सारेके सारे निर्वाचक एक स्थानपर एकत्र हो जाते हैं और राज्यकर, राज्यनियम तथा शासकनियुक्ति संबन्धी कामको वे स्वयं ही करते हैं। वह लोग प्रतिनिधियोंके द्वारा अपना राज्यकार्य्य नहीं चलाते। आजकल ऐसी लोकसभामें निर्वाचकोंकी संख्या बहुत ही अधिक बढ़ रही है। उसमें विवाद तथा विचारका काम असंभव हो गया है। यही कारण है कि राष्ट्रीय समिति प्रस्तावों तथा जरूरी कामोंको पहलेसे ही तय्यार कर लेती है और लोकसभासे उसपर मत लेलेती है।

स्विस् राष्ट्रसंघकी शासनपद्धतिमें तबतक परिवर्तन या संशोधन नहीं हो सकता जबतक कि स्विस् निर्वाचकोंकी संमति न लेली जाय। साधारण नियमोंके मामलेमें भी यदि तीस हजार निर्वाचकों या नागरिकोंका प्रार्थनापत्र आजाय या ८ राष्ट्रीय सभाएं ऐसा ही लिखें तो निर्वाचकोंकी संमतिका लेना बाधित हो जाता है। पचास हजार नागरिक प्रार्थनापत्र भेजकर शासनपद्धति संबन्धी किसी भी धारापर राज्यको पुनर्विचार करनेके लिये प्रेरित कर सकते हैं। स्विस् राष्ट्रोंमें तो नियम-निर्माणके मामलेमें जनसंमतिका बहुत अधिक प्रचार है। राष्ट्रीय शासनपद्धतिमें तबतक कोई भी परिवर्तन नहीं किया जा सकता

जबतक नागरिकोंका मत न ले लिया जाय। स्विट्ज़लैंएड-में यह आमतौरपर होता है कि राज्य कोई प्रस्ताव पास करते हैं और निर्वाचक बाधित जनसंमति ले लेनेपर उसको रद्द कर देते हैं।

अमरीकामें न्यूइंग्लैएड नामक रियासतके अन्दर ही प्रत्यक्ष लोकसभाका प्रचार है। निर्वाचक नागरिक समिति-में उपस्थित होते हैं और वहांपर ही नगरके प्रबन्धकर्ताओंको नियुक्त करते हैं और स्थानीय प्रश्नोंका निर्णय करते हैं। अमरीकामें प्रायः मुख्य राज्यमें जन-सम्मतिविधिका किसी भी मामलेमें अवलंबन नहीं है, परन्तु राष्ट्रीय राज्योंको खास खास मामलेमें निर्वाचकोंका मत लेना ही पड़ता है। दृष्टान्तस्वरूप राष्ट्रीय ऋण तथा राजधानी-परिवर्तनको लीजिये। इस मामलेमें बहुतसे अमरीकन राष्ट्रीय राज्य कुछ भी नहीं कर सकते जबतक कि वह निर्वाचकोंका बहु-मत न ले लें। नगरोंमें तो जनसंमतिविधिका प्रचार दिनपर दिन बढ़ता जाता है। नियम-निर्माणमें निर्वाचकोंके प्रत्यक्ष तौरपर भाग ले सकनेके बहुतसे लोभ हैं जो कि इ.त प्रकार प्रगट किये जा सकते हैं।

(१) जनता उन नियमोंको पास होनेसे रोक सकती है जिनके द्वारा वह अपना अहित समझती हो या अन्य किसी कारणसे जो नियम उसको पसन्द न हों उनको राष्ट्रमें प्रचलित होनेसे पूर्व ही रद्द कर सकती है।

(२) प्रतिनिधि सभाके सभ्य स्वार्थवश किसी अनु-चित कार्य्यपर प्रवृत्त हो सकते हैं। भिन्न भिन्न दल तथा श्रेणीके लोग उनको सुगमतासे ही प्रभावित कर सकते हैं।

इससे निर्वाचकोंकी इच्छाके विरुद्ध भी राज्यनियम बन जाते हैं और राष्ट्रमें अशान्ति बढ़ जाती है। निर्वाचकोंकी संमतिसे नियम बननेपर जनताके स्वार्थका नाश नहीं होता और राष्ट्रमें शान्ति भी चिरस्थायी होती है।

(३) जनताका राजनीतिमें भाग लेना आवश्यक है। नियमनिर्माणमें निर्वाचकोंके भाग लेनेपर राजनीतिक प्रश्नोंमें जनताका ध्यान बहुत ही अधिक बढ़ जाता है।

(४) स्थानीय जनसंमितिके द्वारा स्थानीय जरूरतें बड़ी आसानीसे पूरी की जा सकती हैं।

नियामक जनसंमति विधिके कुछ दोष हैं जिनको भुलाना न चाहिये। दृष्टान्तस्वरूपः—

(१) नियामक जनसंमति विधिके प्रचलित होनेपर नियामक सभाके सभ्यों तथा प्रतिनिधियोंका महत्त्व घट जाता है। निर्वाचक निर्वाचनमें कुछ भी रुचि नहीं रखते। जो प्रस्ताव निर्वाचकोंके सामने पास होनेके लिये आते हैं उनमें भी रुचि बहुत नहीं दिखायी जाती; उसका मुख्य कारण यह है कि सबके सब प्रस्ताव सार्वजनिक तो होते ही नहीं हैं। स्थानीय या विशेष श्रेणीके धनोंसे संबद्ध प्रस्तावोंमें सबके सब निर्वाचकोंका भाग न लेना स्वाभाविक ही है।

(२) बाधित नियामक जनसंमतिके प्रचलित होनेपर नियामक तथा शासक विभाग अपना कुछ भी उत्तरदायित्व नहीं समझते हैं। विवेकरहित प्रस्ताव पास हो जाते हैं। बुद्धिमान्, विचारपूर्ण, गंभीर, दूरदर्शी व्यक्तियोंके प्रस्तावोंका भी अनादर हो जाता है क्योंकि निर्वाचक किस

प्रस्तावको किस दृष्टिसे देखेंगे और उसके असली महत्त्वको समझेंगे या नहीं समझेंगे इसका निर्णय कौन कर सकता है? जैसी उनकी तरंग हुई उसीके अनुसार प्रस्ताव पास और रद्द होते हैं।

(३) आर्थिक तथा राजनीतिक समस्याओंसे पूर्ण प्रश्नोंका निर्वाचकोंके हां या नहींके द्वारा निर्णय करना मूर्खता-को महत्त्व देना होगा। योग्य योग्य प्रतिनिधियोंके होते हुए भी जब मुद्रासे शोधन तथा विनिमयकी दर संबन्धी उलझनें सुलझानेके लिये राष्ट्रके योग्यसे (योग्य उस विषयके) विद्वानोंका सहारा लेना पड़ता है और उनकी समितिमें पास किये गये प्रस्तावोंके अनुसार काम करना पड़ता है तो निर्वाचकोंकी संमतिके द्वारा ऐसे विकट प्रश्नोंका हल करना कहांतक राष्ट्रके लिये हितकर होगा?

छठवाँ परिच्छेद

स्थानीय राज्य

§ ११०. स्थानीय राज्यका मुख्यराज्यके साथ संबन्ध।

अर्वाचीन राष्ट्रोंका राज्य बहुत विस्तृत प्रदेशोंपर है। यही कारण है कि साम्राज्यको भिन्न भिन्न प्रान्तों तथा मण्डलोंमें विभक्त करके ही शासनका काम किया जाता है। मंडलों तथा प्रान्तोंके राज्यका संगठन, स्वरूप तथा अधिकार सब राष्ट्रोंमें एक सदृश नहीं है, यही कारण है कि अब उसपर भी प्रकाश डाला जायगा।

प्रान्तों तथा मंडलोंका निर्माण ऐतिहासिक और कभी कभी कृत्रिम होता है। शासनमें सुगमता लानेके लिये मुख्यराज्य जब साम्राज्यको भिन्न भिन्न प्रान्तों तथा मंडलोंमें विभक्त कर देता है उस समय वह विभाग कृत्रिम समझा जाता है। प्राकृतिक परिस्थितिसे या चिरकालसे जब कोई प्रान्त पृथक् राष्ट्रके रूपमें विद्यमान हो तो उसको ऐतिहासिक रूपका नाम दिया जाता है।

स्थानीय राज्यके चार रूप ध्यान देनेके योग्य हैं, जो इस प्रकार हैं:—

(क) प्रथम रूप—स्थानीय राज्यका प्रथम रूप वह है जब कि चिरकालसे एक राष्ट्रके रूपमें परिणत देश विजय या सन्धिके द्वारा किसी बड़े साम्राज्यमें मिला लिया जाय।

रोमन साम्राज्य, अमरीका तथा जर्मन राष्ट्रसंघके अन्तर्गत राष्ट्रोंका राज्य प्रथम रूपका ही उदाहरण है।

(ख) द्वितीय रूप—द्वितीय रूपमें स्थानीय राज्यका आधार राजकीय प्रबन्धपर माना जाता है। राज्य अपनी सुगमताके लिये भिन्न भिन्न प्रदेशोंको एक पृथक् प्रदेशका रूप देकर उनका प्रबन्ध स्थानीय राज्यके हाथमें दे देते हैं। भारतमें बंगाल, संयुक्तप्रान्त और पञ्जाब प्रान्तका निर्माण इसीका उदाहरण है।

(ग) तृतीय रूप—पुराने जमानेसे चले आये छोटे छोटे मंडलोंका राज्य तृतीय रूपका उदाहरण है। अवध तथा रुहेलखण्डका विभाग मुसलमानी जमानेमें बहुत ही महत्त्वपूर्ण था। इस ढंगका विभाग तृतीय रूपमें ही रखा जाता है।

(घ) चतुर्थ रूप—नगर तथा ग्रामका प्रबन्ध और शासन स्थानीय राज्यका चतुर्थ रूप है। काशी तथा लखनऊ पुराने शहर हैं। काशीका महत्त्व इसीलिये है कि वह संसारके प्राचीन शहरोंमेंसे एक है और हिन्दुओंका प्रधान तीर्थ है। लखनऊकी प्रसिद्धि नव्वाबी जमानेमें हुई। लखनऊकी नव्वाबीने एक लोकोक्तिका रूप धारण कर लिया है। स्थानीय राज्यमें नगरोंके शासन तथा प्रबन्धका बहुत ही अधिक महत्व है।

मुख्य तथा स्थानीय राज्यके कार्योंके आधार नाना प्रकारके हैं। बहुतसे कार्य वे इसलिये करते हैं चूंकि जनता संघ रूपमें या पृथक् पृथक् तौरपर उनको नहीं कर सकती है। कभी कभी जनताके आमोद तथा प्रमोदका ख्याल रखते

हुए उनको कंपनीबाग तथा पार्क बनाने पड़ते हैं। जातीय रक्षाके विचारसे सीमाप्रान्त तथा सेनाका प्रबन्ध, पारस्परिक संबन्धकी दृढ़ताके विचारसे रेल, डाक तथा तारका प्रचार और जनतामें विक्षोभ तथा अशान्तिको रोकनेके लिये दीवानी तथा फौजदारी कानूनोंका उचित ढंगपर संचालन किया जाता है। जल, रोशनी, ट्राम, सड़क, पुल, अस्पताल स्कूल आदिके निर्माण तथा प्रचारमें प्रायः यही सिद्धान्त काममें लाया जाता है कि जो उन चीजोंसे लाभ उठावे वही उनका खर्च दे।

कौन सा कार्य्य मुख्यराज्य करे और कौन सा कार्य्य स्थानीय राज्य करे इसपर बहुत बार भारी विवाद उठ खड़ा होता है। अमरीकामें दीवानी तथा फौजदारी कानूनोंका संचालन और विवाह-विच्छेद तथा व्यापारीय संघोंके प्रमाणपत्रका प्रबन्ध एक मात्र राष्ट्रीय राज्यके ही हाथमें हैं। परन्तु चूंकि सब राष्ट्रोंके अधिकार समान नहीं हैं इसलिये बहुत गड़बड़ मच जाती है। फ्रान्समें मुख्यराज्य ही स्थानीय राज्यके बहुतसे काम करता है इससे बहुधा अन्याय हो जाता है। मुख्यराज्यके क्षेत्रमें स्थानीय शासक, स्थानीय राज्यके क्षेत्रमें मुख्य शासक और जातीय कामोंमें दोनोंमेंसे कौन प्रबन्ध करे और एक दूसरेका किस अंशतक संबन्ध रहे और किस अंशतक पार्थक्य रहे, इत्यादि प्रश्न बहुत ही पेचीदे हैं। प्रायः ऐसी बातोंमें कुछ न कुछ विवाद चलता ही रहता है।

मुख्यराज्य तथा स्थानीय राज्यका निर्माण भिन्न भिन्न संस्थाओंके द्वारा होता है। प्रायः नियामक सभायें या

नियामक सभा द्वारा निर्वाचित या जनताके द्वारा पृथक् तौरपर चुना गया मुख्य शासक शासन पद्धतिकी धाराओंके अनुसार ही मुख्यराज्यका निर्माण करता है। मुख्यराज्यका स्वरूप तबतक नहीं बदला जा सकता जबतक शासन पद्धतिकी धाराओंमें संशोधन न हो, परन्तु यह बात स्थानीय राज्यके साथ नहीं है। स्थानीयराज्यका निर्माण मुख्यराज्य ही करता है। यही कारण है कि वह स्वेच्छानुसार उनमें परिवर्तन कर सकता है। परन्तु जहां स्थानीय राज्य भी शासनपद्धतिकी धाराओंके चक्रमें पड़ गया हो वहां मुख्यराज्यकी शक्तिमें यह बात नहीं रहती। इंग्लैण्डमें शासनपद्धतिकी धारायें नियत नहीं हैं। उसकी शासनपद्धति ऐतिहासिक शासनपद्धति है। यही कारण है कि वहां मुख्यराज्यकी शक्ति अधिक है। इटली तथा फ्रान्समें शासनपद्धतिकी धारायें नियत हैं। परन्तु चूंकि उनकी शासनपद्धतिका निर्माण आंग्ल पार्लमेंटको सामने रखकर हुआ है इस लिए वहां मुख्यराज्य तथा स्थानीय राज्यका पारस्परिक संबन्ध इंग्लैण्डके सदृश ही है। परन्तु अमरीका तथा जर्मनी जैसे संघीय राज्यमें यह बात नहीं है। स्विट्जरलैण्डमें तो स्थानीय राज्य या राष्ट्रीय राज्यकी शक्ति तथा अधिकार शासनपद्धतिकी धाराओंमें नियत है। अमरीका तथा जर्मनीमें भी राष्ट्रोंकी शक्ति राज्यनियमोंसे निर्धारित है। यही कारण है कि तीनों ही देशोंमें संघान्तर्गत राष्ट्र बहुत कुछ स्वतन्त्र हैं। अपने अपने अधिकार तथा शक्तिकी सीमामें काम करते हुए उनको किसीका कुछ भी भय नहीं है। मुख्यराज्य उनके कार्य्यों तथा प्रबन्ध विषयक बातोंमें हस्तक्षेप

नहीं कर सकता। परन्तु इसका यह मतलब नहीं है कि संघान्तर्गत राष्ट्र मुख्यराज्यकी आज्ञाओंका तिरस्कार कर सकते हैं। सभी संघीय राज्योंमें मुख्यराज्यका प्रभाव सुरक्षित रखा गया है और स्थानीय राज्योंपर उनका नियन्त्रण स्थापित किया गया है। राष्ट्रोंकी शक्ति तथा अधिकारका उनकी जनसंख्या तथा सपत्तिके साथ कुछ भी संबन्ध नहीं है। इंग्लैण्डमें लंडनको वह अधिकार नहीं है जो कि जर्मन साम्राज्यमें लूवेकको। लूवेक लंडनका चालीसवां भाग है। परन्तु इससे क्या? यही बात अमरीकाकी है। वहां न्यूयार्ककी वह शक्ति नहीं है जो कि नवेदाकी। आबादीको देखा जाय तो नवेदामें केवल ७५ हजार मनुष्य ही रहते हैं और न्यूयार्कमें लगभग ४० लाख आदमियोंका निवास है।

§१११—राष्ट्रीय राज्य।

राष्ट्रीय राज्यका निर्माण मुख्यराज्यके सदृश ही होता है। राष्ट्रीय राज्य एक प्रकारसे मुख्यराज्यका संक्षिप्त रूप है। संघीय राज्य भिन्न भिन्न राष्ट्रोंको आपसमें संगठित करके ही बनते हैं। बहुत बार छोटे छोटे राष्ट्र मुख्य राज्यका अंग बनना नहीं पसन्द करते। इसका परिणाम यह होता है कि उनके साथ समझौता किया जाता है। विशेष सीमा तक उनके अधिकार तथा शक्तियां नहीं छीनी जातीं और उनका पृथक् अस्त्वित्व सुरक्षित रखा जाता है। साधारणतया जातीय संरक्षण, विदेशीय नीति तथा सेनाका प्रबन्ध मुख्यराज्य करता है और गृह्य प्रबन्ध तथा अन्तरीय शासन राष्ट्र स्वयं ही

करते हैं। घरेलू झगड़ोंको कम करने और राष्ट्रोंका पारस्परिक युद्ध रोकनेके लिये सभी संघीय राज्योंमें भिन्न भिन्न नियम बने हुए हैं। प्रायः राष्ट्रीय झगड़ों तथा विवादोंका निर्णय भी मुख्य राज्य ही करता है। आजकल संघान्तर्गत राष्ट्रोंकी शक्ति सभी देशोंमें दिनपर दिन घट रही है। विषय-को स्पष्ट करनेके लिये अब भिन्न भिन्न देशोंके राष्ट्रोंकी स्थितिपर प्रकाश डाला जायगा।

(क) स्विट्ज़लैंड—स्विट्ज़लैंडके राष्ट्र ऐतिहासिक राष्ट्र हैं। वे चिरकालसे अपना शासन स्वयं करते थे। भिन्न भिन्न जातिके लोगोंका ही उनमें निवास है। भाषा तथा धर्ममें भी उनमें समानता नहीं है। बड़ी बड़ी कठिनाइयां झेलनेके बाद ही उनका संघ बना। स्विस् साम्राज्यके प्रत्येक राष्ट्रमें एक एक सभा है। जनता प्रत्यक्ष तौरपर ही सभाके सभ्यों का चुनाव करती है। यही सभा है जो कि राष्ट्रके नियमों तथा उपनियमोंको बनाती है और शासनका कार्य भी स्वयं ही करती है। प्रत्येक राष्ट्रमें पांच या सात मनुष्यों की समिति ही राज्यकार्य करती है। समितिके सभ्योंका चुनाव कहीं नियामक सभाकी ओरसे और कहीं जनताकी ओरसे होता है। समितिके सभ्य प्रबन्धके साथ ही साथ नियम-निर्माणमें भाग लेते हैं। नियामक जनसंमति तथा बाधित नियामक जनसंमतिके द्वारा राष्ट्रों के निवासी मुख्य राज्यकी नीति, नियम तथा शासनव्यवस्थापर अपना प्रत्यक्ष नियन्त्रण रखते हैं। शासनपद्धति संबन्धी धाराएं तो तबतक बदली या सुधारी नहीं जा सकतीं जबतक कि जनताका बहुमत न ले लिया जाय।

(ख) जर्मनी—लड़ाईसे पहले जर्मनीमें भिन्न भिन्न राष्ट्रोंके भिन्न भिन्न अधिकार थे। साम्राज्यकी आबादीका तीन पांचवां भाग एक मात्र प्रुशियामें निवास करता था। यही कारण था कि उसकी शक्ति अपरिमित थी। उसका सम्राट् ही साम्राज्यका सम्राट् समझा जाता था। उनपर सम्राट्की शक्ति बहुत ही अधिक थी। वह नियामक सभाओंको तथा मुख्यराज्यको परोक्ष रीतिसे प्रभावित करता था। राष्ट्रोंकी नियामक सभाओंमें प्रथम सभा प्रायः लार्डसभा ही थी। राष्ट्रके ताल्लुकेदार तथा कुलीन ही उसके सभ्य थे। संपत्तिके आधारपर जनताका विभाग कर भिन्न भिन्न धनाढ्योंको द्वितीय सभाके सभ्योंके निर्वाचनका अधिकार दिया गया था। राष्ट्रोंके अपने अपने न्यायालय थे, परन्तु उनका संगठन साम्राज्यके नियमोंके आधारपर ही किया गया था। जर्मन राष्ट्रोंमें हम्बर्ग, लूबेक तथा ब्रीमन ही लोकतंत्र शासनपद्धतिके अनुसार शासित कहे जा सकते थे। इन दो सभाओंके द्वारा ही नियमनिर्माण तथा शासनका काम होता था। आजकल जर्मनीमें बहुत परिवर्तन हो गया है और अभी तक परिवर्तनोंकी संभावना बनी हुई है। इसी लिये उसकी वर्तमान स्थिति नहीं दी गयी।

(ग) अमरीका—अमरीका अड़तालीस राष्ट्रोंसे मिलकर बना है। प्रत्येक राष्ट्र शुरू शुरूमें एक पृथक् राष्ट्र था और संघराज्यसे उसका कुछ भी संबन्ध न था। उनकी अपनी अपनी शासनपद्धति तथा राज्यव्यवस्था थी। धीरे धीरे संघराज्यमें उनका संगठन हुआ। आजकल प्रत्येक राष्ट्रमें एक एक मुख्य शासक या गवर्नर है और संपूर्ण राजकीय काम दो

सभाओंके द्वारा होता है। नियामक सभाके सभ्योंका निर्वाचन जनता ही करती है। भिन्न२ कमीशनों, समितियों तथा उपसमितियोंके हाथमें शासनका काम है। राज्यसेवकोंकी नियुक्ति भी मुख्य शासक या गवर्नरके हाथमें नहीं है। बहुधा उनका चुनाव होता है और कुछ समय तक ही वह अपने पदोंपर रहते हैं। प्रत्येक राष्ट्रमें अपने अपने न्यायालय हैं और उनमें न्यायाधीशोंकी नियुक्ति भी निर्वाचनके द्वारा होती है।

अमरीकन राष्ट्रोंकी शक्ति तथा अधिकार बहुत अधिक हैं। दीवानी तथा फौजदारी नियमोंका प्रचार भी वही करते हैं। आजकल इनकी भी शक्ति क्रमशः घट रही है।

§ ११२. <u>मांडलिक स्थानीय राज्य ।</u>

मांडलिक स्थानीय राज्य राष्ट्रीय राज्य तथा नागरिक राज्यसे मिला होता है। मांडलिक स्थानीय राज्यमें अर्वाचीन राष्ट्रोंका दो बातोंमें भेद है जो कि इस प्रकार हैं।

(क) मंडलका क्षेत्र—अर्वाचीन राष्ट्रमें मांडलिक राज्यका क्षेत्र एक सदृश नहीं है। राष्ट्रीय राज्यके सदृश ही उसका विकास है। यही कारण है कि इंग्लैण्डमें पैरिशिज़ और फ्रान्समें काम्यून्ज़का प्रचार है। परन्तु बहुत स्थानोंमें मंडलका क्षेत्र पुराना नहीं। राज्यकी इच्छाका ही वह परिणाम है। अमरीकामें कृत्रिम मंडलोंकी संख्या बहुत ही अधिक है।

(ख) मांडलिक राज्यका निर्माण तथा मुख्यराज्यसे उसका सम्बन्ध—मांडलिक राज्यके निर्माणमें आजकल दो भिन्न भिन्न बातें

आधार मानी जाती हैं। कई एक राष्ट्रोंमें शक्तिका सूत्रधार मुख्यराज्य होता है और स्थानीय तथा मांडलिक राज्यका नियंत्रण स्वयं ही करता है। परन्तु बहुतसे राष्ट्रोंमें इससे भिन्न विधिपर काम होता है। मुख्यराज्य इस मामलेमें उदासीनतासे काम लेते हैं और स्थानीय तथा मांडलिक राज्योंको किसी हद्दतक पूर्ण स्वराज्य दे देते हैं। वह जिस ढंगपर चाहें अपना शासन तथा प्रबन्ध करें, मुख्य राज्य जरा भी चूं चां नहीं करता। इंग्लैण्ड तथा अमरीकामें दूसरी विधिपर ही काम होता है। मुख्य शासक तथा मुख्य राज्य स्थानीय राज्य तथा मांडलिक राज्यके कामोंमें हस्तक्षेप नहीं करता। लड़ाईसे पहले जर्मनीमें और फ्रान्समें अबतक पहली विधिसे शासनका काम होता है। दोनों ही देशोंमें मुख्यराज्य स्थानीय राज्यका अधिष्ठाता तथा प्रेरक है। वह स्थानीय राज्यके कामोंमें हस्तक्षेप कर सकता है और उनको जिस ढंगपर चाहे चला सकता है। कदाचित् इस भेदका रहस्य भी शासक न्यायालयके सदृश ही हो। यूरोपमें राष्ट्रोंको युद्धादिकी चिन्ता बहुत ही अधिक है। यही कारण है कि राज्यकी शक्तिको दृढ़ रखना ही वहां राष्ट्रके लिये हितकर समझा जाता है। अर्वाचीन राष्ट्रोंमें मांडलिक राज्यके शासनका काम निम्नलिखित प्रकारसे है—

(क) फ्रान्स—भारतमें जिस प्रकार साम्राज्यका विभाग प्रांत, जिला, तहसील तथा गांवमें किया गया है उसी प्रकार फ्रान्समें भी साम्राज्यका विभाग चार भागोंमें किया गया है जिनको प्रान्त, मंडल, उपमंडल तथा ग्रामका नाम दिया जा सकता है। फ्रान्समें शासनकी एकताकी ओर ही

बहुत ध्यान है। अधिकार विभाग वहां पसन्द नहीं किया जाता। यही कारण है कि वहां स्थानीय शासक मुख्य शासकके पूर्णरूपसे अधीन हैं। वे लोग अपने विवेक तथा विचारसे कोई काम नहीं कर सकते। राज्य-क्रान्तिके युगमें फरांसीसी नेताओंने मंडलों तथा ग्रामोंको स्वराज्य दिया, परन्तु युद्धकी भयंकर आगमें पड़कर के चिरकालतक इसको स्थिर न रख सके। नैपोलियनने ग्रामों तथा मंडलोंपर मुख्य राज्यका अधिकार पूर्णरूपसे स्थापित किया और शासनकी दृढ़ताको अपनी नीतिका आधार रखा। आजकल फरांसीसी राज्यक्रान्तिसे बहुत ही अधिक डरते हैं। यही कारण है कि उन्होंने नैपोलियनके किये संगठनको नहीं बदला।

फ्रान्समें कुल मिलाकर ८६ मंडल हैं। अन्तरीय सचिवकी अनुमतिपर फ्रान्सका प्रधान भिन्न भिन्न मंडलोंके शासकोंको नियुक्त करता है। मांडलिक शासक दो ढंगके काम करता है। एक ओर तो वह मंडलका शासन करता है और दूसरी ओर वह मुख्यराज्यकी आज्ञाओं तथा निर्देशोंको जनता तक पहुंचाता है।

मंडलोंके सदृश ही फ्रान्समें ग्रामोंका प्रबन्ध है। फ्रान्समें ग्राम काम्यूनके नामसे पुकारे जाते हैं। इनका आकार छोटे छोटे गांवोंसे लेकर बड़े बड़े नगरों तकका होता है। नागरिक समितियोंके सभ्य १० से २६ तक होते हैं। इनका चुनाव प्रत्येक काम्यूनमें होता है। यही स्थानीय राज्यका प्रबन्ध करते हैं। नागरिक समिति अपने सभ्योंमें-से किसी एक व्यक्तिको मेयर बनाती है। मेयर ही काम्यू-

नका एक ओर प्रबन्ध करता है और दूसरी ओर मंडलाधीश-की आज्ञाओंके अनुसार काम करता है।

(ख) जर्मनी—जर्मनीमें राष्ट्रोंके अधिकार तथा शक्ति भिन्न भिन्न थी। यही कारण है कि प्रुशियाको ही जर्मनीका प्रतिनिधि समझकर वहांके मांडलिक राज्यपर प्रकाश डाला जायगा। प्रुशियामें मांडलिक राज्यका आधार निम्नलिखित बातोंपर है।

(१) जर्मनीमें जातीय तथा स्थानीय कार्योंमें भेद किया गया है। वहां पुलिस, स्कूल, धर्म तथा शासन-निरीक्षणके काम जातीय काम और सड़क, दान तथा दरिद्र-रक्षण आदि सम्बन्धी काम स्थानीय काम समझे जाते हैं। कई एक मंडलोंमें स्थानीय काम तथा जातीय काम एक ही संस्थाके द्वारा और कई मंडलोंमें भिन्न भिन्न संस्थाके द्वारा ही किये जाते हैं। मुख्य राज्य ही समय समयपर इनके कामोंका निरीक्षण करता है।

(२) जर्मनीमें राज्यसेवकोंके दो भेद किये गये हैं। (क) अनुभवी, (ख) निर्वाचित। अनुभवी राज्यसेवकोंको तनखाह मिलती है और निर्वाचित राज्यसेवकोंको मुफ्तमें ही काम करना पड़ता है। अनुभवी राज्यसेवक साधरणतया शासन-प्रणालीके अंग समझे जाते हैं और सदा अपने पदपर बने रहते हैं।

लड़ाईके पहले जर्मनीमें स्थानीय राज्य स्वराज्यके सिद्धान्तपर आश्रित नहीं था। राज्यकर्मचारी ही भिन्न भिन्न मंडलों तथा काम्यून्ज़का प्रबन्ध करते थे। आमतौरपर वहां स्थानीय राज्यके कार्य्योंका क्षेत्र प्रान्त,

मंडल तथा काम्यून्ज़ तक विस्तृत था। सम्राट्की शक्तिका अनुभव इसीसे किया जा सकता है कि प्रान्तीय शासकों-की नियुक्ति उसीके हाथमें थी। प्रान्तीय शासक उपशासकों-के द्वारा प्रान्तका शासन तथा प्रबन्ध करता था। इसकी सहायताके लिये एक प्रान्तीय सभा थी जिसके सभ्योंका चुनाव मंडलोंकी ओरसे होता था। प्रान्तीय सभा अपने सभापतिका निर्वाचन अपने आप करती थी। लड़ाईसे पहले जर्मनीमें मंडलोंके ही हाथमें स्थानीय हितों तथा स्वार्थोंका प्रबन्ध था। परन्तु वहांपर भी एक सरकारी शासक मौजूद था जो तनखाह लेकर काम करता था। इसको शासनके काममें सहायता पहुंचानेके लिये एक समिति बनायी गयी थी जिसके छः सभ्य थे। काम्यून्ज़का प्रबन्ध भी जर्मनीमें राजकीय शासकोंके हाथमें था। बहुत स्थानोंमें तो ताल्लु-केदार ही मुखिया थे। लड़ाई खतम होनेके पूर्व ही वहां राज्यक्रान्ति हो गयी। स्थानीय राज्योंमें भी परिवर्तन हुआ परन्तु उनके स्थिर न होनेसे यहांपर उनका उल्लेख नहीं किया गया।

(ग) इंगलैण्ड—इंग्लैण्डका प्राचीन स्थानीय राज्य सरल तथा एक सदृश था। वहां राष्ट्र शायर्ज, हंड्रड्ज तथा विल्ज़-में विभक्त था। विल्ज़का शब्दार्थ गांव या पुरवा है। धीरे धीरे काउन्टीने प्रधानता प्राप्त की। शैरिफ तथा काउन्टी न्यायालयके द्वारा ही राजा अपनी आज्ञाओंको प्रचलित करता था। समयान्तरमें स्थानीय राज्यका प्रचार हुआ और उसका संचालन ताल्लुकेदारोंके हाथमें आगया। हंड्रड्जका प्रचार उठता गया और आजकल उनका कोई अस्तित्व नहीं। इनका

स्थान बरौने लिया। संवत् १८८६ (१८३२ ई०) के रिफार्म एक्टके बाद बहुतसे उपनियमोंके द्वारा इंग्लैण्डमें स्थानीय राज्यका संशोधन किया गया। स्थानीय राज्यके संबन्धमें पार्लमेन्टको जैसे जैसे सुधारोंकी जरूरत मालूम पड़ी, उसने उनके करनेमें कुछ भी देर न की। राज्यसेवकोंकी संख्या भी शनैः शनैः बढ़ायी गयी। संवत् १९४५ तथा १९५१ (१८८८ तथा १८९४ ई०) के लोकल गवर्नमेन्ट ऐक्टके द्वारा स्थानीय स्वराज्यके सिद्धान्तका प्रचार किया गया और निर्वाचकोंको अपने बहुतसे छोटे छोटे अधिकार मुख्यराज्यने दे दिये।

इंग्लैण्ड तथा वेल्जका स्थानीय स्वराज्यके विचारसे बासठ मंडलोंमें विभाग किया गया है। प्रत्येक मंडलका शासन एक समितिके द्वारा होता है जिसके सभ्योंका चुनाव जनता ही करती है। इस समितिके साथ ही साथ कुछ कुलवृद्ध (alderman) भी चुने जाते हैं जो कि स्थानीय शासन-कार्य्यमें सहायता पहुंचाते हैं। समितिके सभ्योंका चुनाव तीन सालके लिये और कुलवृद्धोंका चुनाव छः सालके लिये होता है। प्रत्येक मंडलमें लार्ड लेफ्टिनन्ट नामक एक व्यक्ति सम्राट्का प्रतिनिधि होता है। लार्ड-चान्सलर मंडलके लिये किस व्यक्तिको शान्तिस्थापक तथा न्यायाधीश नियुक्त करे इसका निर्देश यही व्यक्ति करता है।

समितिके सभ्य, कुलवृद्ध तथा लार्ड चान्सलरके सदृश ही मंडलोंमें अन्य बहुतसे राज्यकर्मचारी होते हैं। दृष्टान्त स्वरूप-शैरिफ, अन्डरशैरिफ, क्लार्क, कारोनर्जको ही लीजिये। यह लोग भी एक प्रकारसे स्थानीय राज्यके अंग समझे जाते हैं।

इंग्लैण्डमें प्रत्येक मंडल कई तहसीलोंमें और वह स्वयं भी बहुतसे परगनोंमें विभक्त हैं। सभी उपविभागोंका शासन समितियोंके द्वारा होता है। इनके सभ्योंका निर्वाचन जनता ही करती है।

लण्डनका प्रबन्ध स्थानीय राज्यके कार्य्यक्रम तथा प्रबन्धसे भिन्न है। उसकी शासनपद्धति इंग्लेण्डके भिन्न भिन्न नगरोंसे भी नहीं मिलती है। अन्य आंग्ल नगरोंका प्रबन्ध भी प्रायः स्थानीय राज्यसे ही मिलता है। वह एक प्रकारसे उसीके अंग माने जाते हैं।

संवत् १९५९ (१९०२ ई०) के एज्यूकेशन एक्टके द्वारा स्कूलोंका प्रबन्ध भी स्कूलसमितिके हाथमें दे दिया गया। इस समय यदि कोई संस्था उपर्युक्त संशोधनों तथा परिवर्तनोंसे बची है तो वह एक मात्र पुअरला संबन्धी संस्था ही है। ग्रामोंमें तो इस कार्य्यको भी समिति ही करती है।

(घ) अमरीका—अमरीकामें स्थानीय राज्यके संगठन तथा कार्य्यक्रमके तीन तरीके हैं जो इस प्रकार हैं—

(१) नागरिक शैली—अमरीकाकी न्यूइंग्लैण्ड नामक रियासतमें नागरिक समितिका प्रचार है। नागरिक समिति ही राज्यकर तथा स्थानीय आयव्ययका प्रबन्ध करती है। समितिके सभ्योंका चुनाव जनताके द्वारा ही होता है। नगरके शासक जनताके द्वारा चुने जाते हैं और इनकी संख्या तीनसे नौ तक होती है। यही लोग शासक, नगरलेखक (townclerk) कोषाध्यक्ष, समाहर्ता, सन्निधाता, आदिके कामोंको करते हैं

शुरू शुरूमें आबादी थोड़ी थी अतः झगड़े बहुत न

बढ़े । परन्तु आज कल न्यूइंग्लैण्ड रियासतमें भी नगर मंडलके रूपमें संगठित किये गये हैं । शुरू शुरूमें तो निर्णय तथा न्यायके कामको उत्तम विधिपर चलाना ही मुख्य उद्देश्य था । परन्तु अब सड़क, मांडलिक गृह, तथा राज्यकरकी समानता आदिके लिये भी यही बात की गयी है । विदेशियोंके जमघट्टने भी नागरिक समिति-शैलीमें परिवर्तन तथा संशोधन करना आवश्यक कर दिया है।

न्यूइंग्लैण्डके लोग जहां जहां बसते हैं वहां वहां स्थानीय राज्यमें अपनी ही शैलीका प्रयोग करते हैं । पश्चिमी रियासतोंमें प्रत्येक ३६ वर्गमील जमीनका प्रबन्ध नागरिक शैलीपर होता है । इसमेंसे १ वर्गमील जमीन स्कूलोंको दे दी गयी है ।

(२) मांडलिक शैली—अमरीकाकी दक्खिनी रियासतोंमें कृषिजीवी लोग ही शुरू शुरूमें बसे थे । इन रियासतोंमें इंग्लैण्डकी मांडलिक शैलीका ही अनुकरण किया गया है। शुरू शुरूमें मंडलोंका प्रबन्ध धनिक प्लान्टर्जके हाथमें था परन्तु अब यह बात नहीं रही, मांडलिक समितिके सभ्योंका निर्वाचन जनता द्वारा होता है । मंडलके शासकोंको भी जनता ही चुनती है । उनमें शासक समिति तथा निर्णायक समिति भिन्न भिन्न शासन संबन्धी कामोंको करती हैं।

स्कूलोंके प्रबन्धके लिये जहां जहां राज्यकर लगाया गया है वहां वहां मंडल नगरोंमें विभक्त किया गया है। यह सब होते हुए भी दक्खिनी रियासतोंमें मंडलोंके द्वारा ही स्थानीय राज्यका कार्य्य होता है ।

(३) संमिश्रित शैली—बहुतसे राष्ट्रोंमें स्थानीय राज्यका

प्रबन्ध नागरिक शैली तथा मांडलिक शैलीको एकमें मिलाकर संमिश्रित शैलीके द्वारा किया जाता है। कभी एक शैलीकी और कभी दूसरी शैलीकी प्रधानता हो जाती है। परन्तु काम दोनों ही शैलियोंके द्वारा किया जाता है। भिन्न भिन्न कार्य्य भिन्न भिन्न समितियोंके हाथमें दे दिये गये हैं। दोनों ही समितियोंके सभ्योंका निर्वाचन जनता ही करती है।

अमरीकामें उपरिलिखित शैलियोंके सदृश ही स्कूलकी शैलीका बहुत ही अधिक प्रचार है। ग्रामीण तथा नागरिक स्कूलोंका प्रबन्ध पृथक् पृथक समितिके द्वारा होता है।

स्थानीय स्वराज्यके संम्बधमें लिखते हुए राष्ट्रपति विल्सनने लिखा है कि "अमरीकन शासन प्रणालीका यह एक मुख्य चिन्ह है कि कार्यकर्त्ताओंको स्थानीय कार्य्यमें बहुत ही अधिक अधिकार तथा स्वातन्त्र्य हो।" साधारण राज्यनियमोंके अनुसार काम करते हुए स्थानीय कर्मचारी जो चाहें काम करें और जिस ढंगकी चाहें उन्नति करें। शक्तिसंविभागका सिद्धान्त स्थानीय राज्यमें नहीं लगाया गया है। ग्रामीण संस्थाओंके बाद कोई भी ऐसी स्थानीय समिति नहीं है ज कि एक मात्र नियम–निर्माणका काम करे। यदि कहींपर ऐसी समिति हैं भी तो उसके अधिकार सर्वथा परिमित हैं। इसके विपरीत स्थानीय समिति तथा स्थानीय शासकोंकी शक्ति बहुत ही अधिक है। शासनके सम्बन्धमें उनके अधिकार बहुत अधिक हैं। शासनके विचारसे अमरीकामें स्थानीय स्वराज्य बहुत ही महत्वपूर्ण है। राष्ट्रीय राज्यके सदृश ही उसकी शक्ति विचारने तथा ध्यान देनेके योग्य है।

§ ११३. नगरोंका विकास ।

सभ्यता वृद्धिका मुख्य आधार जनसंख्याकी वृद्धि है। आर्थिक उन्नति, श्रमविभाग तथा कार्य्य-क्षमताका बढ़ना उन्हीं राष्ट्रोंमें संभव है जहां आबादी अधिक हो और लोग पास पास रहते हों। ऐसे ही राष्ट्रोंमें शिक्षा तथा विज्ञानकी वृद्धि होती है। मनुष्योंके पारस्परिक संबन्धसे ही लोक प्रथा तथा सामाजिक रीति-रिवाजका विकास होता है। स्थिर तौरपर किसी स्थानपर रहने तथा एक दूसरेके साथ मिलने जुलनेसे मातृ-भूमिके प्रति प्रीति, स्वदेश-भक्ति तथा जातीयताके भावोंका उदय होता है। नियम तथा शक्तिकी आवश्यकता भी शनैः शनैः बढ़ जाती है। स्वतन्त्रताकी रक्षाका प्रश्न भी उसीके साथ जुड़ा रहता है। इसका परिणाम यह होता है कि नयी नयी शासनप्रणालियोंके सहारे लोग अपने आपको संगठित करते हैं और वैयक्तिक स्वतन्त्रताकी रक्षा करते हैं।

अर्वाचीन सभ्यताका घनिष्ठ संबन्ध नगरोंसे ही है। वर्त्तमान राजनीतिशास्त्रमें नगरोंकी शासन-व्यवस्था, कर्मण्यता तथा उन्नतिका महत्त्वपूर्ण भाग है। अतिप्राचीनकालमें मिश्रमें मैम्फिस तथा थीब्ज ही सभ्यताके केन्द्र थे। भारतका प्राचीन इतिहास काशी, कौशाम्बी, मथुरा, द्वारिका इन्द्रप्रस्थ तथा पटनाका ही प्राचीन इतिहास कहा जा सकता है। यही बात असीरिया(शाम),बैबिलोनिया (बैबिलोन)तथा पर्शिया (फारस) के साथ है। व्यापारीय मार्गके उन्नत होते ही डमास्कस नगर बहुत अधिक बढ़ा। धीरे धीरे फीनीसियन

बन्दरगाह रीक, तथा सीदानने भी अपना सर ऊपर उठाया। देखते देखते ही मध्यसागरके किनारे बड़े बड़े नगरोंसे सुशोभित हो गये ।

यूनानियोंमें राष्ट्रीय जीवनका केन्द्र नगर ही थे। एथन्ज स्पार्टा, कारिन्थ आदि नगर एक राष्ट्र थे। उनकी कर्मण्यता दूर दूर तक फैली हुई थी। यूनानियोंने एशियामाइनर (लघुएशिया) तथा सिसलीमें जो नगर बसाये उनमें पूर्ण स्वराज्य प्रचलित था। सिकन्दरके समयमें अलक्जन्ड्रिया तथा एन्टियोक नामक नगरोंका उद्भव हुआ। जब ये नगर साम्राज्यमें संगठित भी किये गये तो भी उनमें स्थानीय स्वराज्य लुप्त न हुआ।

बहुतसे नगरोंको संगठित करके ही रोमन साम्राज्य बना। शुरू शुरूमें रोम स्वयं भी एक छोटासा नगर था। पास पासके कसबोंको उसने अपने साथ मिला लिया और उनको अपने नगरके संपूर्ण अधिकार दिये। उनके नागरिकोंको रोमन नागरिक बनाया। रोमन साम्राज्यमें नगरोंका महत्त्व बहुत ही अधिक था। जातीयताके भाव नागरिकताके साथ जुड़े हुए थे। स्वदेशभक्तिका तात्पर्य नगरभक्तिसे ही लिया जाता था। प्राचीन इटलीमें १२०० नगर थे और रोमकी आबादी १० लाखसे २० लाख तक थी। अठारहवीं सदी तक रोमके सदृश किसी भी नगरने वृद्धि न प्राप्त की। उपर्युक्त नगरोंमें वह सबकी सब राजनीतिक समस्यायें विद्यमान थीं जो कि आजकल मौजूद हैं।

रोमन साम्राज्यके अधःपतनके साथही साथ यूरोपमें नागरिकताके भावोंका लोप हो गया। उनके व्यापार व्यव-

सायके ह्रासके साथ ही साथ नगरोंकी समृद्धि तथा राष्ट्रोंकी आर्थिक उन्नति लुप्त हो गयी। देखते ही देखते स्वराज्य तथा स्वतन्त्रताके भाव भी जनतामें न रहे। पुराने जमानेकी तरह फिरसे ताल्लुकेदारोंने सर उठाया। भिन्न भिन्न राष्ट्रोंके अधिपति भिन्न भिन्न राजा बन गये। उन्होंने ताल्लुकदारोंके हाथ स्थानीय राज्यका प्रबन्ध दे दिया।

जिस समय यूरोपमें फ्यूडल लार्डोंका शासन था उस समय नागरिक जीवनका विकास मुसल्मानोंमें हुआ। क्रूसेडके समय एशिया तथा यूरोप वालोंका फिरसे मेल हुआ। दोनों ही महाद्वीपके लोगोंमें पारस्परिक व्यापार प्रारंभ हो गया। इटलीके नगरोंने इस व्यापारमें विशेष तौरपर भाग लिया। यही कारण है कि बारहवीं सदीमें पीसा, जिनोआ तथा वीनिसने और बहुतसे फरांसीसी तथा स्पेनी बन्दरगाहोंने अपना सर ऊपर उठाया। अपने अपने गिल्डों तथा नगर समितियोंके द्वारा शासनका कार्य्य करते हुए उपर्युक्त नगर बहुत अंशोंतक फ्यूडल लार्डोंसे स्वतन्त्र हो गये और स्वराज्यसे शक्ति प्राप्त कर दिन दूना रात चौगुना बढ़ने लगे। शुरू शुरूमें इन नगरोंका उद्देश्य आर्थिक था। भिन्न भिन्न नगर अर्थ संबन्धी मामलोंमें ही एक दूसरेसे झगड़ पड़ते थे।

मध्यकालमें यूरोपके भिन्न भिन्न राष्ट्रोंमें जातीयताके भावोंका विकास हुआ। मुख्य शासक आर्थिक प्रबन्ध करता था और राजासे चार्टर प्राप्तकर भिन्न भिन्न नगर अपने शासनका काम अपने आप ही करते थे। गिल्डप्रणालीके नष्ट होनेपर नगरोंका प्रभुत्व कुछ कुछ कम हुआ परन्तु अमरीकाके आविष्कार, भारतीय व्यापारके पुनरुद्धारके साथ

ही साथ यूरोपीय नगरोंका भाग्य फिरसे चमका। स्पेनमें सैनिक विप्लव तथा कैडिज, पुर्तगाल, लिस्बन और नीदर्लैंडमें हंस नगर शक्ति तथा समृद्धिमें बढ़ने लगे। जर्मनी तथा इंग्लैण्डमें भी नागरिक जीवन प्रारंभ हुआ। लण्डन तथा पेरिस आबादीमें बहुत ही अधिक बढ़ गये।

पिछली सदीमें नगरोंकी आबादी तथा समृद्धि बहुत ही अधिक बढ़ गयी। संवत् १८५७ (सन् १८००) में इंग्लैण्ड तथा वेल्जकी २१ फी सैकड़ा आबादी दस हजार आबादीके नगरोंमें रहती थी। आजकल बीस हज़ार आबादीके नगरोंमें संपूर्ण इंग्लिश द्वीपकी आधी आबादी निवास कर रही है। जर्मनी तथा फ्रान्समें भी यही बात पैदा हुई। संवत् १८७३(१८१६) में एक लाख आबादीके नगरोंमें १.८ प्रति शत जनता ही प्रुशियामें रहती थी परन्तु संवत् १९५७(१९००) में यही प्रति शतक १७.६ हो गयी है। फ्रांसमें संवत् १८५८ (१८०१) में एक लाख आबादीके नगरोंमें २.८ प्रति शत जनता रहती थी परन्तु संवत् १९५७ (१९००) में यही प्रति शत १३ तक जा पहुंची। संवत् १८५७ (१८००) में अमरीकाके अन्दर एक लाख आबादीका एक भी शहर न था। आजकल एक लाख आबादीके नगरोंमें २० सैकड़ा जनता रहती है। यदि १० हज़ार आबादी सामने रखी जाय तो अमरीकाकी एक तिहाई जनता नगरोंमें ही रहती है। संसारके बड़े बड़े नगरोंकी आबादी इस प्रकार हैं—

राष्ट्र	नगर	विक्रम संवत्	आबादी-
इंग्लैण्ड	लंदन	(१९७१)...........	७३१६७०४
अमरीका	न्यूयार्क	(१९७१)...........	७३०००००
,,	शिकागो	(१९७३)...........	२४६८०००

राष्ट्र	नगर	विक्रम संवत्	आबादी
फ्रान्स	पैरिस	(१९६८)............	२८८८०००
रूस	पिट्रोग्रेड	(१९७२)............	२३१८०००
जापान	टोकियो	(१९७०)............	२२२५०००
आस्ट्रिया	वीएना	(१९७१)............	२१५००००
प्रुशिया	बर्लिन	(१९६७)............	२०७१०००
रूस	मास्को	(१९७०)............	१८१८०००
अमरीका	फिलेडैलिफया	(१९७३)............	१७१००००
अर्जन्टाइन	ब्यूनस ऐरस	(१९७३)............	१५६७०००
जापान	ओसाका	(१९७३)............	१४६००००
भारतवर्ष	कलकत्ता	(१९६८)............	१२२००००
ब्राजील	रायोडि जेनीरो	(१९६७)............	११३००००
स्काटलैण्ड	ग्लास्गो	(१९६८)............	१००८४८७
भारतवर्ष	बम्बई	(१९६८)............	९८००००
जर्मनी	हंबर्ग	(१९६७)............	९३१०००
पोलैण्ड	वारसा	(१९७०)............	९०९०००
हंग्री	बुदापेस्ट	(१९६७)............	८८००००
इंग्लैण्ड	बर्मिंघम	(१९६८)............	८४००००
अमरीका	सेन्टलुसि	(१९७३)............	७५७०००
,,	बोस्टन	(१९७३)............	७५६०००
इंग्लैण्ड	लिवरपूल	(१९६८)............	७४८०००
,,	मान्चैस्टर	(१९६८)............	७१६०००
इटली	नेपल्स	(१९७२)............	६९८०००
अमरीका	क्लीवलैण्ड	(१९७३)............	६७४०००
इटली	मीलान	(१९७२)............	६६३०००
इजिप्ट	केरो	(१९६४)............	६५४०००

राष्ट्र	नगर	विक्रम संवत्	आबादी
चीन	शांघाई		६३६०००
न्यूसाउथवेल्ज़	सिड्नी	(१९६८)	६३७०००
सियाम	बैंकाक	(१९६६)	६३००००
नी लैंण्ड	अमस्टर्डम	(१९७२)	६१६०००
डैन्मार्क	कोपन्हैगन	(१९७३)	६०५०००
स्पेन	माड्रिड	(१९६७)	६०००००
बवेरिया	म्यूनिच	(१९६७)	५९६०००
विक्टोरिया	मेल्बोर्न	(१९६८)	५९२०००
इटली	रोम	(१९७२)	५९१०००
सैक्सनी	लिप्सिक	(१९६७)	५९००००
अमरीका	बाल्टिमोर	(१९७३)	५९००००
स्पेन	बर्सीलोना	(१९६७)	५८७०००
अमरीका	पिट्सबर्ग	(१९७३)	५७९०००
फ्रान्स	मार्शलीज	(१९६८)	५५१०००
सैक्सनी	ड्रेडन	(१९६७)	५४८०००
फ्रान्स	लीयान्ज	(१९६८)	५२४०००
भारतवर्ष	मद्रास	(१९६८)	५२००००
प्रुशिया	कालाग्न	(१९६७)	५१७०००
”	ब्रस्ला	(१९६७)	५१२०००
भारतवर्ष	हैदराबाद	(१९६८)	५०००००

आनुमानिक आबादी–

चीन	कैन्टन	१२५००००
”	पेकिंग	१००००००
टर्की	कुस्तुनतुनिया	१००००००

२६

टर्की	हांकाङ्ग	६०००००
,,	रोन्टसिन	८५००००
,,	कुचाऊ	६५००००
,,	चुंगकिंग	६०००००
,,	१) शुचाऊ	५०००००

नगरोंके सदृश ही ग्रामोंकी आबादी भी आजकल बढ़ती जाती है। नगरोंकी आबादी बढ़नेके निम्न लिखित संक्षिप्त कारण हैं।

(क) स्वास्थ्यका प्रबन्ध—आजकल नगरोंमें स्वास्थ्यका प्रबन्ध पूर्वापेक्षया अधिक अच्छा है। यही कारण है कि जितने मनुष्य नगरोंमें पैदा होते हैं उतने मरते नहीं हैं।

(ख) गमनागमनके साधनोंमें उन्नति—ट्राम, रेल, वाष्पपोत आदिके कारण लोगोंको इधर उधर आनेमें बहुत सुगमता होगयी है। डाक तथा तारके द्वारा दूर दूरके देशोंका एक दूसरेके साथ घनिष्ट संबन्ध हो गया है। स्वाभाविक ही है कि लोगोंका भ्रमण बढ़ जाय। ताल्लुकदारों तथा ज़मीदारोंको अब नगरोंमें रहना बहुत ही अधिक पसन्द है। नगरोंकी वृद्धिका एक यह भी कारण है।

(ग) कलयत्रका प्रयोग—कलयंत्रके प्रयोगसे भिन्न भिन्न नगरोंमें बड़े बड़े कारखाने खुल गये हैं। इनके कारण भी नगरोंकी वृद्धि हुई है। संयुक्त प्रान्तके कानपुरकी वृद्धिमें इसका जो भाग है वह किसीसे भी छिपा नहीं है।

(घ) धन-अर्जनका प्रबंध-बैंक, बीमा, दलाली, दूकानदारी आदि कामोंके बढ़नेसे लोगोंके धन-अर्जनके साधन बढ़ गये हैं। इसने भी आबादीके बढ़ानेमें बहुत ही अधिक भाग लिया है।

(ङ) राज्यके कार्य्योंकी वृद्धि—राज्यकार्य्योंकी वृद्धिसे राजधानीकी आबादी बढ़ गयी है ।

§ ११४. नागरिक राज्य ।

समाजके राजनीतिक जीवनमें नगरोंने तीन प्रकारसे समय समयपर भाग लिया है ।

(क) नगर राष्ट्र—शुरू शुरूमें नगर ही राष्ट्र थे । एक ही धर्म, रक्त तथा लोकप्रथावाले लोग एक ही स्थानमें इकट्ठे हो जाते थे और इस प्रकार नगरको ही एक राष्ट्रका रूप दे देते थे । यूनान तथा रोमके नगरोंकी यही अवस्था थी । समयान्तरमें इन नगरोंने व्यापार तथा व्यवसायके द्वारा भी महत्त्व प्राप्त किया और विशाल रूप धारण किया । इनमें प्रायः स्वराज्य या स्थानीय स्वराज्यका ही प्रचार था ।

(ख) शासन-क्षेत्र—रोमन साम्राज्यके बढ़नेपर यूरोपीय नगर रोमके शासन-क्षेत्रमें आ गये । यही बात जातीय राष्ट्रोंके उदयपर भी हुई । राजा तथा कुलीनोंका ही नगरोंपर शासन था ।

(ग) स्थानीय स्वराज्य—अठारहवीं सदीमें यूरोप व्यावसायिक तथा व्यापारीय क्रान्तिमें लीन हुआ । नगरोंका आकार तथा काम बढ़ गया । बहुत सी नागरिक समस्यायें पैदा हो गयीं । यही कारण है कि उनको स्थानीय स्वराज्यका देना आवश्यक समझा गया ।

नगरोंका राष्ट्रसे क्या सम्बन्ध हो इसपर दो ढंगसे विचार किया जाता है ।

(क) अमरीका तथा इंग्लैण्डमें नगरोंकी शासन-व्यवस्था

नियत है । जब नगरोंको अधिक अधिकारकी ज़रूरत होती है तो वे प्रार्थनापत्र भेजकर नियामक सभाओंसे अधिकार मांगते हैं । यही कारण है कि इस शैलीमें बारंबार अधिकार-पत्रकी ज़रूरत होती है ।

(ख) यूरोपीय महाद्वीपमें प्रायः नगरोंको बहुतसे शासन संबन्धी अधिकार दे दिये गये हैं । वहां यह सिद्धान्त काम करता है कि नागरिक समितियां उन सब कामोंको कर सकती हैं जिनका कि राज्यनियमोंके द्वारा निषेध नहीं किया गया । यूरोपमें नियम-निर्माणके द्वारा मुख्यराज्य अपना प्रभुत्व नगरोंपर नहीं स्थापित करता । यह काम वह शासक विभागके द्वारा ही करता है । नगरोंके शासनपर मुख्यराज्यका ही नियंत्रण होता है ।--

नगरोंका आन्तरीय प्रबन्ध निम्नलिखित प्रकारसे होता है ।

(क) जनताका नागरिक राज्यमें भाग—जनताका नागरिक राज्यमें कहां तक भाग है और कहां तक नहीं है यह निर्वाचन-व्यवस्था, निर्वाचनाधिकार तथा निर्वाचकोंकी शक्तिपर निर्भर है ।

(१) निर्वाचनाधिकार—अमरीका, फ्रान्स, तथा इटलीमें राष्ट्रीय राज्यके सदृश ही नागरिक राज्यमें निर्वाचन संबंधी नियम हैं । फ्रान्स तथा इटलीमें नागरिक राज्यकर देने वाले मनुष्योंको नागरिक राज्यके सभ्योंके निर्वाचनमें पूर्ण अधिकार है चाहे वे किसी दूसरे स्थानमें क्यों न रहते हों । जर्मनी तथा इंग्लैण्डमें निर्वाचनका अधिकार उन्हीं व्यक्तियोंको है जिनके पास संपत्तिकी एक विशेष राशि हो । सभी राष्ट्रोंमें नागरिकोंका कुछ समय तक राष्ट्रका निवासी

होना आवश्यक समझा गया है। परन्तु समयकी अवधि भिन्न भिन्न राष्ट्रोंमें भिन्न भिन्न है। अमरीका ही एक ऐसा राष्ट्र है जहां समयकी अवधि बहुत ही कम रखी गयी है। निर्वाचनाधिकार भी अमरीकामें जनताके बहत बड़े भागको है।

(२) निर्वाचित राज्यसेवक—इस संबंधमें अमरीका संसारके अन्य सब राष्ट्रोंसे भिन्न ह। यूरोपीय नगरोंमें नियामक समिति-के सभ्य ही चुने जाते हैं और सब राज्याधिकारी नियुक्त किये जाते हैं। इंग्लैण्डमें कुछ छोटे छोटे राज्यसेवकोंके साथ साथ समितिके सभी सभ्य नागरिकोंके द्वारा ही चुने जाते हैं। अमरीकन नगरोंमें राज्यसेवक बहुत बड़ी संख्यामें चुने जाते हैं। इसका सबसे बड़ा दोष यह है कि योग्य योग्य पुरुषोंका राज्यसेवकके तौरपर चुनाव नहीं होता है क्योंकि साधारण नागरिक इस बातको क्या समझें कि कौन किस कामके योग्य है और कौन किस कामके योग्य नहीं है। यही कारण है कि प्रायः सभी अमरीकन नगरोंमें राज्यसेवकोंकी नियुक्तिका आन्दोलन जारी है।

(३) प्रत्यक्ष लोकराज्य—नगरके निर्वाचक अपने प्रतिनि-धियोंपर नियामक जनसंमति या पुनर्निर्वाचनके द्वारा अपना प्रभुत्व स्थापित करते हैं। नियामक जनसम्मतिकी व्याख्या पूर्व प्रकरणमें की जा चुकी है। पुनर्निर्वाचनका तात्पर्य यह है कि अपने प्रतिनिधिको जब चाहें बुलालें और उसके स्थानपर किसी दूसरे व्यक्तिका नये सिरेसे चुनाव करें। अमरी-कन नगरोंमें बहुतसे नागरिक प्रश्नोंपर जनताके बहुमतका लेना आवश्यक है। यह इसलिये कि जनता प्रतिदिनके साथ

सम्बद्ध मामलोंका स्वयं ही निर्णय करना चाहती है और राज्यसेवकोंकी इच्छाके अनुसार चलना पसन्द नहीं करती है ।

(ख) नागरिक समिति—संसारके सभी महत्त्वपूर्ण राष्ट्रोंमें नागरिक समितिके सभ्य चुने जाते हैं । फ्रान्स, इटली, इंग्लैण्ड तथा जर्मनीमें समितिके सभ्य साधारण टिकटोंके द्वारा ही चुने जाते हैं । अमरीकामें मांडलिक टिकटोंका ही प्रचार है। फ्रान्स तथा अमरीकामें समितिके सबके सब सभ्य एक समयमें ही निर्वाचित होते है । इटली, इंग्लैण्ड तथा जर्मनीमें समय समयपर सभ्योंका चुनाव होता रहता है। अमरीकामें सभ्योंका समय दो साल और जर्मनीमें छःसाल है । समितिके सभ्योंकी संख्या नियत नहीं है । सभ्योंकी संख्या बीससे लेकर सैकड़ों तक होती है । फ्रान्स तथा अमरीकाकी अपेक्षा इंग्लण्ड तथा जर्मनीमें योग्य योग्य व्यक्ति नागरिक समितिके सभ्यके तौरपर चुने जाते है ।

महत्त्वकी दृष्टिसे भिन्न भिन्न राष्ट्रोंमें नागरिक समितियोंकी स्थिति निम्न लिखित प्रकारकी है ।

(१) इंग्लैण्डमें नागरिक समितिके अधिकार बहुत अधिक हैं । वहाँकी शासन-व्यवस्थाका निर्णय यही करती है । राज्यसेवकोंकी नियुक्ति तथा चुनाव भी इसीके हाथमें है। उपसमितियोंमें विभक्त होकर ही इंग्लण्डकी नागरिक समितियां अपना काम करती हैं और अन्तिम निर्णय अपने ही हाथमें रखती हैं । राज्यसेवकोंका जो कुछ कर्तव्य है वह यही है कि समितियोंकी आज्ञाके अनुसार काम करें ।

(२) यूरोपीय महाद्वीपमें नगरोंके मुख्य शासकको मुख्य-राज्य ही नियुक्त करता है। नागरिक समिति बहुतसे मामलोंमें अपने अनुसार चलनेके लिये उसको वाधित नहीं कर सकती। मुख्यशासकके सहकारिवर्गका चुनाव नागरिक समितिके ही हाथमें है। यह इसीलिये कि जनताकी स्वतन्त्रता पैरों तले न रौंदी जा सके।

(३) अमरीकामें मेयर तथा मुख्यशासकको नागरिक-समिति नहीं चुनती। उनका आय-व्यय संबन्धी अधिकार भी परिमित है। नगरोंके शासनसंबन्धी नियम राष्ट्रीय राज्य ही बनाते हैं। इन सब बातोंसे उनके अधिकार तथा शक्ति बहुत ही कम हैं।

संवत् १८८७ (१८३० ई०) से पूर्व इंग्लैण्ड तथा अमरीकामें नागरिक समितियोंकी शक्ति बहुत ही अधिक थी। परंतु इनसे नगरोंका प्रबन्ध सन्तोषप्रद नहीं हुआ। यही कारण है कि राष्ट्रीय राज्यने नागरिक समितिके बहुतसे अधिकार छीन लिये। आज कल पुनः इसके विपरीत आन्दोलन जारी है। नगर अपनी खोई हुई शक्तिको पुनः प्राप्त करनेका यत्न कर रहे हैं। समय आयगा जब कि वहां अन्य देशोंके सदृश ही स्थानीय स्वराज्यका प्रचार हो जायगा।

(ग) नागरिक शासक—इंग्लैण्डको छोड़कर सभी राष्ट्रोंमें नगरोंके प्रबन्धमें शक्तिसंविभाग सिद्धान्तका प्रयोग किया गया है। नियामक तथा शासक विभाग एक ही संस्थाके हाथमें नहीं रखे गये हैं। प्रायः नियामक विभागमें स्थानीय स्वराज्यके सिद्धान्तका प्रयोग किया गया है। अमरीकामें तो इस सिद्धान्तका बहुत ही ज़ोर है। इंग्लैण्डको छोड़कर

सभी राष्ट्रोंमें नागरिक शासनमें शासक विभागको नियामक विभागपर महत्त्व दिया गया है। शासनका अधिकार प्रायः एक ही व्यक्तिके सुपुर्द किया जाता है। एक जर्मनी ही इसका अपवाद है। जर्मनीमें नगरोंका शासन शासकसमितिके द्वारा होता है।

जर्मनी तथा अमरीकामें शासक नियामक विभागके कार्य्योंको रद्द कर सकते हैं। उनकी नियुक्ति राष्ट्रीय राज्यकी ओरसे होनेसे नियम-विभाग उनको पदच्युत नहीं कर सकता। इंग्लैण्ड, फ्रांस तथा इटलीमें यह बात नहीं है। उनमें शासक विभागकी शक्ति बहुत ही कम है क्योंकि वहां यह नियम प्रचलित है कि नियामक समितिके सभ्य ही नगरके मेयर या अध्यक्षके तौर पर चुने जा सकते हैं और साथ ही शासक विभाग नियामक समितिके कार्य्यों तथा नियमोंको रद्द नहीं कर सकता है।

नगराध्यक्ष (मेयर) का अपने सहकारिवर्गके साथ क्या सम्बन्ध हो, भिन्न भिन्न राष्ट्रोंमें इस संबन्धमें भिन्न भिन्न नियम ही प्रचलित हैं। इंग्लैण्डमें नागरिक समिति ही सहकारिवर्गको नियुक्त करती और पदच्युत करती है। जर्मनीमें यह कार्य शासक विभागके ही हाथमें है। फ्रांस तथा इटलीमें नागरिक समिति ही सहकारिवर्गको नियुक्त करती है। नगराध्यक्षका जो कुछ कार्य है वह यह है कि समितिकी इच्छाओंके अनुसार उससे आवश्यक आवश्यक काम करवाय। अमरीकामें नगराध्यक्ष नागरिक समितिकी स्वीकृति लेकर ही सहकारिवर्गको नियुक्त करता है। कुछ राष्ट्रोंमें तो नगराध्यक्षको जनताही चुनती है। जर्मनीमें

नगरके शासक स्थिर राज्यसेवक होते हैं। परंतु इससे विपरीत अमरीकामें नगराध्यक्ष कुछ समयके लिये ही चुने जाते हैं और समय समयपर नये नये व्यक्ति उस पदको सुशोभित करते हैं। शासनकी दृष्टिसे इंग्लैण्ड तथा यूरोपके अन्य देशोंका नागरिक प्रबन्ध उत्तम है। अमरीकाके नगरोंका प्रबन्ध सन्तोषप्रद नहीं कहा जा सकता क्योंकि वहां नगराध्यक्षका पद उस दलके व्यक्तियोंको प्रायः मिलता है जिस दलका राज्यमें प्राधान्य हो। भारतकी तो दशा ही विचित्र है। यहां नागरिक समितियां स्वेच्छाचारी शासकोंकी कठपुतलियां हैं। वह उनको जो नाच चाहें नचावें। नाममात्रको आजकल भारतमें स्थानीय स्वराज्यका सिद्धांत लगाया गया है। कार्यरूपमें शासकोंका स्वेच्छाचार ज्योंका त्यों बना है। निर्णायक विभागतक दूषित है। न्यायाधीश शासकोंकी इच्छानुसार फैसला करते हैं और दिखावेमें तो राज्यनियमोंका प्रयोग करते हैं परंतु वस्तुतः सबके सब राज्यनियमोंको ताक पर धर देते हैं। परंतु यह स्थिति देरतक नहीं चल सकती। समय आयगा जब कि भारतमें भी स्वराज्य स्थापित हो जायगा और लोकतन्त्र शासन पद्धतिके साथ साथ स्थानीय स्वराज्यका सिद्धान्त सब नगरों तथा मण्डलोंमें प्रचलित हो जायगा।

इति।

अगस्टस—
अफगानिस
अफलातून
अफ्रीका—
अमरीका—
अमेरिकन
,, रा
,, रा
,, रा
अरब निव
अरस्तू—८
१
अराजकव
अरिजोना
अर्जन्टाइन
अर्वाचीन
अलक्जन्ड

विषयानुक्रमणिका

अ

अगस्टस— ६५

अफगानिस्तान— ८६

अफलातून— ६७, १०१, १३०, १३१

अफ्रीका— २२२,...

अमरीका— १२४, २२६, २४३, २४६, ३२६, ४००

अमेरिकन प्रतिनिधि सभा— २८२, २८४, ३०३, ३०४

„ राष्ट्र संघ— २९७

„ राष्ट्र सभा— ३७६

„ राष्ट्रामक शासन पद्धति—१७१

अरब निवासी— ८३

अरस्तू—८, ६७, १०१, १२२, १२४, १२५, १३१, २३८, २४०, ३६२

अराजकवादी— १२२

अरिजोना— ३८३

अर्जन्टाइन— २४३, २४६, ३३१

अर्वाचीन न्यायप्रणाली— ३५४

अलक्जन्दरिया— ३२, ४११

अलसेस लौरेन— २९६

अल्जीरिया— २६५, ३०२

अशोक— २०

असचिव तंत्र— २६६

असीरिया— ४१०

आ

आइसलैण्ड— १५

आंग्ल प्रतिनिधि सभा—२८२, २८५

आरम्भिक राष्ट्र— १४

आरेगान— ३८३

आर्च बिशप— २००

आस्टिन— १६०, १६६, १६९

आस्ट्रीगथ— ३४

आस्ट्रिया— १४०, २१६, २१७, २२६, २४८

आस्ट्रेलिया— २२२, ३८३

„ की राष्ट्र-सभा— २६८

इ

इंग्लैंड— १२४, २००, २२६, २४७

इटली— २२, १३८, २१८, २४७, २४८, ३८३, ४१२

इटैलियन— २०२, २०३
,, प्रतिनिधि सभा— २८२
इन्द्रप्रस्थ— ४१०
इम्पीरियल कोर्ट— ३७५
इसमाइल— ३४२

ई

ईदाहो— ३८३
ईरान— २६, २१८, २४८
ईसा— १३४, ३८६

उ

उत्पन्न राष्ट्र— १४
उल्फिल जाद— १५

ए

एकतंत्र राज्य— १४, ८३, ३२८
एकात्मक राज्य— २४५
एडमस्मिथ— ३४२
एण्टियोक— ४११
एञ्जल्ज— ११४, ३८९ ४११

ऐ

एथन्ज— ३, १०, १५
एथीनियन— १३१
ऐंग्लो सक्सन— ३६५
ऐतिहासिक राष्ट्र— ३९९

ओ

ओटो दि ग्रेट— १३७

क

कंटकशोधन— ३५४
कनाडा— ३७०
,, की राष्ट्र सभा— २९७
कन्सास— २८३
काउन्टी न्यायालय— ४०५
कान्ट— १५१, १५२
कान्स्टैण्टाइन— १३७
काम्यून्ज— ४०१, ४०३, ४०५
कारिन्थ— ४११
कार्ल मार्क्स— ११४, १३५
कार्ल रिक्टर— ७९
कालिवन— ९८
काशी— ३९५, ४१०
काशी प्रसाद जायसवाल, श्रीयुत— १५५
कास्पीयन सागर— ६०
किम्ब्री— ३
कुटुम्ब— ६४
कुलवृद्ध (एल्डरमैन)— ४०६
कुलीन तंत्र राज्य— १४
,, लोग— ७४, ३८०, ४००
,, सभा— २८७
केंब्रिज— ४१३
केलिफोर्निया— १६, ३८३

कैसर — ८९, ३०३, ३२०, ३२९
कोर्ट आफ क्लैम्ज— ३७६
,, ,, प्राइवेट लैंड क्लैम्ज—३७७
कोलोरिडो- ३८३
कौशाम्बी— ४१०
क्यूरिया रेजिन्स— ३३४, ३३५
क्सेड— ४१२
क्लाडिअस- १३७
क्षत्रिय तंत्र— ९८

ग

गवर्नर मारिस- २८२
गुहताङ- ७०
गोडस- १५
ग्रीस— २००
ग्रेगरी, सप्तम ११४
ग्रेट ब्रिटेन— २१७, २१८, २२०
ग्लैडस्टन— २८५

च

चन्द्रगुप्त — ९, २०, ८६, २२५
चर्च- १४६, २०४
चाणक्य— १२९, ३५७
चान्सरी न्यायालय— ३७३
चार्ल्स दि ग्रेट— ८७, १३७
चिली- ३३१
चीन- २२५, २२९, २४८, ३२९

ज

जनता— ३०
जनतंत्र— २८०
,, सभा- २८७
,, सम्मति- ३८८, ३९१
,, ,, विज्ञान— ३८९
,, ,, विधि- १७७
जमींदार समिति— १०७
जर्मनी—२१६, २१७, २२९, २४३, २४८, २५०, २९५, ४००
जर्मन प्रतिनिधि सभा— २८२, ३०३
,, राष्ट्रसभा— २९८
जाति— ३०
जातीय काम— ४०४
जातीयता— ५१
जापान— ८६, २२९, ३२९
जायसवाल, श्री काशीप्रसाद— १५५
जार— ८९, १७८, ३२०
जावा— ३२
जिनोआ समिति — ३३२
जूरीविधि — ३८८
जूलियस द्वितीय — १३९
जे, एफ मैक्लैनन — १२३
ज़ेच — ५५
जेम्स प्रथम — ११२, १८४

जेम्सस्टीफन, सर — ११६
जैन्क्स — १२३, १२५
जैफर्सन — १०३
जोजफ द्वितीय — १४०
जोन्दलाक — १५१
जोन्ह मार्शल — ३६४
जोशू — २

ट

टर्की — २१६, २२०, २२५
टाइटिस — १३५
टामस पेन — २६३
ट्यूटन्ज — ३, १७, ६७, १३५, २०० २०२, २०५, २८२
ट्यूटानिक — २०१

ड

डमास्कस — ४१०
डायर — २१८
डीले — ३२७
डीसी, प्रोफेसर — १७४
डेलावोयर राष्ट्रीय सभा — २८२
डेविड ह्यूम — १०६
डमीगाग — २८८
ड्रेडस्काट — ३७२

त

तातार — ८३
ताल्लुकेदार — १६२, ४००

थ

थीब्ज — ४१०
थेस्यू — १५

द

देवतंत्र राज्य — १४६
देवात्मक राष्ट्र — २३६
देवीसं स्थ — ६९
,, सिद्धान्त — ११२, ११३, ११७
द्वारिका — ४१०
द्वित्व राज्य — २४५, ३५७

ध

धनिक तंत्र — १२५
धर्मराज्य — ३५७
धर्मस्थीय — ३५४
धार्मिक युद्ध — १६५
,, स्वतंत्रता — १४६, १६२
धूरिटन — १०७

न

नगर राष्ट्र — ४१७
नगराध्यक्ष — ४२२
नवेदा — ३६८
नवीन राष्ट्र — १४
नागरिकता — ३८४
नागरिक न्यायालय — ३०४

नागरिक राज्य — ४०१
,, समिति — ४२०
" स्वतंत्रता — ३७८
नार्मन्स — ६०
निकोलस पंचम — १३६
नियामक सभा — ३१६
,, सम्मतिविधि — २६२,३६६
निर्वाचनाधिकार — ४१८
नीग्रो — २६
नीदरलैंण्ड — २४७, २४८, ३०५, ४१३
नीवूर — १६३
नैपाल — २२१
नेपोलियन — ८७, ८८, २७६, ३२५, ४०३
,, का कोड — २०४
नैलिनक — ११५
न्यूइंग्लैंण्ड — ४०७, ४०८
न्यूजर्सी — ३७१
न्यूजीलैण्ड — २८१, ३८३
न्यूहैम्पशायर — २८२, ३३७

प

पंचायती शासन — ३२३
पंजाब — २१८
पटना — ४१०
परिवार — ५०
पर्शिया — ४१०
पायस द्वितीय — १३६
पारिवारिक सिद्धान्त — १२३
पार्लमेन्ट — १६६
पालीबियस — ६७, २६२
पीसा — ४१२
पुर्तगाल — २०३, ४१३
पृथु — ११७
पेरू — २६, ११५, ३३१
पैक — ३७२
पैरिशिज — ४०१
पैरिस — २३५, ३७४, ४१३
पोलैण्ड — २६, २५०
प्युरिटन — २०४
प्रजातंत्र राज्य — ३५७
प्रतिनिधितंत्र राज्य — १८७, १६३, ३१७
प्रतिनिधि सभा — २३६, २८३
प्रथम सभा — २६२
प्रधानतंत्र राज्य — ३३०, ३३३
प्रमथनाथ बनर्जी, श्रीयुत १५५
प्रार्थना न्यायालय — २७३
प्रिवी काउन्सिल — ३३५
प्रुशियन राष्ट्र सभा — २६७
प्रुशिया — २७६, २६६, ३०५, ३१७

प्रोटस्टेण्ट— ९८, १४५

प्लेटो— ६७, १२४, १२५

फ

फिच — १५१

फिलस्तीन— ३

फिनीसियन— ४१०

फ्युडल काल— ३५३

" विधि- १४७, १६५, २०३

फ्रांस—१२४, १८६, २०७, २४३, २४६,२९५,३२९

फ्रांसीसी प्रतिनिधि सभा—२८१,२८३, ३०२

" राज्य क्रान्ति—१७५,३२६, ३८१

" राष्ट्रसभा— २९७

फ्रेडरिक जे स्टाल— १५४

" दि ग्रेट— १५३

" लिस्ट— ३६०

फ्रैक्स— ३४

फ्लैचर— ३७२

ब

बनर्जी, श्री प्रमथनाथ— १५५

बन्देस्राथ—२९२,३०८,३०९,३१५,- ३२६,३३६,३९९

बर्गस, प्रोफेसर— १२०, १५०

बर्टनबर्ग— २९६

बर्गन्डियन्स— ३४

बरो— ४०६

बर्लिन— २९६

बवेरिया— २९६

बाधित जनसम्मति— ३८८

" नियामक जनसम्मति—३९२, ३९९

बालोन्या— २०३

बास्कस— ३५

बेकन— १८४

बेदन— २९६

बेलजियम— २३१

बेलफोर्ट— २९५

बैन्थम— १६८

बैबिलोनिया— ३३, ४१०

बोल्शेवी शासन-पद्धति— ३२१

ब्रंजविक— २९६

ब्राइस— २९७,३६१

ब्राजील— ८४, २४९, ३३१

ब्रिटन्स— ३५

ब्रीमन— ४००

ब्रुसल्स कान्फरेन्स— २३२

ब्लुंटश्ली— १,६,१०६,११५,१६७, २३८,२४१,२६१

ब्लैक्सटन— २६२

भ

भारत— ४२३

भौमिक सम्पत्ति— २१९

म

मकदूनिया— ५७

मंगोलिया— ८३,८७,३८४

मंचूरिया— ८७

मथुरा— ४१०

मनु— ३५३, ३५७

मांडलिक शासक— ३८०

,, स्थानीय राज्य— ४०१

मांटस्क्यू-१३५, २३८, २४०, २४१, २६०, २६१, २६३, २६९, २६६

माग्यार— ५५

मात्स्य न्याय— ८, १०४, ११६.

मार्वरी— ३७१

माल्थूस— ६६

मिश्र — २१५, २२५

मिश्रवासी— १३

मुख्य न्यायालय—३६९,३७०, ३७२

मुसलमानी काल— ३५३

मुखर्जी, श्री राधाकुमुद— १५५

मुख्य राज्य— ३७५, ३९६, ४००, ४०२, ४०४

मुद्रासमिति— ३१७

मूजिज— २

मेक्सिको— ११५, २४९, ३१७, ३२९, ३३१

मेगस्थनीज— २२५

मेज— ३३७

मेजनी— ३१०

मेन— १९९

मेसाचसेट्स— २६२, ३६७,

,, राष्ट्रीय सभा— २८२

मैकियावली— १३९, १४९, १५०

मैक्लनवर्ग स्वेरिन— २९६

मैडिसन— १०६, २६४, ३७१

मैम्फिस— ४१०

य

यहूदी— २, १३

यूटा— ३८३

यूथोपिया— २८

यूनान— ९५, २२५, ३८६

यूनानी राष्ट्र— १४३

र

रणजीत सिंह— १६८

राइट्स आव मैन— २९३

राजनीतिक स्वतंत्रता— १९३, ३७८

राज्य क्रान्ति— १९२

राज्यक्रान्तिकी शक्ति— १७८

राज्य संशोधन— १६२

राज्यसेवक— ३४७, ४०४, ४१६

राधाकुमुद मुखर्जी, श्रीयुत १५५

राबर्ट फिल्मर, सर— ११२

राष्ट्र– १,८६

राष्ट्रात्मक राष्ट्र– १८

राष्ट्रीय अभियोग– ३७६

,, कर्मण्यता– १८१

,, नियम– १६७

,, राज्य– ४०१

रीक– ४११

रीशटाग– ३०६, ३१०, ६१५, ३४३

रीशे, प्रोफेसर— १७८, १८४

रूम– २६, २१४, २१५, २४३, २४८

रूस— ८६, २१७, २०८, २४३, २४८, २५०,

रूसो— २, १००, १०३, १०५, १५१, १७५, १७६, १८५, २३८, २४१

रेमस– १५

रेसिडन्ट– २२१

रोम, रोम साम्राज्य– १४, २००, २०२, २०३, ३८७, ४११

रोमन कैथालिक— २६४

रोम्यूलस– १५

रौलट समिति– ३१७

ल

लखनऊ– १७, ३६५

लघु एशिया– २२

लडविवान हालट— ११६

लंडन— ३४१

लम्बाई— ३४, ५५

लाक– १००, १०३, १०४, २६३

लार्ड सभा– २३६, २८३, २६७

लिस्बन— ४१३

लीकाक— १२६

लीपूज़िग– ३७५

लीयां (दशम)– ११६

लीबर– १८५

लूबेक– ३६८, ४००

लेनिजन — ३६०

लेकी– २८७

लैटिन— २०३

लोकतंत्र– ८८, २७२, २७५, ३६४, ३७८, ३७६, ३८६, ४००

लोक राज्य– ३५८

,, सभा– ३६१

व

वर्जीनिया राष्ट्रीय सभा— २८२
वर्डजवर्थ डानिस्थ्रोप— २
वाइजन्टाइन– २६२
वाल्टन— ३७१
वाशिंगटन— २८३
वाशिंगटन (राष्ट्रपति)– ३३२
विनयकुमार सरकार, श्रीयुत– १५५
विलियम तृतीय– ३३६
विल्ज़– ४०५
विल्हल्मवान – १५२
विषमराष्ट्र– १८
विसिगाथ्स– २०२
वीनस–८३. ४११
वीयोमिंग—३ ८३
वुडरोविल्सन—७, १७०, २२६, ४०६
वेदना– २६६
वेस्टमिनिस्टर — ३७३
वेनन्जुला— २४६
वेनीशियन्ज— ५५
वैयक्तिक स्वतंत्रता–१८१, १८२, १८३, १९०, १९२, १९३
वोदिन – १४९, १५०, २६३
वोलोविया– ३३१

यास– १२९
शक्तिसं विभाग–१४३, ३७०, २७१, २७४, ३६३, ३६६, ४०९,
शक्ति सिद्धांत—१८, १०९, ११३, १५०
शान्तिस्थापक न्यायालय- ३०४
शान्ति न्यायाधीश— ३७४
शाम– २२५
शार्पज— ४०५
शासक तंत्र — २८०
शासक विभाग– ३२४
” न्यायालय– ३७४
शुक्र सम्प्रदाय— १२६
शेरिफ— ४०५
श्रमविभाग सिद्धान्त— २७१
श्रेणी युद्ध– २९१
” राज्य– ३५८
श्लीयर माचर–२४०, २४१
श्रंघीय राज्य–२०६, २७६, ३९८, ६९९
सचिव तंत्र–२४४, २४७, ३९६, २७१, २७५, ३३३
,, मंडल—२६९, ३२६, ३२८
समाद्रय विधि–२८५, २८६, २८६, २८६, २९०, २९२

समष्टिवादी— ३२२
स्रगुससुम्त— ६
साधारण राज्य— ३५७
सामाजिक प्रश्न— १०५
" " सिद्धान्त—६., १३७
१०६, १०७
सिकन्दर— ६, ४११
सिज्विक, प्रोफेसर— १५४
सिविल सर्विस ऐक्ट— ३४८
सिसरो— ६० ६७, १३२, २३६
सिसली— २२,
सीदान— ४११
सीनेट— २२७
सुकरात— १३१
सेन्द्रिय, सात्मिक सिद्धान्त— १७६
सेसन कोर्ट ३७४
सैक्सन्स, सैक्सनी— ६०, २६६
सैमाइट्स— २६
सैमिटिक— ३०
सेम्बुल पुफूफन डार्फ— १५१
सैल्टस— ३४
सोलन— ३५३
स्टुआर्ट, स्टुआर्ठ राजा–१०४, २२६
स्टोरी, न्यायाधीश— १५७
स्थानीय काम— ४०४
" राज्य— ३८५, ३६६, ४०६
स्पार्टा— ४११
स्पेन— २०३ २४८, ४१२
स्पैनिश कांग्रेस– २८२
स्पेन्सर, हर्बर्ट— ११४
स्लेब्ज– ५५
स्वतंत्रता– १८७
स्विटजरलैण्ड— ८१, २३३, २४१,
२४८, २६८, ३२३, ३२६, ३३१
३७०, ३८२, ३८६, ३६०, ३६६
स्वेजनहर— ३३३

ह

हंग्री— २१६, २२६, २४५
हंटर समिति— ३१७
हगड्रूड्ज— ४०५
हम्वर्ग– ४००
हम्बोल्ट– १५२
हर्बट स्पेन्सर— ११४
हंस नगर– ४१३
हाइकोर्ट न्यायालय– ३७३
हाब्ज, टामस–१००, १०३, १५१
हार्लेंड, महाशय– ७, १६६, १६७
हालैण्ड– १८, २०२
३७१
हाल्मस– २१७, २३६
हेग– २६
हेती– १६८
हेनीमेन, सर—
हेंस–२८६ १५४
हेगल– २६५
हैमिल्टन–
ह्यूगो ग्रोटियस– १४६, १५०, १६६

२८२
११४
५५
१८७
२३३, २४३,
३.३२६,३२६
.,३६०,३६६
२३३
२२६, २४८
३१७
४०५
४००
१५२
११४
४१३
३७३
१०३, १५१
१६६, १८७
१८, २०३
३७१
२१७, २३६
२६
१६८
१५४
२६४
, १५०, १६६

Jagannath Sharma

"Usha"